राष्ट्रीय संगोष्ठी

दिनांक- 04 मार्च, 2021

अमर कथा-शिल्पी फणीश्वरनाथ 'रेणु' के जन्मशती वर्ष के उपलक्ष्य में

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के साहित्य का समकालीन संदर्भ

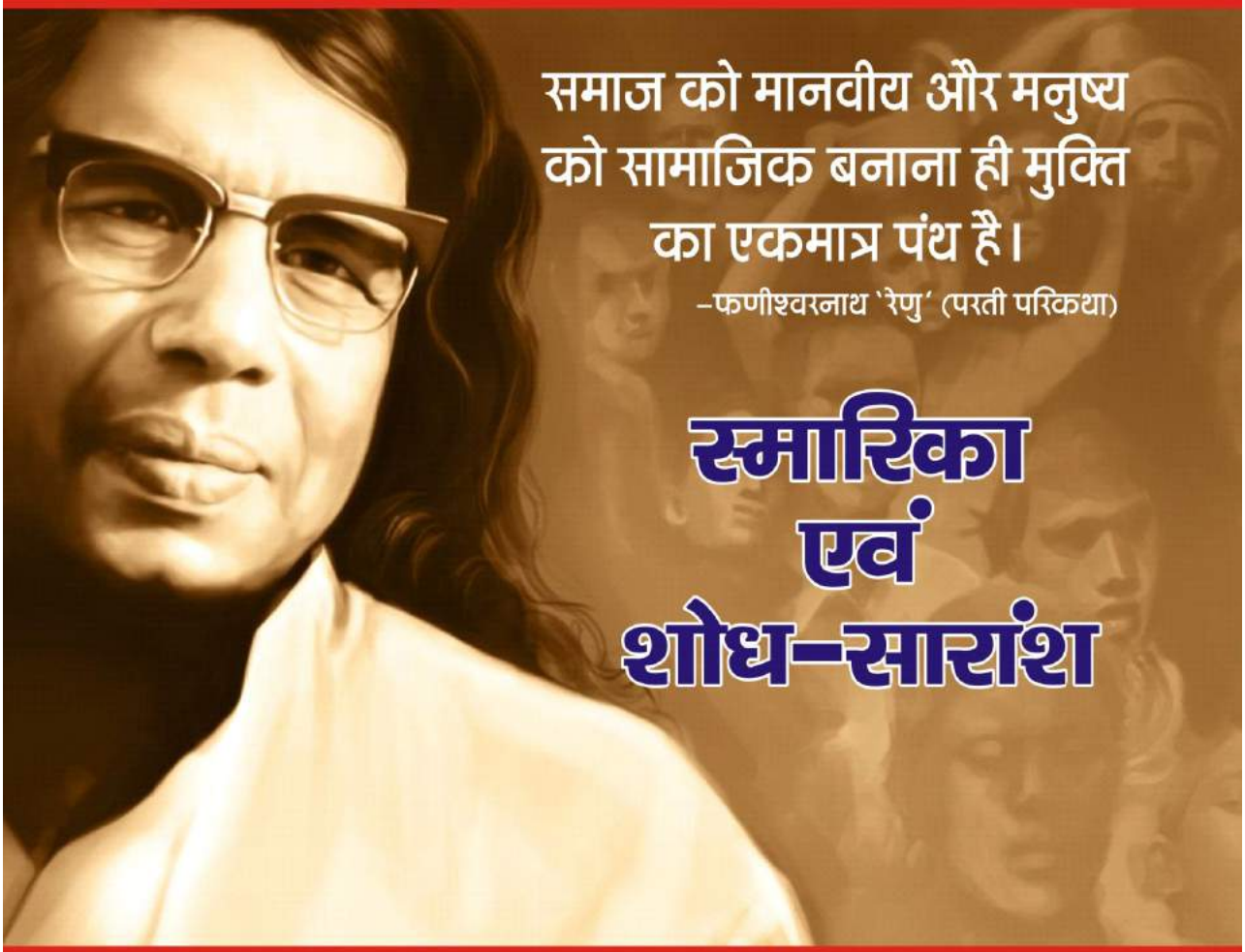

समाज को मानवीय और मनुष्य को सामाजिक बनाना ही मुक्ति का एकमात्र पंथ है।

-फणीश्वरनाथ 'रेणु' (परती परिकथा)

स्मारिका एवं शोध-सारांश

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

hodhindi@lnmu.ac.in

राष्ट्रीय संगोष्ठी

4 मार्च- 2021

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

मुख्य संरक्षक एवं उद्घाटनकर्ता
प्रोफेसर सुरेन्द्र प्रताप सिंह
माननीय कुलपति

संरक्षक
प्रोफेसर डॉली सिन्हा
माननीया प्रति-कुलपति

सह-संरक्षक
डॉ. मुश्ताक अहमद
कुलसचिव

स्वागताध्यक्ष
प्रोफेसर राजेन्द्र साह
अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

विशिष्ट वक्ता
प्रोफेसर चन्द्रभानु प्र. सिंह
पूर्व अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

संयोजक
प्रोफेसर विजय कुमार
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

सह-संयोजक
डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद सुमन
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

आयोजन सचिव
डॉ. आनन्द प्रकाश गुप्ता
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

आयोजन सह-सचिव
श्री अखिलेश कुमार
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

- प्रधान सम्पादक
  प्रोफेसर राजेन्द्र साह

- संपादक
  श्री अखिलेश कुमार

संपादन सहयोग

- सरोजनी गौतम
- कृष्णा अनुराग
- अभिशेक सिन्हा
- धर्मेन्द्र दास

प्रोफेसर सुरेन्द्र प्रताप सिंह
कुलपति
Prof. Surendra Pratap Singh
Vice-Chancellor

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
LALIT NARAYAN MITHILA UNIVERSITY
कामेश्वरनगर, दरभंगा - 846004, बिहार
Kameshwarnagar, Darbhanga-846004, Bihar

शुभकामना संदेश

मैं अभिभूत हूँ यह जानकर कि विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा द्वारा अमर कथा-शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु जन्मशती वर्ष के उपलक्ष्य में **फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन सन्दर्भ** विषय पर **4 मार्च, 2021** को राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। ऐसे अवसरों पर **स्मारिका** का प्रकाशन होना संगोष्ठी के महत्त्व और गम्भीरता को कई गुना बढ़ा देता है। रेणु की एक बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कई रचनाओं के केन्द्र में इस मिथिला की पवित्र भूमि को देखा जा सकता है।

मैं उक्त संगोष्ठी की सफलता की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग निरंतर नये शिखरों को प्राप्त करेगा।

(सुरेन्द्र प्रताप सिंह)

LALIT NARAYAN MITHILA UNIVERSITY
Kameshwaranagar, Darbhanga-846004
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा – 846004

Prof. Dolly Sinha, Ph D (IIT Delhi)
Pro Vice Chancellor
Letter No.

प्रो0 डॉली सिन्हा, पीएचडी (आईआईटी दिल्ली)
प्रति कुलपति
Date: 26.02.2021

शुभकामना संदेश

यह जानकर प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा द्वारा अमर कथा-शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु के जन्मशती वर्ष के उपलक्ष्य में **"फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन सन्दर्भ"** विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 04 मार्च, 2021 को किया जा रहा है।

सर्वविदित है कि रेणु ने हिन्दी साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। हिन्दी साहित्य में "आंचलिकता" और "आंचलिक भाषा" का जिस सुगढ़ता से रेणु जी ने प्रयोग किया है, वह अद्वितीय है। सीमांचल और मिथिलांचल की लोक-संस्कृति, लोक-चेतना, वर्गीय संघर्ष और लोक संवेदना रेणु साहित्य में जिस ढंग से विकसित है, वह अपने आप में अन्यतम है। लेखकीय प्रतिबद्धता के बावजूद रेणु का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन अलग नहीं था। ग्रामीण जीवन में धुले-मिले रेणु का असर उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होता है।

उक्त संगोष्ठी के आयोजन तथा स्मारिका के प्रकाशन पर मैं हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करती हूँ और संगोष्ठी के आयोजक, सभी शिक्षकगण, शिक्षकेत्तर कर्मचारियों तथा संबंधित सभी व्यक्तियों को इस सराहनीय कार्य के लिए साधुवाद देती हूँ।

डॉ सिन्हा
26.02.2021
प्रति कुलपति

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

शुभकामना संदेश

विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग द्वारा **04 मार्च, 2021** को **फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन सन्दर्भ** शीर्षक विषय पर आयोजित होनेवाली राष्ट्रीय संगोष्ठी की सफलता की मैं कामना करता हूँ। फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी साहित्य के अग्रणी साहित्यकार रहे हैं। उनका समग्र आँचलिक साहित्य भारतीय ग्रामीण जीवन एवं परिवेश का जीवंत दस्तावेज है। इस अवसर पर प्रकाशित होनेवाली **स्मारिका** हेतु मेरी ओर से अशेष शुभकामनाएँ!

(प्रो. मुश्ताक अहमद)
कुलसचिव

M.L.S.M. COLLEGE, DARBHANGA

(A CONSTITUENT UNIT OF L.N. MITHILA UNIVERSITY, DARBHANGA)

NAAC ACCREDITED B+ (2.75 CGPA) GRADE

Website : www.mlsmlnmu.ac.in, E-mail : mlsmcollege@gmail.com

एम० एल० एस० एम० कॉलेज, दरभंगा

1. ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय की अंगीभूत इकाई ।
2. योग्यतम शिक्षकों द्वारा स्नातक प्रतिष्ठा स्तर तक कला, वाणिज्य एवं विज्ञान संकाय की पढ़ाई ।
3. मेधावी एवं निर्धन छात्रों के लिए विशेष सुविधा ।
4. छात्रों के लिए परामर्शी परिषद् क्रियाशील ।
5. कैम्पस सेलेक्शन द्वारा विभिन्न प्रतिष्ठानों में नौकरी का अवसर ।
6. वर्ग में छात्र एवं छात्राओं की 75% उपस्थिति अनिवार्य ।
7. छात्रों के लिए यू.जी.सी. की योजनाएँ ।
8. खेलकूद एवं अन्य गतिविधियों में छात्रों की भागीदारी ।
9. छात्र/छात्राओं के लिए आधुनिकतम पुस्तकालय की व्यवस्था ।
10. एन.सी.सी. एवं एन.एस.एस. यूनिट ।
11. छात्र/छात्राओं के लिए विनोद कक्ष ।
12. खेलकूद/वाद-विवाद/सेमिनार ।
13. ई-पाठशाला संचालित
14. विशेष व्याख्यानमाला के आयोजन की सुदृढ़ परम्परा ।

नोट:- आप मुझे अनुशासित छात्र दें, हम देश को एक कर्मठ एवं निष्ठावान नागरिक देंगे ।

हम 48वें मिथिला विभूति पर्व समारोह की सफलता की कामना करते हैं।

डॉ. विद्यानाथ झा

प्रधानाचार्य

अध्यक्षीय उद्‌बोधन

प्रोफेसर राजेन्द्र साह
अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा
मो०- 9430414508/6201673282

आज 4 मार्च, 2021 है। आज की तारीख को ही आज से 100 वर्ष पूर्व 1921 में अमर कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ 'रेणु' का आविर्भाव हुआ था। इस दृष्टि से उनके जन्मशती वर्ष का आज प्रथम दिन है। पिछले वर्ष से ही रेणु जी पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित करने की योजना थी, किन्तु अपरिहार्य कारणवश विलम्ब के पश्चात् आज हम उस सुखद क्षण की ओर अग्रसर हैं जहाँ 'रेणु' के व्यक्तित्व, सृजन एवं चिंतन पर संगोष्ठी के माध्यम से विस्तृत एवं गहन चिंतन तथा विमर्श की दिशा में प्रयासरत हैं। इस आयोजन के पश्चात् रेणु जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केन्द्रित एक ऐतिहासिक शोध-पत्रिका का प्रकाशन एक-दो महीने के भीतर ही होना लगभग तय है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' साहित्य के अग्रणी साहित्यकार रहे हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नयी दिशा दी। आँचलिक कथा साहित्य को स्थापित करने का श्रेय उन्हें तो है ही, उनका समग्र साहित्य भारतीय ग्रामीण एवं कस्बाई जीवन के परिवेश एवं परिस्थितियों का जीवन्त दस्तावेज है।

यह प्रश्न आज लगातार बना हुआ है कि साहित्य की क्या प्रासंगिकता है? आज जिस कदर एक बार पुनः तथाकथित 'चारण' साहित्यकारों, संपादकों, लेखकों आदि का दौर लौट आया है, ऐसे में 'रेणु' जैसे साहित्यकार को बार-बार याद करने की जरूरत है। साहित्यकार का धर्म सत्ता से सवाल करना और उससे टकराना है। रेणु हों या नागार्जुन या 'दिनकर', बिहार के तमाम श्रेष्ठ साहित्यकारों ने कभी भी सत्ता के समक्ष समर्पण नहीं किया। आज जब रेणु पर तमाम अकादमिक संस्थानों में उनकी जन्मशताब्दी पर कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं तब उनकी रचनाधर्मिता के मूल को नये सिरे से ढूँढने की जरूरत है। उनके साहित्य में जो जीवनीशक्ति अथवा जिजीविषा परिलक्षित होती है उसका उत्स कहाँ है? इस पर आज के विषम समय में विचार और मंथन करने की पुनः-पुनः आवश्यकता है।

रेणु का रचना-संसार बहुरंगी है। ऐसे में उन्हें किसी एक ढाँचे या 'वाद' से जोड़ देना उतना ही अप्रासंगिक होगा, जितना प्रेमचंद को 'प्रगतिवाद' से जोड़ना। निश्चित रूप से रेणु समाजवादी थे लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि

वे उस विचारधारा के 'भक्त' थे। उन्होंने जहाँ भी कुछ गलत होते देखा, उस पर प्रहार किया है। वस्तुतः, वे कबीर की परम्परा के साहित्यकार ठहरते हैं। 'काँग्रेस', 'संघ', 'कम्युनिस्ट' और 'सोशलिस्ट'-सब उनकी रचनाओं में यथास्थान चित्रित हुए हैं और उन्होंने बारी-बारी से सभी की कमियों और खामियों पर तीखा व्यंग्य किया है। रेणु और नागार्जुन संभवतः इसीलिए अपने जीवनकाल में किसी संगठन के प्रिय पात्र नहीं हो सके।

रेणु का लेखन सच्चा लेखन है। उन्होंने जो महसूस किया, जिन विषमताओं से जूझे, उसको बिल्कुल उसी भाषा में चित्रित किया, जिससे उस 'जनपद' के अंतिम व्यक्ति तक उनकी बात पहुँच सके। रेणु का लेखन जनसरोकारों का लेखन है- बहुरंगी और बहुआयामी है। सांस्कृतिक उत्सवों, मेलों, नाटक मंडलियों आदि का चित्रण करते हुए रेणु भाव-विभोर हो जाते हैं और ऐसा लगता है कि वे तमाम पाठक-वर्ग को पुनः उसके बचपन की सैर कराने निकल पड़े हैं। ठीक इसी प्रकार, यौवनावस्था के क्रिया-कलापों का चित्रण रस से आप्लावित कर देता है।

आज जब 'किसान आन्दोलन' अपने चरम पर है, महँगाई आसमान छू रही है, बेरोजगारी का रिकार्ड रखनेवाली संस्था अपने तथ्यों को छिपा रही है, स्त्रियों के साथ होनेवाले अपराध निरंतर बढ़ते जा रहे हैं, गरीबों, दलितों एवं पिछड़ों की दयनीय स्थिति कम बदतर नहीं है। ऐसे में रेणु किन दृष्टियों से प्रासंगिक हैं और आनेवाली साहित्यिक पीढ़ी उनसे किस प्रकार प्रेरणा ले सकती है? ये गंभीर प्रश्न ज्वलन्त हैं।

'स्मारिका' में संकलित शोध सारांश/शोध आलेख के सभी लेखकों का आभारी हूँ, जिन्होंने समय से प्रकाशनार्थ अपनी रचनाएँ प्रेषित कीं। सर्वप्रथम मैं विशेष रूप से आभारी हूँ डॉ. नन्दकिशोर 'नन्दन' (अवकाश प्राप्त पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर) 'रेणु रचनावली' का संपादन करनेवाले श्री भारत यायावर जी, डॉ. राजकुमारी खेड़िया (अवकाश प्राप्त एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, जी.डी. कॉलेज, बेगूसराय) डॉ. अशोक कुमार सिन्हा (प्रभारी प्रधानाचार्य, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा) डॉ. चन्द्रभानु प्रसाद सिंह, (पूर्व विभागाध्यक्ष) डॉ. उमेश कुमार (हिन्दी विभागाध्यक्ष, बी.म.आदर्श महाविद्यालय, बहेड़ी, दरभंगा) का जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं द्वारा स्मारिका/शोध-सारांश की गरिमा को बढ़ाया है।

इस स्मारिका/शोध-सारांश में संकलित अन्य समस्त विद्वानों, रचनाकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। श्री सुमंगल पाण्डेय का भी विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने अल्प समय में इसे ससमय प्रकाशित कर अपनी निष्ठा, तत्परता एवं अपनी कार्य कुशलता तथा पूर्ण सामर्थ्य का परिचय दिया है।

इस शोध स्मारिका में संकलित सारांश लेखक एवं रचनाकारों के अपने मूल विचार हैं, इसमें प्रधान संपादक एवं संपादक की सहमति एवं असहमती से उसका कोई संबंध नहीं है।

■

अनुक्रमणिका

1. रेणु : एक योद्धा कथाशिल्पी 1
नन्दकिशोर नंदन
2. रेणु के जीवन भटकाव और रास्ता 2
भारत यायावर
3. रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ 13
प्रो. चन्द्रभानु प्रसाद सिंह
4. तथाकथित संभ्रांतों के मुखौटों को उतारता उपन्यास : पल्टू बाबू रोड 15
डॉ. राजेन्द्र साह
5. किसान आन्दोलन का सांस्कृतिक विमर्श और रेणु 16
डॉ. विजय कुमार
6. रेणु की जनवादी दृष्टि 17
डॉ. आनन्द प्रकाश गुप्ता
7. 'मैला आँचल' में लोक-संस्कृति 18
श्री अखिलेश कुमार
8. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में लोककला 19
डॉ. उमेश कुमार
9. नागर-आंचलिकता का एक प्रयोग- 'दीर्घतपा' 20
डॉ. राजकुमारी खेड़िया
10. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में भारतीय संस्कृति 25
डॉ. अशोक कुमार सिन्हा
11. रेणु की कहानियाँ : रचता-बसता लोक-जीवन 26
डॉ. दिनेश प्रसाद साह
12. रेणु के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना 26
डॉ. विनीता कुमारी
13. रेणु के कथा-साहित्य में लोक-संस्कृति और 'विदापत नाच' 27
डॉ. अमरकान्त कुमर
14. फणीश्वरनाथ रेणु : सृजन और चिंतन 29
डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा
15. बदलते हुए ग्रामीण जीवन-मूल्यों के कथाकार : फणीश्वर नाथ 'रेणु' (संदर्भ- उपन्यास-साहित्य) 30
डॉ0 तीर्थनाथ मिश्र
16. फणीश्वरनाथ'रेणु' के उपन्यासों में लोक-संस्कृति 31
डॉ. कैलाशनाथ मिश्र
17. रेणु की कहानियों के नारी पात्र : एक आकलन 32
रश्मि शर्मा
18. कस्बाई जीवन के यथार्थ को उकेरता 'कितने चौराहे' 33
डॉ. पूनम कुमारी
19. कथाकार रेणु की सामाजिक चेतना 33
डॉ. श्रवसुमी कुमारी

20. फणीश्वर नाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित नारी 34
डॉ. मीना कुमारी
21. आँचलिकता की परिधि को तोड़ती रेणु की कहानियाँ 35
डॉ. सूर्यप्रताप
22. रेणु की कहानियों में आंचलिकतावादी संसार का यथार्थ बिम्ब 35
रवीन्द्र कुमार
23. 'रेणु' : हिन्दी साहित्य का संवदिया 36
डॉ. पुलकित कुमार मण्डल
24. आँचलिक उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु का स्थान 37
डॉ. ममता रानी अग्रवाल
25. 'रेणु' साहित्य की प्रासंगिकता : ग्रामीण चेतना के सन्दर्भ में 37
डॉ. स्नेहा कुमारी
26. रेणु जी के 'मैला आँचल' में वर्णित आर्थिक स्थिति 38
प्रो0 सिमरन भारती
27. 'मैला आँचल' में ग्रामीण जीवन 39
डॉ. आलोक प्रभात
28. रेणु साहित्य का सिनेमाई संदर्भ 40
श्याम भास्कर
29. रेणु साहित्य का आंचलिक संदर्भ 40
डॉ0 सुनील कुमार सिंह
30. रेणु के गाँव : रेणु के बाद 41
डॉ. निवेदिता कुमारी
31. रेणु की कहानियों में मूल्य चेतना 42
डॉ. दिलीप कुमार झा
32. पंचलैट की रोशनी 43
डॉ. स्नेहलता कुमारी
33. कल, आज और कल के साहित्यिक स्वर : रेणु 43
डॉ. रीना यादव
34. भारत की आत्मा के अप्रतिम रचनाकार : रेणु 44
डॉ. हनी दर्शन
35. लाल पान की ही बेगम क्यूँ 45
डॉ. दीपक त्रिपाठी
36. रेणु के 'पूर्ण आलोचक' सुरेंद्र चौधरी की दृष्टि में रेणु का कथा-साहित्य 45
डॉ. शंकर कुमार
37. यथार्थ का जीवन्त चित्रकार : 'फणीश्वरनाथ रेणु' 46
नीलम सेन
38. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में नारी - चित्रण 47
डॉ. माला कुमारी
39. बहुभाषिकता की अवधारणा और रेणु के उपन्यास 48
डॉ. कृष्ण कुमार पासवान
40. रेणु साहित्य का आंचलिक संदर्भ 48
डॉ. देवाशीष, पूर्णिमा भारती

41. फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियों में जीवन-संघर्ष 49
डॉ. बलराम कुमार
42. रेणु के 'मैला आँचल' में निरूपित चरित्रों का मूल्यांकन 50
डॉ. ज्वालाचन्द्र चौधरी
43. फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियों का वैशिष्ट्य : ग्राम्य-संस्कृति के संदर्भ में 50
डॉ. अजय कुमार
44. रेणु की कहानियों के 'पागल' पुरुष पात्र 51
डॉ. निहार रंजन सिन्हा
45. रेणु के उपन्यासों के समाजसेवी : आज के परिप्रेक्ष्य में 52
डॉ. श्वेता कुमारी
46. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में सामाजिक चेतना 52
महेश कुमार चौधरी
47. रेणु का कलाकार मन 53
डॉ. महेश कुमार ठाकुर
48. रेणु के कथा साहित्य में नारी पात्रों का वैविध्य 53
डॉ. रमण कुमार
49. आदिवासी जीवन का यथार्थ और 'मैला आँचल' में संथाल जीवन 54
डॉ. अभिषेक कुंदन
50. 'मैला आँचल' में चित्रित आदिवासी जीवन 55
सरोजनी गौतम
51. रेणु की कहानियों में राजनीतिक यथार्थ 55
कृष्णा अनुराग
52. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में चित्रित ग्राम्य समाज 56
अभिषेक कुमार सिन्हा
53. रेणु के रिपोर्ताजों में सामाजिक यथार्थ 56
धर्मेन्द्र दास
54. रेणु के कथा साहित्य में स्त्री मनोविज्ञान 57
डॉ. स्वाती कुमारी
55. रेणु साहित्य में शोषितों-पीड़ितों की समस्या 57
डॉ. कुमारी निश्चय
56. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश 58
डॉ. नेहा कुमारी
57. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में गीतात्मक प्रयोग 59
डॉ. शम्भू कुमार
58. 'रेणु' के नाम बड़ी बहुरिया का पत्र 59
गायत्री कुमारी
59. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : चिन्तन एवं सृजन संसार 60
सियाराम मुखिया
60. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के साहित्य में ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति 61
सुश्री नन्दनी कुमारी
61. 'मैला आँचल' का कथ्य एवं शिल्प 61
सावित्री कुमारी

62. फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में व्यक्त संवेदना-संदेश 62
डॉ. पूजा सिन्हा
63. आँचलिक कथाकार रेणु 62
सरिता कुमारी
64. फणीश्वरनाथ रेणु और उनका 'मैला आँचल' 63
ममता कुमारी
65. हिंदी साहित्य के अमूल्य धरोहर : फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज 64
कृष्ण कुमार
66. 'मैला आँचल' की भाषिक विशिष्टता 65
दुर्गानन्द ठाकुर
67. रेणु साहित्य में स्त्री विमर्श 66
सुजाता सिंह
68. रेणु साहित्य का स्त्री संदर्भ 66
रागिणी रौशन
69. फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन आंचलिक संदर्भ 67
हेमलता
70. कथाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' 68
सावित्री कुमारी
71. रेणु-साहित्य में लोक-संस्कृति के विविध आयाम 68
अनिग्धा श्रीवास्तव
72. गद्य शिल्पकार : फणीश्वरनाथ रेणु 69
सरिता कुमारी
73. कितने चौराहे : फणीश्वरनाथ रेणु 70
कुमारी सोनी
74. 'मैला आँचल' में स्त्री-अस्मिता 71
प्रियंका कुमारी
75. फणीश्वरनाथ रेणु और उनके रिपोर्ताज में अभिव्यक्त आंचलिकता का आशय 71
रणधीर कुमार
76. फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में समकालीन विमर्शों की अभिव्यक्ति 72
पवन कुमार शर्मा
77. रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ 73
डॉ. नीतू कुमारी
78. फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में आँचलिकता की धारा 73
सुशील कुमार मंडल
79. फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में आंचलिक संदर्भ 74
राजनन्दनी कुमारी
80. रेणुसाहित्य का सामाजिक संदर्भ 75
ओमप्रकाश वत्स
81. रेणु की कहानी 'तँबे एकला चलो रे' का एक पाठ! 76
डॉ. पार्वती कुमारी
82. 'ठेस' में अभिव्यक्त कलाकार का अंतर्मन 76
अमितेश कुमार

83. परती परिकथा : स्त्री-विमर्श की दृष्टि से 77
उपासना झा
84. रेणु के साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ 77
दीपक कुमार
85. फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश 78
डॉ0 विनीता कुमारी
86. रेणु का राजनीतिक दृष्टिकोण और 'मैला आँचल' 79
राजेश कुमार यादव
87. रेणु एवं मधुकर गंगाधर के उपन्यासों में कोशी का आँचलिक जीवन 79
सजन कुमार
88. हिंदी साहित्य के अमूल्य धरोहर हैं फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज 80
कृष्ण कुमार
89. रेणु की कहानियों में ग्रामीण संवेदना 82
रामरतन कुमार
90. रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ 83
पिंकी कुमारी
91. रेणु एवं चन्द्रकिशोर जायसवाल के कथा-साहित्य में सामाजिक जीवन 83
चन्द्रनाथ झा
92. रेणु की पत्रकारिता में मानवीय संवेदना 84
अमित कुमार मिश्रा
93. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में समकालीनता 84
शिखा
94. 'मैला आँचल' में संवाद योजना 85
डॉ. अनामिका कुमारी
95. फणीश्वरनाथ रेणु का भाषागत वैशिष्ट्य 86
डॉ. रोहिणी कुमारी
96. फणीश्वरनाथ रेणु का रिपोर्ताज-साहित्य : एक समीक्षा 87
रश्मि कुमारी
97. रेणु की कहानियों में बिंब, प्रतीक और अलंकार 89
रंजीत कुमार
98. रेणुजी की कहानियों में वर्णित कलाकार की मानवीय संवेदना 90
विमला कृपाकर
99. रेणु के उपन्यासों में सामाजिक संदर्भ 90
बबीता कुमारी
100. फणीश्वरनाथ रेणु की सृजनात्मकता और पत्रकारिता 91
बिरेन्द्र प्रसाद
101. फणीश्वरनाथ रेणु और राष्ट्र-निर्माण चिंता 91
मुरारी कुमार
102. रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ 92
मौसम कुमारी
103. फणीश्वरनाथ रेणु : गद्य-सृजन का फलक 92
दयानन्द कुमार

104. फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन संदर्भ 93
सृष्टि सुमन
105. 'मैला आँचल' में आंचलिक संदर्भ 94
गौड़ी शंकर यादव
106. रेणु साहित्य का ऐतिहासिक संदर्भ 95
विपुल विनय
107. 'मैला आँचल' का सामाजिक संदर्भ 95
ओम प्रकाश 'निराला'
108. 'मैला आँचल' का सामाजिक संदर्भ 96
प्रीति कुमारी
109. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में राजनीतिक यथार्थ 97
सरिता कुमारी
110. 'रेणु'जी के जीवन और साहित्यिक आयाम 97
निशा कुमारी
111. फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में विविध रंगों की अभिव्यक्ति 98
अशोक कुमार महतो
112. रेणु साहित्य का आंचलिक संदर्भ 98
मनीष कुमार
113. रेणु का आँचलिक उपन्यास एवं कहानी साहित्य 99
तारा बाबू
114. रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ 99
खुशबू कुमारी
115. फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में सामाजिक यथार्थ 101
विभीषण सरदार
116. रेणु साहित्य में आज के युवा पीढ़ी की जागरूकता 101
ज्योति प्रकाश
117. फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का आंचलिक संदर्भ 102
स्वीटी कुमारी
118. 'मैला आँचल' में क्षेत्र-विशेष का कथानक होना 103
ज्योति सिन्हा
119. 'फणीश्वरनाथ रेणु' की कहानियों में सामाजिक एवं ग्रामीण जीवन का यथार्थ 104
अनुराधा कुमारी

रेणु : एक योद्धा कथाशिल्पी

नन्दकिशोर नंदन
हरीतिमा, चौधराइन मंदिर गली, नयाटोला, मुजफ्फरपुर - 842001 (बिहार)

वैसे तो मैं रेणु जी की रचनाएँ छात्र-जीवन से ही पढ़ता आ रहा था और विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में होनेवाले सेमिनारों में 'मैला आँचल' उपन्यास की आँचलिकता और उसके औपचारिक शिल्प पर बोलता भी था लेकिन 1972-73 में मैं हिन्दी के प्रयोगधर्मी कथाकार रॉबिन शॉ पुष्प के साथ उनसे दूसरी बार मिला तो उनके अन्दर की उस बेचैनी और आकुलता को पहचाना, जो एक सच्चे और बड़े लेखक की पहचान होती है। देश में बढ़ रही आर्थिक विषमता और सामाजिक स्तर पर निरन्तर बढ़ रहे जातीय भेद-भाव और धार्मिक कट्टरता ने उन्हें व्यथित कर रखा था। वह बार-बार देश की चर्चा करते हुए स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़े शहीदों और उनके मूल्यों और आदर्शों का उल्लेख करते थे और इस बात पर दुःख व्यक्त करते थे कि कुछ क्षेत्रों में विकास होने के बावजूद गाँधी जी के अंतिम आदमी तक उसका लाभ नहीं पहुँच रहा है। रेणु लोकतंत्र के सच्चे प्रहरी थे, उनकी स्वतंत्रता के प्रति आस्था इतनी दृढ़ थी कि आपातकाल के विरोध में सरकार से मिली पद्मश्री को लौटा दिया और मिलनेवाली आर्थिक वृत्ति भी छोड़ दी थी। इसके बरक्स आज के परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह देखकर गहरी निराशा होती है कि आज देश में सारे संवैधानिक अधिकारों पर हमले हो रहे हैं, लेकिन साहित्य अकादमी जैसे शीर्ष संस्थानों में उच्चपदस्थ कथित साहित्यकारों ने सत्ता का ही साथ दिया और तो और विश्वविद्यालयी आलोचकों ने ऐसी संकीर्ण मानसिक सोचवाले कवि-लेखक पर मोटी-मोटी किताबें भी लिख मारी और उन्हें रवीन्द्र और निराला से तुलित भी किया। इस संदर्भ में रेणु के योद्धा लेखक को याद करना रचना-कर्म के मर्म को जानना-समझना है।

1974 में मेरा पहला कहानी-संग्रह 'नाटककार' बिहार ग्रंथ कुटीर, खजांची रोड, पटना से प्रकाशित हुआ था। मैं राजेन्द्रनगर गोलम्बर के पास रेणुजी के एक आई.जी. फ्लैट में उन्हें पुस्तक देने गया तो पुस्तक देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अन्दर से रसगुल्ले ले आए- 'बधाई है, प्रथम-संग्रह के प्रकाशन पर।' उन्होंने संग्रह देखकर कहा कि मैं पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया दूँगा।' यहाँ यह याद करना भी प्रेरक होगा कि रेणु जी हो या नागार्जुन या शील या त्रिलोचन, ये सब नये रचनाकारों को निरन्तर उत्साहित करने के साथ उन्हें अपने परामर्शों और सुझावों से परिमार्जित ही नहीं करते थे, उन्हें साहित्य के राष्ट्रीय क्षितिज पर आने में भी मदद करते थे। उन दिनों बिहार के एक युवा कवि को क्रान्तिकारी छवि के साथ आगे बढ़ाने में रेणु जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी लेकिन बाद में वह रेणुजी के प्रति अन्यथा भाव रखने लगे थे, जिसके प्रसंग में नागार्जुन ने मेरे समक्ष कॉफी हाउस के बाहर उसे यह डाँट पिलायी थी-'रेणु हमारे महान लेखक हैं और उन्होंने राजेन्द्रनगर में नुक्कड़ कवि-सम्मेलन का आयोजन किया है, उसमें मैं तुम्हारे कहने से नहीं जाऊँगा? इमरजेन्सी के खिलाफ आन्दोलन जनता का आन्दोलन है, किसी व्यक्ति का आन्दोलन नहीं है।'' इसलिए रेणु जी से या किसी से भी असहमति हो सकती है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि आप उसके संघर्ष और उसके कृतित्व को एकबारगी भुलाकर उसका विरोध करने लगें। हिन्दी कविता और कहानी में कई ऐसे शब्द-शूरमा लेखक हैं, जो किसी आन्दोलन में जमीन पर नहीं उतरे, मगर क्रान्तिकारी हो गये। स्वाधीनता संग्राम हो, आपातकाल का समय या नेपाल में राजतंत्र के विरुद्ध आन्दोलन, रेणु उसके जुझारू योद्धा थे। वह अक्सर समाजवादी आन्दोलन से जुड़े दिनों को याद करते थे। मुझे याद है, वह नक्षत्र मालाकार (नछत्तर माली 'मैला आँचल') और लखनलाल कपूर (सांसद) की चर्चा करते थे। इस क्रम में वह लोहिया, जयप्रकाश और कृपलानी का अक्सर उल्लेख करते थे। उन्होंने लोहिया की प्रखर वैचारिकता के साथ ही उनकी साहित्यिक-सांस्कृतिक दृष्टि का उल्लेख करते हुए यह कहा था, जो मुझे आज की राजनीतिक पतनशीलता के संदर्भ में बार-बार याद आता है- ''सांस्कृतिक चेतना से विहीन राजनीति अंधकूप जैसी होती है जिसमें गिरनेवाला समाज या देश कभी उठ नहीं पाता।'' यह बात रेणु ही कह सकते थे क्योंकि वह जन-संघर्षों से अंत-अंत तक जुड़े रहे।

रेणु जी जैसे लेखकों के सामने खड़े होने से पहले मैं आज के हर लेखक को स्वयं से यह सवाल करना जरूरी है कि लेखन क्या महज शब्दों का खेल है अथवा उसका जीवन को सुन्दर बनाने के लिए जमीनी स्तर पर चलनेवाले संघर्ष से भी कोई गहरा रिश्ता होता है? कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि की पुस्तकों का छप जाना, अपने लोगों से उसकी प्रसन्नचित्तमूलक समीक्षाएँ लिखवा लेना और जुगाड़ बिठाकर पुरस्कार प्राप्त कर लेना, क्या यही वास्तविक रचना-कर्म है? आज अधिकतर यही हो रहा है। ऐसे कवियों-लेखकों की सारी क्रान्तिकारिता जन-शोषक-उत्पीड़क व्यवस्था के चरणों में दम तोड़ देती है। ऐसे

कवियों-लेखकों के सामने रेणु जैसे रचनाकार एक चुनौती रहे हैं। यही कारण है कि उनके इर्द-गिर्द उनके विरोध में अफवाहें गढ़ी जाने लगती हैं। लमही की वह घटना याद आती है। 1971-72 की बात है। मैं मैथिली के प्रसिद्ध कथाकार श्री प्रभास कुमार चौधरी के साथ प्रेमचन्द के घर गया था। शाम का समय था। श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव (प्रेमचंदजी के संबंधी) ने हमलोगों का यथोचित सत्कार किया। साथ में मेरी पत्नी रमा और बड़ी बिटिया मेधा भी थी। लेखक के नाते मुझसे घर में उपस्थित कई महिलाओं ने कई तरह के प्रश्न किए। उनमें एक प्रश्न था-''प्रेमचंद स्त्री-अधिकारों के बड़े हिमायती माने जाते हैं तो उन्होंने पहली पत्नी को क्यों छोड़ दिया? तब मैंने कहा था-'' विवाह का अर्थ है स्त्री-पुरुष में पारस्परिक प्रेम और हर स्तर पर एक-दूसरे का सहयोग। यदि पत्नी पति की जीवन-यात्रा में सहयोग के बजाय अवरोध की भूमिका में रहे तो क्या पुरुष को अपने जीवन के महत्तर लक्ष्य को देखना चाहिए या उसे गले में लटकाये रखना चाहिए? यदि पति भी ऐसा है तो स्त्री को भी उससे मुक्त हो जाना चाहिए। यह भी तो देखिए, प्रेमचंद ने विवाह भी किया तो एक विधवा से।'' कहना न होगा कि रेणु के बारे में यह कहा जाता रहा है कि उन्होंने गाँव में पत्नी को छोड़कर लतिका जी से विवाह कर लिया। लेकिन मैं साक्षी हूँ कि रेणु जी ने दोनों को एक समान सम्मान दिया है। एक बार मैं बीमार रेणु को पुष्पा जी के साथ पटना मेडिकल अस्पताल के राजेन्द्र कॉटेज में देखने गया था। वहाँ मैंने लतिका जी को उनकी सेवा में देखा था। रेणु जी अक्सर मुझसे कहा करते थे- 'लतिका न होती तो मैं अभी जीवित नहीं होता।' महान रचनाएँ महान आत्माएँ ही रचती हैं। रेणु संवेदनशील मनुष्य नहीं होते तो नौटंकी वाली हीरा बाई के अन्तःस्थल की गहन वेदना को 'तीसरी कसम' में मूर्त नहीं कर पाते। इसीलिए मारिपोला अफ्रीदी ने कहा था-''प्रेमचंद के बाद दूसरा बड़ा लेखक रेणु है।''

■

रेणु के जीवन भटकाव और रास्ता

भारत यायावर

हजारीबाग-825301 (झारखण्ड), मो० : 6204130608/6207264847

रेणु का चौदहवाँ साल चल रहा था। उनके भीतर रूप-पिपासा की लपट-सी उठने लगी थी। यह एक तरह का मानसिक रोग था, जिसकी गिरफ्त में वे आते जा रहे थे। अररिया में कई बंगाली परिवारों के घर उनका आना-जाना होता था। तब तक उन्होंने रवीन्द्रनाथ की अनेक कविताएँ कंठस्थ कर ली थीं। वे शरतचन्द्र के उपन्यासों का भी पारायण कर चुके थे। अपने बंगाली मित्रों के साथ बंगला साहित्य पर उनका गपशप खूब होता। उनके भीतर एक प्रेमी-हृदय का निर्माण हो रहा था। उसी समय एक सुन्दर बंगाली लड़की के प्रति उनका आकर्षण बढ़ रहा था। वे उसके घर जाते और उस लड़की से उनकी घंटों बातचीत होती। उस बातचीत में कभी-कभी उसके घर के भाई-माता-पिता भी शामिल हो जाते। रेणु के मन में उसके प्रति एकतरफा प्रेम पैदा हो रहा था। वे कहते कुछ नहीं थे। ऊपर से सामान्य रहते और नियमित स्कूल जाते।

एक दिन स्कूल में उनका एक सहपाठी अपने बस्ते में एक किताब ले आया। वह पुस्तक थी- जवाहरलाल नेहरू की 'पिता के पत्र पुत्री के नाम।' जवाहरलाल नेहरू तब युवा हृदय सम्राट थे। उनका आकर्षक व्यक्तित्व और ओजस्वी भाषण लोग बेहद पसंद करते थे। रेणु के मन में नेहरू के प्रति बहुत आदर था। लोग उनकी इकलौती बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी की भी काफी चर्चा करते थे। यह कैसी है? रेणु को भी देखने की जिज्ञासा थी। यह किताब मूल रूप से अंग्रेजी में लिखी गई थी। जवाहरलाल नेहरू ने हिंदी में प्रेमचंद से अनुवाद करवाकर बहुत अच्छे कागज पर इसे प्रकाशित करवाया था। किताब के शुरू में आर्ट पेपर पर नवयौवना इंदिरा प्रियदर्शिनी की एक सुन्दर तस्वीर थी।

रेणु ने जब उस पुस्तक को अपने सहपाठी से माँगकर देखा, तो तस्वीर देखकर मुग्ध हो गए। अपने सहपाठी से अनुनय-विनय कर पढ़ने के लिए उन्होंने यह किताब ली। डेरे पर आकर उस फोटो को निहारते रहते। सुंदर मदमाती आँखें। लम्बी नाक। उनके मन-मस्तिष्क पर इतना असर कर गई थी कि वे उसे घंटों निहारते रहते। सुबह उठकर एक बार देखकर नित्यक्रिया करते। फिर स्कूल से आने के बाद बार-बार उसे देखते।

उनके सहपाठी ने पुस्तक लौटाने के लिए कहा तो रेणु ने जवाब दिया- ''एक-दो दिनों में लौटाता हूँ। अभी कुछ

पढ़ना शेष रह गया है!''

कुछ दिनों बाद किताब लौटाने के लिए उनका सहपाठी लड़ाई करने पर उतारू हो गया। अंत में, आजिज आकर रेणु ने किताब लौटा दी। उनके सहपाठी ने जब किताब को खोलकर देखा तो इंदिरा प्रियदर्शिनी की तस्वीर गायब थी। वह गुस्से में भर उठा- ''तस्वीर कहाँ गई?'' रेणु ने कहा- ''मैंने निकाल ली है और उसे नहीं लौटाऊँगा।''

उनका अपने परम मित्र से इस बात पर बहुत झगड़ा हुआ। बात क्लास टीचर के पास पहुँची। उन्होंने भी रेणु को समझाया। पर रेणु अड़े रहे। हेडमास्टर साहब तक बात पहुँची तो उन्होंने पिटाई भी कर दी। लेकिन रेणु टस-से-मस नहीं हुए और वह तस्वीर नहीं ही लौटाई! ऐसा उस रूप का आकर्षण था।

वे अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए रोज स्कूल जाते। लेकिन उस तस्वीर को देखना नहीं भूलते। उसे कई बार मोड़कर अपनी धोती में छुपाकर रखते। जब एकान्त मिलता, एक नजर देख लेते। अंत में वह तस्वीर जब जीर्ण-शीर्ण हो गई, तभी रूप का वह आकर्षण समाप्त हुआ।

इसी समय उन्होंने शरतचन्द्र का उपन्यास 'देवदास' पढ़ा। धीरे-धीरे वे अपने-आपको 'देवदास' समझने लगे और जिस बंगाली लड़की से वे प्रेम करते थे उसे पारो।

यहाँ विषयांतर में जाकर 'देवदास' उपन्यास के बारे में बताना आवश्यक समझता हूँ। इस उपन्यास की रचना शरतचन्द्र ने 1917 में की थी। एक बार उन्होंने कहा था- 'देवदास' के सृजन में मेरे हृदय का योग है।' इस उपन्यास के भावुकता से भरे एक असफल प्रेमी का आत्महंता स्वरूप अजीब तरह से नवयुवकों को अपने में आविष्ट कर लेता था और कई भावुक युवकों ने इसे पढ़कर आत्मघात भी कर लिया था। बाद में शरतचन्द्र ने यह स्वीकार भी किया था कि देवदास की आत्मघाती भावुकता को इतना निश्च्छल और महान् बनाकर आदर्श रूप में उन्हें प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिए था। लेकिन वे क्या करते? जब वे लिख रहे थे उस समय वे ऐसे ही प्रेम की पीड़ा से छटपटाते रहते थे। छटपटाहट और प्रेम की पीड़ा की कसक एक अपरिपक्व किशोर हृदय की है और वह पार्वती या पारो तक पहुँचने का सही रास्ता स्वयं को समाप्त करना भी ठीक नहीं है। लेकिन 'देवदास' छप चुका था और उसके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। हिन्दी अनुवाद होकर जब वह हिन्दी प्रदेशों में फैला तो अनगिनत नवयुवकों के हृदय को उसने झकझोर दिया। 'देवदास' में प्रेम की प्रगाढ़ता एक अजीब तरह की बेचैनी पैदा करती है। भावुकता का प्रसार करती है और जो प्रेम के मायाजाल में फँसे हुए हैं, उन्हें तो मानो पागल ही बना देती है।

रेणु प्रेम में पड़े हुए थे और शरतचन्द्र का देवदास उनके भीतर प्रवेश कर गया था। कुछ दिनों तक इन्दिरा प्रियदर्शिनी की तस्वीर ने इस देवदास का ध्यान पारो से हटाया, पर जब वह मुड़ी-तुड़ी तस्वीर का अस्तित्व समाप्त हो गया, तो फिर पारो की तरफ उनका मन भागने लगा। ऐसे में ही 1934 का साल बीत गया। आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर 1935 में वे नवीं कक्षा में गए। लेकिन उनका मन पढ़ाई से उचट चुका था। वे इधर-उधर से जुगाड़कर कहानी और उपन्यास पढ़ते। साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने का यह रोग तो उनमें कम ही उम्र से था, वह अब उफान पर आ चुका था।

वे जैनेन्द्र कुमार का कहानी-संग्रह 'फाँसी' पढ़ चुके थे। इसे पढ़कर वे इसके पात्र शमशेर और जुलैका के बारे में घंटों विचार करते रहते। बहुत बाद में उन्होंने 'फाँसी' कहानी के इन दोनों पात्रों को लेकर जैनेन्द्र पर लिखते हुए एक रूपक बाँधने की कोशिश की थी, जो इस प्रकार है-

लोगो,
शमशेर से क्यों डरते हो ?
वह फौलादी है,
पर देखो, कितना झुक जाने को तैयार है!
लेकिन, खबरदार!
उसकी धार के सामने न पड़ना,
वह न्याय की तरह बारीक है।
शमशेर दो बातें जानता है
बहादुरी और गरीबी
जिनमें दोनों नहीं, वे क्या आदमी हैं ?

जानते हो, शमशेर प्यार का क्या करता है ? उसे कुचल डालता है, फिर जरा रो लेता है और अपने काम में लग जाता

है।

रेणु की तब यही मनःस्थिति थी। उनका एक मन फौलादी था और एक मन झुकने को तैयार रहता था। उनका एक मन अपना सबकुछ लुटाकर मुफलिसी को गले लगाना चाहता था, पर बहादुरी को कभी खुद से अलग करना पसंद नहीं करता था।

'फाँसी' कहानी में शमशेर और जुलैका प्रसंग पर लिखते हैं-

''और कुछ नहीं शमशेर, और कुछ नहीं?''

''और कुछ नहीं? मरते वक्त और कुछ नहीं?''

''नहीं!''

''थोड़ा-सा प्यार?''

''जुलैका, क्या कहती हो ?''

''बिल्कुल जरा, जरा-सा प्यार''

रेणु लिखते हैं- ''मेरा पूरा विश्वास है कि हिन्दी का प्रिय कवि शमशेर वही है, जिसे जुलैका प्यार करती थी। इसी विश्वास को लेकर जी गया। वरना पार्वती के दरवाजे पर किसी दिन सुबह भीड़ लग जाती और बैलगाड़ी पर लदी हुई लाश को लोग हाथ में अंकित नाम से ही पहचानते। देवदास पढ़ने के बाद ही अपने हाथ पर अपना नाम 'गोदवा' चुका था।

देवदास बने रेणु के मन में पलायनवादी मानसिकता का निर्माण हो चुका था। वे भावुकता के भीषण दौर से गुजर रहे थे। प्रेम के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना उनमें बलवती हो रही थी। एक दिन वे अररिया से फरार होकर भागलपुर पहुँच गए। दो दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। फिर घर की याद आने लगी- माँ, बाबूजी और दादी। सभी भाई-बहन। फिर अपनी प्रिया की याद आई। वे लौट आए। एक बार वे भागकर गौहाटी चले गए। किन्तु, मन को चैन नहीं था।

अररिया में स्कूल जाते, घर आते और गुमसुम रहते। लेकिन पढ़ने का जो रोग लगा था, वह बरकरार रहा। वे हिन्दी और बंगला की साहित्यिक किताबें बड़े ही मनोयोग से पढ़ते। एक रोग और भी उनमें लगा था- मेला देखने का। रूप का आकर्षण, प्रेम की ज्वाला, पढ़ने-लिखने के साथ-साथ मेला के अनेक दृश्यों को बहुत गौर से देखना- उनके व्यक्तित्व में समाहित था। ये सभी प्रसंग एक साथ चल रहे थे।

इसलिए इस प्रेम-प्रसंग की कथा कहने के पहले मेला-प्रसंग की कथा कहना जरूरी है।

पूर्णिया जिले में दुर्गापूजा के समय से अगहन महीने तक जगह-जगह मेला लगा करता था। उसमें तरह-तरह की नौटंकी कम्पनियाँ अपना 'खेल' दिखातीं। दुकानें सजतीं। तरह-तरह के सामान बिकते। रेणु स्कूल से भागकर इन मेलों में प्रायः जाते रहते थे। उनकी कहानी 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' में फारबिसगंज में लगे एक मेले का आंशिक चित्र भी उन्होंने उपस्थित किया है, किन्तु अपनी कहानी 'नेपथ्य का अभिनेता' में उन्होंने अपने स्कूली दिनों के मेला देखने के शौक को संस्मरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

1929 ई. में रेणु पहली बार गुलाबबाग मेला अपने पिताजी के साथ गए थे। गुलाबबाग पूर्णिया शहर के नजदीक एक व्यापारिक मंडी है। वहाँ के एक बड़े मैदान में यह मेला लगता था और यह पूर्णिया जिले का सबसे बड़ा मेला होता था। रेणु जब पहली बार गुलाबबाग मेला गए थे, तो वहीं पहली बार एक हवाई जहाज को बहुत नजदीक से देखा था। वहाँ कलकत्ता से एक थियेटर कम्पनी आई थी, जिसमें तिल धरने की जगह भी नहीं थी। उन्हें बेहद अजूबा लगा था- मंच पर ही रेलगाड़ी आती-जाती थी- इंजिन सहित, पुक्का फाड़ती, धुँआ उगलती हुई! मंच पर ही लाल-पीली रोशनी में अनेक परियों को उन्होंने पहली बार देखा था और देखते रह गए थे। जीवन में पहली बार थियेटर में यह सब देखकर वे बेहद उत्तेजित हो गए थे और आश्चर्य से भर उठे थे। उनका एक मित्र था बकुल बनर्जी! उसने बताया था कि इस थियेटर कम्पनी में नागेसरबाग मेला से निकाले गए कलाकार ही हैं। इसमें एक कलाकार का अभिनय रेणु को बहुत पसंद आया था। उस कलाकार ने एक रेलवे पोर्टर का अभिनय किया था- वह रेलवे के वेटिंग रूप में सोये हुए लड़के को छूरा से खून कर रहा था। देखकर रेणु का डर से रोम-रोम सिहर उठा था। यह दृश्य भूलता ही नहीं था- गुलाबबाग मेला का वह थियेटर- मंच पर पंजाब मेल का आना- लड़के का खून!

फिर कई साल के बाद सिंहेश्वर मेला में उमाकान्त झा की कम्पनी में इस अभिनेता को उन्होंने पहचान लिया था! अरे यह तो था वही खूनी हत्यारा! लेकिन यहाँ 'बिल्वमंगल' नाटक खेला जा रहा था और चिंताबाई की मजलिए में एक बाबाजी के भेष में वह सुमधुर कंठ से गा रहा था-

काया का पिंजरा डोले रे

साँस का पंछी बोले!

रेणु चौंक पड़े! गुलाबबाग मेला में ठीक हत्यारे की तरह लग रहा था- हाथ में चाकू और लाल-लाल आँखें। पर यहाँ तो ठीक बाबाजी लग रहा है- गेरुआ कपड़े पहने! उस हत्यारे का कथन तो मानो उनको याद ही हो गया था-

''क्यों मेरे हाथ!
तू क्यों थरथरा रहा है ?
तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है।
मत काँप मेरे खंजर वक्त बर्बाद मत कर!
शिकार सोया है चादर तानकर!
ले तू भी अपना काम कर!''

लेकिन यहाँ तो यह सचमुच का बाबा लग रहा है! फिर उसने एक अद्‌भुत कवित्त का पाठ किया-

मृदंग कहै धिक है, धिक है!
मंजीर कहै किनको, किनको ?
तब हाथ नचाय के गणिका कहती
इनको, इनको, इनको, इनको!

फिर अद्याप्रसाद की नाटक कम्पनी में 'श्रीमती मंजरी' नामक खेल में वही अंगरेज जज का भेष बनाकर टेबुल पर हथौड़ा ठोंककर बोला था- ''वेल मोंजरीबाई! हाम टुमको सिड़ीमटी मोंजरी का खेराब डेटा हाय। आज से टुमको सिड़ीमटी मोंजरी बोलेगा, समझा!''

फिर इस दृश्य के कुछ समय बाद वह बाबाजी के गेरुए भेष में वही गीत गाता हुआ प्रकट हुआ था- ''काया का पिंजरा डोले रे! साँस का पंछी बोले।''

रेणु के मन में थियेटर के इस अभिनेता के प्रति बेहद आकर्षण था। लेकिन अपने इलाके के रंगमंच के वे भी जमे हुए अभिनेता थे। उनके स्वाभिमान को ठेस लगने से वे तनकर खड़े हो जाते और उसका उत्तर दो टूक दिया करते। उस समय रेणु के भीतर देवदास की आत्मा घुसी हुई थी और दिल बहलाने को वे इधर-उधर भटकते रहते थे।

एक बार फारबिसगंज में मेला लगा हुआ था और अभिनेताओं का दल दिन में पान-सिगरेट-चाय के लिए निकला था। उसमें लैला, मजनूँ, शीरी, फरहाद, राजा, डाकू आदि का रोल करनेवाले एक ग्रूप में गपशप करते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे और यह नया देवदास उनके पीछे-पीछे उनकी बातें सुनता चल रहा था। अचानक 'काया का पिंजरा डोले रे' गाने वाला साधु यानी वह हत्यारा यानी वह अंगरेज जज पीछे मुड़ा और इस देवदास को कड़े शब्दों में फटकारा- ''क्यों बे छोकरे! इस तरह क्यों घूम रहा है हमारे पीछे-पीछे ? पॉकेट मारेगा क्या ?''

यह देवदास बने रेणु के आत्मसम्मान पर आघात था। उनके अहं को चोट लगी थी। उन्होंने करारा उत्तर दिया- ''आपके पॉकेट में है ही क्या जो कोई मारेगा?''

''क्यों? तू यह कैसे जानता है कि मेरा पॉकेट खाली है?'' उसने चकित होकर पूछा था।

रेणु के भीतर से तब देवदास निकलकर फुर्र हो गया था। उनके शिक्षक ने उन्हें सिखाया था कि अपरिचित आदमी से जब भी बात करो, अंग्रेजी में करो, क्योंकि अंग्रेजी बोलने से रौब जमती है और स्कूल का नाम भी होता है। लोग कहते हैं कि देखो इस स्कूल का विद्यार्थी फर्राटे से अंग्रेजी में बात कर लेता है। लेकिन उनके भीतर हिन्दी के प्रति बेपनाह प्रेम था, इसलिए अपनी अंग्रेजी को भीतर ही रोककर उन्होंने हिन्दी में कहा- ''क्यों, रात को जो भीख माँग रहे थे- दाता तेरा भला करे!''

वह अभिनेता पिछली रात को नाटक में भिखारी का अभिनय कर रहा था। उसी की याद रेणु ने दिलाई थी। उनकी बात सुनकर सभी अभिनेता ठठाकर हँस पड़े थे। उसने कहा- ''यह छोकरा तो बहुत तेज है!''

तब रेणु की अंगरेजी बाहर आई और उस अभिनेता को झाड़ते हुए उन्होंने कहा- ''यू सी मिस्टर रेलवे पोर्टर-ऐक्टर! डोंट से मी छोकरा! आई एम ए हाई स्कूल स्टूडेंट! यू नो?''

रेणु के इस अंदाज में कहे गए शब्दों पर फिर सभी ठठाकर हँस पड़े।

वहीं मेला में घूमते हुए उनकी नजर एक आदमी पर पड़ी। वह गोदना गोद रहा था। रेणु के भीतर से फिर घायल प्रेमी देवदास जाग्रत हुआ और उन्हें लगा कि जब उनकी लाश लावारिस रूप में पड़ी होगी तो लोग कैसे पहचानेंगे ? उन्होंने अपने नाम

के प्रथमाक्षर को एक कागज पर लिखकर गोदना वाले को दिया- F.N.M. और उनकी बाँह पर गोदना अंकित हो गया।

1935 ई में नौवीं कक्षा में वे पढ़ रहे थे। देवदास की भावुकता भरी छाया से वे लिप्त होते और फिर मुक्त होते। उनकी पारो की शादी तय हो गई थी। उसके परिवार में गहना-जेवर खरीदने की चिन्ता सता रही थी। एक दिन देवदास जी अपने गाँव गए और अपनी माँ के गहने जाकर दे आए। घर में जब जेवर की खोज शुरू हुई तो पिता का संदेह पुत्र पर हुआ। उन्होंने रेणु से पूछा तो उन्होंने अपने पिता को सब बातें बता दीं। फिर यह भी बताया कि उसकी शादी हो गई है और वह ससुराल चली गई है।

फिर रेणु के भीतर का देवदास फफक-फफककर रोने लगा!

पिता उसे देखते रह गए। उनके हृदय में दुख की लहरें उठने लगीं। उन्होंने सोचा था कि बेटा हमारा बड़ा नाम करेगा! लेकिन यह पुत्र तो प्रेम में पड़कर नालायक हो गया था अर्थात् किसी काम का नहीं रह गया था। घर-भर में मातम पसर गया था। उसने यह भी घोषणा कर दी कि अररिया स्कूल में अब वह नहीं पढ़ेगा।

देवदास बने रेणु गुमसुम रहते। माँ उनको जबरदस्ती कुछ खिलाती, वरना भूखे रहते। फिर उन्होंने रवीन्द्र और शरत को विधिवत् पढ़ना शुरू किया। उनके बंगला साहित्य के गुरु फुदो बाबू हर सप्ताह आते और रेणु की अनेक जिज्ञासाओं को शांत करते। रेणु को रवीन्द्र की अनेक कविताएँ तब याद हो गई थीं। हिन्दी कविता और कथा-साहित्य भी वे मनोयोग से पढ़ते थे। वे ऋषभचरण जैन के कथा-साहित्य को भी बड़े ही चाव से पढ़ते।

रेणु अररिया स्कूल में पढ़ना नहीं चाहते थे, इसलिए औराही में ही रहते। उनके पिता ने उन्हें बहुत समझाया और हाथ पकड़कर स्कूल ले गए। फिर उनको अपनी कक्षा में जाकर बिठा दिया। फिर गाँव चले आए। कुछ देर के बाद रेणु मियाँ भी स्कूल से फरार होकर अपने गाँव चले आए। लेकिन पिताजी की मार न पड़ जाए, इसलिए धान रखने के कोठार में जाकर छुप गए। कोठार में धान भरा हुआ था। उसमें छुपने के लिए पैर को मोड़ना और सिर को झुकाकर रखना आवश्यक था। ऐसी दशा में कुछ देर रहने के बाद ही उनका दुबला-पतला शरीर भी अकड़ने लगा। उनके सामने समस्या थी कि इतनी कम जगह में मेंढक की तरह बैठा कैसे जाए। वे कभी-कभार हाथ-पैर फैलाते तो खटर-पटर की आवाज सुनाई पड़ती। किसी ने कोठार की जब यह हलचल सुनी तो जोर से चिल्लाया- चोर ! चोर !

घर के सभी लोग जुट गए- आँय ! कोठार में चोर घुसा हुआ है ? इसके पहले कई घरों में कई बार चोरियाँ हो चुकी थीं। लोग चोरों से परेशान थे। शोर सुनकर पड़ोस के लोग भी जमा हो गए थे। सबने अपने हथियार अपने हाथों में पकड़े हुए थे-- आज चोर को पकड़ ही लेना है!

रेणु मेंढकावस्था में कोठार में छुपे हुए मुस्कुरा रहे थे। तभी उनकी अपने पिताजी की कड़क आवाज सुनाई पड़ी- ''ऊपर से भाला भोंक दो। जो भी चोर होगा, वहीं राम नाम सत्य हो जाएगा।''

रेणु की जान सूख गई! चोर भी तो आदमी ही है। ऐसा कहीं भाला से भोंककर मारा जाता है! उन्होंने चिल्लाकर कहा- ''पिताजी! मैं रेणु हूँ!'' फिर कोठार के मुँह से अपना सिर बाहर निकाला।

''अरे, यह तो रेणु है!'' कहकर चोर पकड़ने वाले लोगों की भीड़ छँटती चली गई। शिलानाथ मंडल रेणु का हाथ पकड़कर अपनी बैठकी में ले आए और कहा, ''तुम्हें तो मैं सुबह लेकर स्कूल में तुम्हारी कक्षा में बिठा आया था, फिर क्यों भाग आया?''

रेणु ने सपाट उत्तर दिया, ''मुझे इस स्कूल में नहीं पढ़ना है। मेरा दिल नहीं करता। इसलिए आप मेरा टी.सी. लेकर फारबिसगंज में नाम लिखा दीजिए।''

उनके पिताजी को धीरे-धीरे सभी बातें समझ आ रही थीं। उन्होंने कहा, ''ठीक है!''

दूसरे दिन हेडमास्टर के कक्ष में बैठकर वे रेणु का टी.सी. ले रहे थे। टी.सी. पर हस्ताक्षर करते हुए हेडमास्टर साहब ने कहा, ''मंडल जी, इस लड़के को जिस स्कूल में ले जाना है, ले जाओ ! दुनिया-जहान की सैर कराओ। लेकिन इस मूर्ख लड़के का कुछ नहीं हो सकता! अस्तबल बदलने से घोड़ा तेज नहीं होता।''

शिलानाथ मंडल ने बस इतना कहा, ''देखते हैं आगे यह घोड़ा भागकर कहाँ-कहाँ जाता है ? लेकिन, सर! मैं यह समझ गया हूँ कि यह बँधकर रहनेवाला घोड़ा नहीं है।''

फिर वे रेणु को घर ले आए। आगे जो भी करना था, गणेश प्रसाद विश्वास और रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' से विचार-विमर्श कर ही करना था।

रेणु के बचपन के शिक्षक गणेश प्रसाद विश्वास ढोलबज्जा स्कूल चले गए थे। वे फारबिसगंज से सटे ढोलबज्जा मिडिल

स्कूल में पढ़ाने पैदल ही जाते। 1934 ई. के मध्य में फारबिसगंज के 'ली एकेडेमी' नामक हाई स्कूल में शिक्षक का एक पद रिक्त हुआ और उन्होंने आवेदन दिया। वे वहाँ बहाल हो गए। वे लिखते हैं- ''अष्टम श्रेणी पास कर जब रेणु नवम में गया तो एक दिन उसके पिताजी ने एकाएक फारबिसगंज में आकर मुझसे एकान्त में कहा- ''गणेश बाबू, मैंने जिस उच्च अभिलाषा से प्रेरित आपके विद्यार्थी को अररिया भेजा था, उस पर उसने पानी फेर दिया। वह एक बंगाली लड़की के प्रेम-चक्कर में फँस गया है। घर के पैसे के अलावे उसने कुछ स्वर्ण आभूषणों को भी उसके हवाले कर दिया है। अब मैं भारी परेशानी में पड़ गया हूँ। आप ही इसका उपचार सोचें।''

आगे वे लिखते हैं- ''मैं यह दुर्भाग्यपूर्ण समाचार सुनकर अवाक् एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। फिर उन्होंने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा- आप अन्यथा न मानें तो मैं पुनः आपको कष्ट दूँ। मैं उसे फिर से आपके जिम्मे लगाना चाहता हूँ। आप उसे सुधारें।''

गणेश प्रसाद विश्वास ने सहर्ष सहमति दी। फिर वे फारबिसगंज में ही रह रहे रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' से मिले और रेणु के सन्बन्ध में सभी बातें बताईं। उन्होंने भी अपने संरक्षण में रखने की स्वीकृति दे दी। शिलानाथ जी अपने गाँव लौट गए। उन्होंने रेणु को अपने पास बुलाया और समझाया, फिर तिवारी जी और गणेश बाबू के सान्निध्य में रहकर फारबिसगंज में ही शिक्षा प्राप्त करने की बात कही। रेणु ने अपनी सहर्ष सहमति दी अर्थात् वे फारबिसगंज में रहने के लिए तैयार हो गए।

एक दिन एक संदूक में अपने कपड़े और किताबों के साथ फारबिसगंज में तिवारी जी के घर शिलानाथ मंडल उनको छोड़ आए। तिवारी जी ने चंदा उगाहकर फारबिसगंज में एक नेशनल स्कूल एक खपड़ैल के मकान में कायम किया था, जो चल नहीं पाया था। उसी में काँग्रेस के कुछ युवा कार्यकर्ता रहा करते थे। रेणु पहले भी काँग्रेस के इस दफ्तर में रह चुके थे। तिवारी जी के घर से यह लगा हुआ था। तिवारी जी ने इसी के एक कमरे में रेणु के रहने की व्यवस्था कर दी। यहाँ रहकर उनका सघन अध्ययन का अभ्यास और भी तीव्र हुआ। तिवारी जी इन सभी युवाओं को देश-दुनिया की बातें बताते और बीच-बीच में कई हास्य-प्रसंग सुनाकर हँसाते। समय निकालकर पास में ही स्थित ली एकेडेमी स्कूल में जाकर वे गणेश मास्टर से भी शिक्षा ग्रहण करते।

पूर्णिया जिले में उन दिनों हिन्दी के प्रमुख कथाकार अनूपलाल मंडल रहा करते थे। वे उपन्यासकार थे। उनके उपन्यास भागलपुर के उन्हीं द्वारा स्थापित युगांतर साहित्य संस्थान से प्रकाशित होते थे। इसी नाम से उनकी किताबों की दुकान थी। वे पूर्णिया जिले के विभिन्न कस्बों में जाकर अपनी किताबें बेचा करते थे। उन्हीं के शब्दों में उनका आत्मवृत्तांत सुनिए जब मुझे रुपयों की विशेष आवश्यकता पड़ती, एक बड़े बक्से में पुस्तकें भर कर सीधी ट्रेन से फारबिसगंज जा पहुँचता और वहाँ के नेशनल स्कूल में अपने साथी श्री बोकाय मंडल के यहाँ डेरा डालता। उन दिनों नेशनल स्कूल टूट चुका था, उसकी जगह काँग्रेस पार्टी के दस-बारह स्वयंसेवक रहा करते थे, जिनके संचालक मेरे साथी श्री मंडल थे। उन्हीं दिनों मेरे एक श्रद्धास्पद और हितैषी थे, उनका मकान उक्त स्कूल के पास था। वे स्वयं अच्छे नाटककार थे और उनके कई नाटक निकल चुके थे। उनका वहाँ बड़ा सम्मान था। वे मुझ पर बड़े सहृदय और मेरे बड़े प्रशंसक थे। उन्हीं के सहयोग से मेरी सारी पुस्तकों की खपत हो जाती थी।

अनूपलाल मंडल अपनी किताबों पर अपना नाम तब मंडल की जगह साहित्यरत्न लिखते थे यानी अनूप साहित्यरत्न। द्विजदेनी जी के यहाँ यदा-कदा उनकी भेंट शिलानाथ जी से हो जाती थी, जो अपने मंडल को छुपाकर विश्वास बताया करते थे। वे अपने पुत्र की रचनात्मक प्रतिभा की प्रशंसा भी करते रहते थे।

1935 ई. में तिवारी जी के घर पर साहित्यरत्न की भेंट विश्वास से हुई। उन्होंने पूछा- आपका पुत्ररत्न कहाँ है ? क्या कर रहा है ?

पिता ने बताया कि उसने पढ़ना छोड़ दिया है। वह यहीं काँग्रेस आश्रम में रहकर काँग्रेस पार्टी की वोलंटियरी करता है। शायद आपने देखा भी होगा।

अनूप जी ने कहा- ''काँग्रेस के आश्रम में तो दस-बारह लड़के रहते हैं, इसलिए पहचान नहीं पाया!''

शिलानाथ ने कहा- ''अभी तो आप हैं न! मैं उसे आपसे मिलने को कह दूँगा।''

फिर वे जब लौटने लगे तो रेणु को बता गए कि प्रसिद्ध साहित्यकार अनूप साहित्यरत्न आए हुए हैं और वे तिवारी जी के यहाँ ठहरे हुए हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं, मिल लेना।

रेणु अनूपलाल की किताबें पढ़ चुके थे। अपने पिता के लेखक मित्र से मिलना उनका सौभाग्य था। अगले दिन तीन बजे वे अनूपलाल जी का चरण-स्पर्श कर सामने खड़े हो गए और अपना नाम बताया। वे रेणु के व्यक्तित्व को देखकर बहुत प्रभावित

हुए- किशोर वय का शरीर, लम्बा और सुडौल, पानीदार साँवला-सलोना रंग, सिर पर सघन केश-कुछ ललाट पर छाए हुए, तीखे नाक-नक्श। वे देखते ही मोहित हो गए।

उन्होंने पूछा- ''तुम कविता करते हो ?''

रेणु के सिर हिलाने पर उन्होंने सुनाने के लिए कहा। रेणु ने अपना लिखा एक सवैया सस्वर सुनाया, जिसकी आखिरी पंक्ति थी-

कवि रेणु कहे, कब रैन कटे, तमतोम हटे!

अनूपलाल जी ने तब पूछा- ''तुमने अपना कवि नाम रेणु रखा है। रेणु का मतलब क्या होता है ?''

रेणु ने उत्तर दिया- ''जी रेणु का मतलब धूल होता है। मुझे धूल और धरती से बहुत लगाव है!''

अनूपलाल जी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने दिल खोलकर आशीर्वाद दिया और समझाया, ''पढ़ाई करना बहुत जरूरी है। तुम देशहित में काम कर रहे हो, लेकिन भारत जब आजाद होगा तो पढ़े-लिखे लोगों का ही मान होगा। तुम्हारे बाबूजी तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं। तुम्हें कुछ बनते हुए देखना चाहते हैं। वोलंटियरी करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। देखो रेणु, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। पढ़ना शुरू कर दो। किसी स्कूल में नाम लिखाकर। क्या कहते हो ? पढ़ोगे न ?''

रेणु ने कुछ क्षण मौन रहकर कहा- ''हाँ-हाँ, मैं पढ़ूँगा। आप मेरे बाबूजी से कह दें, वे मेरे पढ़ने की व्यवस्था कर दें।''

अनूपलाल जी ने कहा- ''वे चार बजे मुझसे मिलने आएँगे, मैं उनसे कह दूँगा।''

रेणु को तो पढ़ने का भीषण रोग लगा ही हुआ था। वे नियमित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ रहे थे। स्कूल में पढ़ने से भी उनकी कोई असहमति नहीं थी। किन्तु, अररिया में रहते हुए उनके भीतर जो प्रेम का संचार हुआ था, वह उन्हें मथता रहता था। द्विजदेनी जी के सान्निध्य में रहते हुए वे इस भीषण यंत्रणा से बाहर आने की कोशिश करते रहते थे। वे उन्हें लेकर विभिन्न गाँवों में जाया करते। एक बार वे अपने तीन-चार शिष्यों को लेकर काँग्रेस और गाँधी के संदेश को प्रचारित करते दूर के गाँव के एक सम्पन्न व्यक्ति के यहाँ पहुँचे। उन्होंने सब लोगों के लिए चाय की व्यवस्था की। रेणु के सामने भी चाय का गिलास रखा गया। तब तक वे चाय नहीं पीते थे। उन्होंने चाय पीने से इनकार कर दिया। तब द्विजदेनी जी ने चाय पर एक दोहा बनाकर सुनाया-

दूध-चीनी-चाय डाली, केतली गरमागरम।

एक प्याला पी लो रेणु, सर्वरोग विनाशनम।

यह दोहा सुनकर सब हँसने लगे। गुरु का आदेश था। रेणु ने पहली बार चाय पी। सभी रोगों का विनाश चाय कैसे कर सकती थी ? रेणु को तीन रोग लग चुके थे जो असाध्य थे। पहला रोग पढ़ने-लिखने का था। दूसरा स्वाधीनता प्रेमी का और तीसरा प्रेम का! पहले दोनों रोग उनको विकास के पथ पर ले जा रहे थे लेकिन तीसरा रोग तो उनको तो उनको भीतर-भीतर कुतर-कुतर कर खा रहा था।

गर्मियों के दिन थे। रेणु के मन में इच्छा हुई कि कविगुरु और शरत को देखा जाए। इनकी चर्चा बंगला पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, हिन्दी की पत्रिकाओं में भी भरपूर रहती थी। रवीन्द्र और शरत् को तो वे लगातार पढ़ते ही रहते थे। एक दिन बिना किसी को बताए वे कलकत्ता के लिए प्रस्थान कर गए। फारबिसगंज से ट्रेन पकड़कर वे कटिहार जंक्शन पहुँचे। यह पूर्णिया जिले का सबसे बड़ा जंक्शन था। वहीं से कलकत्ता के लिए ट्रेन में बैठकर यात्रा की। इधर उनके गायब होने से उनके पिता और घर वाले बहुत चिंतित हुए। द्विजदेनी जी ने काँग्रेस आश्रम के सभी शिष्यों से कहा- ''रे रेणु कहाँ है, खोज-खोज!''

लेकिन रेणु तो कलकत्ता पहुँचकर इधर-उधर भटक रहे थे। वे महानगर की भव्यता के चकाचौंध से विस्मित थे। कई दिनों के बाद खोजते-खोजते रवीन्द्रनाथ के महल के द्वार तक पहुँचे। उनके कपड़े धूल-धूसरित हो गए थे। उन्हें गेट पर ही रोक दिया गया। वे कविगुरु के भव्य भवन को देखते ही रह गए। उन्होंने चौकीदार से पूछा- इस जगह का नाम जोड़ासांको क्यों है? उसने बताया कि यहाँ पहले एक नाला था, जिसपर लकड़ी के पतले दो पुल बने थे। एक आने के लिए और एक जाने के लिए। पुल को बंगला में सांको कहते हैं। इसी के कारण इस जगह को जोड़ा सांको पुराने जमाने से कहा जाने लगा। अंग्रेजों ने जब इसका निर्माण किया तो नाले को भूमिगत कर दिया।

रेणु को रवीन्द्रनाथ के दर्शन तो नहीं हो सके, लेकिन अब शरत से मिलना था। उन्होंने शरत के घर का पता लगाया तो उन्हें मालूम हुआ कि दक्षिण कलकत्ता के बालीगंज इलाके में 24, अश्विनी दत्त रोड में उनका मकान है। जैसे-तैसे वे वहाँ पहुँचे। पर शरत के मकान को खड़ा होकर देखा और सोचा- एक लेखक अपने दम पर इतने बड़े मकान का निर्माण करवाकर रह रहा

है। यह बड़ी बात है। फिर उनके मन में आया कि कलकत्ता आए पाँच दिन हो गए हैं और मेरी माँ तथा बाबूजी चिंतित हो रहे होंगे। पितातुल्य तिवारी जी मुझे खोजते हुए भटक रहे होंगे। घर लौटना चाहिए। जो रकम थी, वह भी खत्म होने वाली थी। वे घर की ओर लौटे। घर लौटते हुए उनके मन में विचार आया कि इस तरह फटेहाल घर जाना ठीक नहीं है। वे पूर्णिया के बाद जैसे ही गढ़बनैली स्टेशन आया, उतर गए। वहाँ से वे बड़ी बहन लतिका की ससुराल बरेटा गाँव पहुँचे। दीदी ने नहला-धुलाकर खाना खिलाया। दूसरा कपड़ा पहनने को दिया और पहने हुए कपड़े को धोकर सुखा दिया। दो दिन आराम करने के बाद शरीर में स्फूर्ति आई। फिर घर की ओर प्रस्थान करने के लिए स्टेशन आए।

गढ़बनैली का छोटा-सा स्टेशन। प्लेटफॉर्म पर कोयले की छाय बिछी हुई। ऊपर से पुरवा हवा के साथ झमाझम बारिश होने लगी। जोगबनी की तरफ जानेवाली ट्रेन जब पहुँची तो उसमें हर डब्बे के दरवाजे पर अपार भीड़। बहादुर लोग ठेलम-ठेल कर किसी तरह भीतर प्रवेश कर रहे थे। बारिश के कारण हर डिब्बे की खिड़कियाँ यात्रीगण बन्द किए हुए थे। रेणु इधर-उधर पानी में भींगते हुए भीतर घुसने की कोशिश कर रहे थे, पर सफल नहीं हो पा रहे थे। गार्ड साहब की तीखी सीटी के बाद इंजन का मोटा सुर बजा। गाड़ी चल पड़ी। तब तक रेणु इधर-उधर दौड़-भाग ही कर रहे थे।

चलती हुई गाड़ी का सामने का जो डिब्बा मिला, उसका हैंडल पकड़कर वे लटक गए। दरवाजा बन्द था। बारिश लगातार हो रही थी। दूसरे डिब्बे के दरवाजे पर एक आदमी गिरने ही वाला था कि उसके मित्र ने कहा- हत्था पकड़। हत्था! और इधर कुशाग्र बुद्धि रेणु ने भी हत्था पकड़ लिया।

रेणु ने इस प्रसंग को अपने ही दिलचस्प अंदाज में लिखा है- ''उस समय प्लेटफॉर्म पर जो हो-हल्ला हो रहा था- वह मेरे ही लिए। गढ़बनैली के अध-पगला प्वाइंट्समैन की बोली आज भी कानों के पास स्पष्ट गूँज जाती है- "ए-य! छोटे मियाँ- आँ-आँ! मरेगा साला!''

छोटे मियाँ उसने मुझे ही कहा था और गाली मुझे ही दी गई थी। बात यह है कि हमारे इलाके में उन दिनों पाजामा पहनने का रिवाज आम नहीं हुआ था। इसे मुसलमानों का ही पोशाक समझा जाता था। पाजामा नहीं-सूथना!

रेणु भी पहले धोती ही पहनते थे। हाल-फिलहाल में ही उन्होंने पाजामा पहनना शुरू किया था। पाजामा पहनने के कारण ही मियाँ कहा गया था। उन्होंने सोचा-छोटे मियाँ मरेगा। हवा और बारिश की मार को कब तक बर्दाश्त कर सकेगा! जलालगढ़ पहुँचने के पहले ही वह गिरेगा-मरेगा। छोटे मियाँ काँप उठा। लपककर 'हत्था' पकड़ते समय ही उसने दरवाजे पर फर्स्ट क्लास का रोमन अंक देख लिया था। उसने सोचा- अन्दर कोई अंगरेज या एंग्लो इंडियन बैठा होगा। अनुनय-विनय करने पर दरवाजा खोलेगा। खादी का पाजामा-कुर्ता देखकर बूट की ठोकर मारकर गिरा देगा। छोटे मियाँ का कलेजा धड़कने लगा। जीभ सूखकर पहले लकड़ी हो चुकी थी। मरता क्या न करता!

छोटे मियाँ के मुँह से ब-मुश्किल निकला- ''ओपेन सर! प्लीज! आई एम डाईंग-डाईंग-ओपेन!!''

दरवाजा खुला। एक गोरी कलाई, एक गोरा मुँह ?

छोटे मियाँ ने आँखें मूँद लीं- अब बूट मारा!

हैंडिल से हाथ कैसे छूटा और मैं डब्बे के अन्दर कैसे गया- सो, न आज याद है और न उस दिन!

गौर वर्ण व्यक्ति कोई गोरा या एंग्लो नहीं ? शुद्ध खादीधारी! स्वजनोचित मुस्कान ? शुद्ध हिन्दी में ही उन्होंने पूछा, ''क्यों? चलती गाड़ी में क्यों सवार हुए आप?''

''जी, गाड़ी यहाँ ठहरना ही नहीं चाहती।'' तब गढ़बनैली में कभी-कभार ही गाड़ी रुकती थी। कोई रुक गई तो जल्दी चढ़ जाओ, नहीं तो स्टेशन पर किसी और गाड़ी के रुकने की प्रतीक्षा करते रहो।

''कौन-सा स्टेशन था यह ?''

''गढ़बनैली!''

''कहाँ जाना है ?''

''सिमराहा स्टेशन!''

मैं लज्जित हुआ। क्योंकि बर्थ पर बैठी हुई लड़की रेणु के भींगे कपड़ों को देखकर शुरू से ही मुस्कुरा रही थी- एक ही अंदाज में। भले आदमी ने उस लड़की से कुछ कहा। न अंगरेजी, न हिन्दी, न ही बंगला-मैथिली। किन्तु, एकदम ग्रीक या चीनी भी नहीं। मैंने जितना-सा समझा- ठीक ही समझा। उन्होंने कहा था- अभी तो यह गिरकर मरता। लूगा? कपड़े को हमारे गाँव में 'लूगा' ही कहते हैं।

'लूगा' सुनते ही मुस्कुराती हुई लड़की उठी। चमड़े के बक्स से खादी की धोती निकालकर वह अपनी भाषा में बोली, ''धोती तो हुई लेकिन कुर्ता ?''

मैंने कहा, ''क्या जरूरत है ? सूख जाएगा।''

भद्र व्यक्ति ने मेरे हाथ में धोती देते हुए बाथरूम का दरवाजा दिखलाया। शहर की धुली खादी की महीन धोती पहनकर निकला- देखा, एक धुला हुआ हाफ शर्ट! पहनकर देखा- बिल्कुल फिट। कमीज के अन्दर गर्दन के पास लाल सूत से एक मोनोग्राम अंकित था टी.पी.क.।

गाड़ी जलालगढ़ स्टेशन पर आकर रुकी। चेकर ने मुझे गढ़बनैली में ही देखा था। अतः गाड़ी रुकते ही दौड़ा आया- ''कहाँ वह छोकरा?'' फिर मुझ पर दृष्टि पड़ते ही कर्कश स्वर में चिल्लाया- ''बाहर निकलो!''

भद्र व्यक्ति ने उसे रोककर कहा, ''सिमराहा तक इसके पास थर्ड-क्लास का हाफ टिकट है। फर्स्ट क्लास का बना दीजिए।''

धोती-कुर्ता लेने के समय मैंने थोड़ा 'किन्तु-परन्तु' किया था। इस बार कुछ बोल ही नहीं सका। उधर वह लड़की, जो मेरी ही उम्र की रही होगी- मुस्कुराती जा रही थी।

इसके बाद, भले आदमी ने मुझे अपने पास बैठाया।

नाम-धाम, पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछा। मैंने देखा, लड़की 'चाँद' मासिक पत्रिका को खोलकर हँसी को छुपाने की चेष्टा कर रही थी।

मैंने कहा- ''इन स्कूलों में मेरा मन नहीं लगता है। पहले गुरुकुल कांगड़ी जाना चाहता था। बाबूजी तैयार नहीं हुए। अब कहता हूँ शान्तिनिकेतन भेज दीजिए। तो माँ तैयार नहीं होती।''

लड़की ने 'चाँद' के पृष्ठों को बन्द कर रख दिया। इस बार भले आदमी ने भी मुस्कुराना शुरू किया। मैं 'चाँद' पत्रिका का अंक हाथ में लेकर बोला- ''नया अंक है!'' फिर 'दुबेजी की चिट्ठी' निकालकर पढ़ने लगा। ('चाँद' पत्रिका में 'दुबेजी की चिट्ठी' एक व्यंग्य स्तम्भ था, जिसे उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकार विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक लिखा करते थे।) फिर बात कैसे बढ़ी कि मैंने 'भारत-भारती' का सस्वर पाठ शुरू कर दिया- ''भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती!''

भद्र व्यक्ति मंत्रमुग्ध हुए थे या नहीं, किन्तु मुस्कुराहट मुझे पल-पल उत्साहित कर रही थी। और उनके साथ की लड़की की मुस्कुराहट मुझे उत्तेजित। इसके बाद रवीन्द्रनाथ की कई कविताएँ- ''दिनेर शेषे-घूमेर देश घोमता परा ए छाया भूलाले रे भूलाले मोर प्राण न वासरे करिलाम पन लेबे स्वदेशेर दीक्षा।

बारिश रुक गई थी। मेरा स्टेशन निकटतर होता जा रहा था। स्वरचित कविता सुनाने का समय नहीं था। अब मेरी प्रश्नावली की बारी थी।

''आपका नाम ? कहाँ जाइएगा ? कहाँ से आ रहे हैं ? घर कहाँ है ?''

नाम सुनकर तनिक चमत्कृत हुआ था, 'कोइलावाला'?

घर विराटनगर बताया, तो मुझे अचानक अपने 'दोस्तबाप' की याद आई- विराटनगर के खरदार साहब- जिन्हें मैंने देखा नहीं। माँ और बाबूजी के मुँह से सुनी कहानी- दोस्तबाप की।

मैंने कहा, ''मेरे दोस्तबाप..... माने मेरे बाबूजी के मित्र विराटनगर में रहते हैं।''

''क्या नाम है आपके पिताजी के मित्र का ?''

''खरदार साहब!''

बस, रूपवती कन्या की हँसी छलक पड़ी। बेवजह की हँसी का क्या अर्थ? मैं अप्रतिभ तनिक भी नहीं हुआ, किन्तु!

''कौन खरदार साहेब ? वहाँ तो कई खरदार साहेब हैं। नाम क्या है उनका?..... खरदार साहेब नाम नहीं। वह तो आपके यहाँ जैसे कहते हैं न- मुन्सिफ, डिप्टी कलक्टर.....।''

छोटे मियाँ का मुँह छोटा हो गया। तो, खरदार साहब नाम नहीं ? वह कुनमुनाया, ''नाम नहीं ?..... जिन्होंने टेढ़ी में आश्रम बनाया था। जिनका स्कूल है।''

''अच्छा! कभी आप गए नहीं विराटनगर ? नहीं ? तो आइए कभी। आपके पिताजी के मित्र पहले से हैं- अब आपसे मेरी मिताई.....।''

इस बार वह सौभाग्यवती हँसते-हँसते मर गई मानो।

मैंने कहा, ''आने का मन तो बहुत दिनों से है। लेकिन.....।''

मेरी मंजिल निकटतम की सीमा रेखा पारकर डिस्टेण्ट सिग्नल के पास पहुँची तो सकपकाया- ''ये कपड़े ? कमीज-धोती?'' बोले, ''ठीक है आप आ ही रहे हैं!''

अपने गाँव का स्टेशन- सिमराही स्टेशन- इतना नजदीक पहुँचने का दुख पहली बार हुआ। इसके पहले, गाड़ी पर सवार होते ही सोचता- बीच के स्टेशनों पर नहीं रुककर- सीधे हमारे स्टेशन पर आकर क्यों नहीं रुकती गाड़ी ?

रेणु ने अपने जीवन के प्रसंगों को लिखते हुए दृश्यों की संरचना सही की है, किन्तु कुछ तथ्यों में उनसे भूल हो जाती थी। विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला से ट्रेन में पहली बार उनकी भेंट हुई थी, किन्तु वे द्वितीय श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। उस समय उनकी उम्र बाईस साल की थी। उनकी पत्नी सुशीला कोइराला पन्द्रह साल की थी। वे तब पटना से अपनी पत्नी को लेकर विराटनगर जा रहे थे। रेणु की साहित्यिक प्रतिभा से वे चमत्कृत हुए थे। अपने घर जाकर अपने इस नवोदित मित्र के बारे में रस ले-लेकर बताया था। इस प्रसंग को उन्होंने रेणु पर लिखे अपने संस्मरण में इस प्रकार बताया है-

बात 1935 की है। महीना मुझे याद नहीं। मैं अपनी पत्नी सुशीला के साथ अपने घर विराटनगर (नेपाल) जा रहा था। हमारी नई-नई शादी हुई थी। हम कटिहार से जोगबनी जाने वाली गाड़ी में सफर कर रहे थे। जोरों की वर्षा हो रही थी। एक स्टेशन से गाड़ी जब खुली तो देखता हूँ कि एक किशोर हमारे डिब्बे के बाहर डंडी पकड़कर पाँवदान पर खड़ा है। गाड़ी साँय-साँय करती हुई द्रुतगति से दौड़ने लगी थी। वह युवक भींगकर पानी-पानी हो रहा था। हमारा डब्बा सेकेंड क्लास का था। उन दिनों का राजसी सेकेंड क्लास! उस डब्बे में हम केवल पति-पत्नी थे। हम दोनों इसी उधेड़बुन में थे कि उस नितांत अपरिचित व्यक्ति को डब्बे के अन्दर आने दिया जाए या नहीं। क्या यह कोई उचक्का तो नहीं है हो सकता है वह चोर हो और हमें एक प्रकार से निर्जन पाकर हमारी हत्या कर हमारा सामान लेकर चलता बने! लेकिन सुशीला से रहा नहीं गया। उसकी सतही सही, उस समय की हालत पर तरस खाकर उसने डब्बे का दरवाजा खोल दिया। अन्दर आने पर जब उसने देखा कि डब्बे में पति-पत्नी सरीखे केवल दो ही प्राणी हैं तो वह सकते में आ गया और सीट पर बैठने से कतराता रहा, लेकिन बैठने के लिए हमारे बारम्बार अनुरोध पर वह एक सीट पर दुबककर बैठ गया।

रेणु और विशेश्वर प्रसाद कोइराला को इस प्रथम भेंट की याद जीवन भर रही और रेणु के जीवन में भी यहीं से एक मोड़ आया।

जब वे सिमराहा स्टेशन पर उतरकर पाँव-पैदल अपने गाँव पहुँचे तो अपने पिताजी के एक मित्र से भेंट हुई। उन्होंने रेणु से पूछा, ''अरे तुम इतने दिन कहाँ थे? तुम्हारे पिताजी आग-बबूला हैं। कह रहे हैं कि जो नया खड़ाऊँ बनवाया है, उसी से इस बार पिटाई करूँगा।''

रेणु पिता की पिटाई की बात सुनकर डर गए। उन्होंने सोचा- अभी घर जाने में खतरा है! उन्होंने कहा, ''चाचाजी, आप मेरे पिताजी को कह दें कि मैं सकुशल हूँ। लेकिन वे जब तक गुस्से में रहेंगे और मारपीट करेंगे, मैं घर नहीं आऊँगा। मैं फारबिसगंज जा रहा हूँ।''

और रेणु सिमराहा लौट गए। पर कोई ट्रेन नहीं थी। वे पैदल ही लगभग चौदह किलोमीटर की दूरी तय कर रेलवे लाइन पर चलते हुए अर्द्धरात्रि को फारबिसगंज पहुँचे। पिताजी की यह उक्ति वे बार-बार स्मरण करते-

पाँच वर्ष की उम्र तक लालन
उसके बाद सोलह वर्ष की उम्र तक ताड़न
सोलह की उम्र के बाद पुत्र से मित्रता के व्यवहार का पालन।

लेकिन अभी तो वे पन्द्रह साल के ही थे यानी ताड़न की अवस्था। वह भी खड़ाऊ से ताड़न।

फारबिसगंज शहर में सब दुकानें बन्द थी। वे स्टेशन के पास बन्द हो चुकी गाजीराम की दुकान के सामने के एक बेंच पर पड़े रहे। काँग्रेस आश्रम जाने का मतलब था फँस जाना। उन्होंने विराटनगर जाने का फैसला कर लिया था। उन्होंने सोचा कि भागलपुर, गौहाटी और कलकत्ता तो घूम आया हूँ, लेकिन अब तक हिमालय की ओर नहीं गया। बगल में सटे मोरंग जिले में नहीं गया। विराटनगर अब तक नहीं गया। तो मौका है, कल की ट्रेन पकड़कर जोगबनी जाना है और वहाँ से विराटनगर तो सटा ही हुआ है।

माँ उनको कई बार एक महापुरुष की कहानी सुनाती थी कि वह जब गौने के बाद ससुराल आई थी तो चौथे ही दिन शाम को एक टप्परगाड़ी से एक देवता जैसा पुरुष और उसके साथ देवी दुर्गा जैसी उनकी स्त्री का पदार्पण हुआ। उनकी स्त्री बुखार से लबेजान थी बेचारी? तुम्हारे बाबूजी ने तुम्हारी दादी से कहा था- ''माँ, शायद देवता ही हैं वे!''

वे देवता यानी दिव्य पुरुष विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के पिता कृष्ण प्रसाद कोइराला थे। नेपाल की राणाशाही के दमन से बचने के लिए वे नेपाल से चुपचाप पलायन कर गए थे। विराटनगर से औराही-हिंगना बैलगाड़ी से लगभग बीस किलोमीटर दूर चलकर आए थे। जब उनकी पत्नी स्वस्थ हो गई थी, तब जाते हुए उन्होंने कहा था- ''ये दिन और यह दोस्ती कभी नहीं भूलूँगा!''

रेणु जी के पिताजी के वे दोस्त थे और रेणु ने उन्हें कभी नहीं देखा था, पर वे जानते थे कि ये खरदार साहेब उनके 'दोस्तबाप' हैं। पिछले साल उनके बाबूजी ने बताया था कि नेपाल के नए प्रधानमंत्री ने खरदार साहब को नेपाल के विराटनगर में स्कूल खोलने की इजाजत दे दी है और उन्होंने वहाँ एक 'आदर्श विद्यालय' की स्थापना की है। इसके पहले बिहार में वे टेढ़ी आश्रम में शिक्षा का आदर्श रूप प्रस्तुत कर रहे थे। जब विराटनगर में उन्होंने आदर्श विद्यालय की स्थापना की थी, तब टेढ़ी आश्रम के सभी तपे-तपाये शिक्षक भी आ गए थे। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और काकोरी कांड के अभियुक्त मन्मथनाथ गुप्त के पिताजी इस स्कूल के हेडमास्टर थे।

सुबह की पहली गाड़ी से रेणु फारबिसगंज से जोगबनी पहुँचे। जोगबनी में रेलवे का टी-स्टॉल था, जहाँ बहुत अच्छी चाय बनती थी। वे रात में खाना नहीं खा पाए थे। चाय पीकर तृप्त हो गए। फिर भारत और नेपाल सीमा पर नो मेन्स लैंड अर्थात् दस गज जमीन को पार किया। यह पहली बार सरहद के पार जाना था। उस पार एक जूट-मिल बन रहा था। रेणु नेपाल की धरती पर पहली बार आए थे, लेकिन नेपाल के बारे में तब भी काफी जानकारी रखते थे। उन्होंने लिखा है- ''स्टेशन के पूरब, सीमा के पास अन्य यात्रियों के साथ मोटर-लौरी की प्रतीक्षा करते समय मालूम हुआ कि बीड़ी-सिगरेट जिसके पास पकड़ी जाएगी- उसको काठ से धुन दिया जाएगा और जेल भेज दिया जाएगा। बात उन दिनों की है जब नेपाल के महाराजाधिराज यानी पाँच-सरकार के जन्मोत्सव में एकाध दीप टिमटिमाते थे और तीन-सरकार (प्रधानमंत्री) के जन्म-दिन पर विराटनगर में होली और दीपावली एक साथ मनाई जाती थी। तीन दिनों तक उत्सव के बाजे बजते रहते थे। इसीलिए, छोटी-सी बात पर भी काठ से धुना जाने का खतरा था। इतनी-सी राजनीतिक चेतना उस समय भी थी।''

नेपाल की सीमा में प्रवेश कर रेणु किसी वाहन की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय के बाद एक ट्रक विराटनगर से आकर रुकी। उसमें मजदूरों का हुजूम सवार था। उनके उतरते ही धड़ाधड़ विराटनगर जाने वाले मजदूर उसमें चढ़ने लगे। रेणु को ट्रक में खचाखच भरे नेपाली मजदूरों के बीच खड़ा होकर यात्रा करने में भय लगा। वे ड्राइवर के पास गए और अपने बगल में बिठाकर ले चलने की याचना करने लगे। ड्राइवर के बगल में एक पंडितजी बैठे हुए थे। उन्होंने रेणु को अपने बगल में बैठा लिया। बैठते ही एक सुगन्ध उनके मन और प्राण को आह्लादित करने लगी। पंडित जी ने पूछा- ''कहाँ जाना है ?''

रेणु ने जवाब दिया- ''अपने मित्र के घर।''

फिर सवाल- ''क्या नाम है मित्र का ?''

''नाम! अस्पताल के पच्छिम घर है।..... कोइलवरवाला। खूब गोरे हैं। मुस्कुराते रहते हैं। खादी पहनते हैं।''

जोगबनी से विराटनगर की कच्ची सड़क कीचड़ से भरी थी।

जंगलों और तराई के बीच कच्ची सड़क की कीचड़ को मथती हुई गाड़ी विराटनगर के बाजार-अड्डा पर जा लगी। पंडित जी ने कहा, ''चलो, मैं पहुँचा दूँगा। मेरा घर भी अस्पताल के पच्छिम है। लेकिन, कोई कोइलवरवाला मेरे घर के पास नहीं रहता है।''

तब रेणु ने कहा, ''शायद कोई कोयलावाला रहता हो ?'' पंडित जी ने तब खिलखिलाकर हँसते हुए कहा था, ''नीचे कीचड़ और गड्ढे देखकर सावधानी से चलो।''

रेणु ने जिज्ञासा प्रकट की, ''यहाँ कोई म्युनिसिपल बोर्ड या लोकल बोर्ड जैसी कोई चीज नहीं ?''

पंडित जी ने तब समझाया, ''अपने मित्र से पूछना घर चलकर। यहाँ रास्ते में लोग कीचड़ और धूल से बचते हैं, बोलते नहीं।''

पंडित जी रेणु को साथ लेकर एक लकड़ी के दो मंजिले मकान के सामने पहुँचे। ट्रेन वाली लड़की ऊपर की एक खिड़की से मुस्कुराती हुई झाँक रही थी। पंडित जी ने कहा- ''यह रहा तुम्हारे मित्र का घर- लकड़ी से बना दुमंजिला।'' फिर उन्होंने आवाज दी, ''बिशु को मीत आयेकोछ!''

सीढ़ी के पास बैठकर वहाँ रखे पानी से पंडित जी अपने पैर धोने लगे। रेणु ने कहा- ''आपका बहुत-बहुत धन्यवाद पंडित जी! अब आप जाइए!''

पंडित जी ने कहा- ''पहले पैर धो लो!''

रेणु ने अपने पैरों को धोकर जब सिर ऊपर किया तो देखा कि उनके मित्र सहित बहुत लोग दुमंजिले से नीचे झाँक रहे हैं। वे सभी हँस रहे थे। पंडित जी उन्हें ऊपर पहुँचाकर नीचे ही अपने आसन पर बैठ गए। रेणु के मित्र ने बताया कि ये मेरे पिताजी हैं। आयँ पंडित जी ही खरदार साहब हैं और 'दोस्तबाप' हैं! जैसे ही ज्ञात हुआ वे दौड़कर गए और 'दोस्तबाप' का चरण-स्पर्श किया।

अब दोस्तबाप को रेणु ने पहली बार 'पिताजी' कहकर सम्बोधित किया और जीवनभर करते रहे। पिताजी ने पूछा- ''उधर ये लोग क्यों हँस रहे हैं, जानते हो?''

इसका कोइराला बन्धुओं की सबसे छोटी और लाड़ली बहन बुन्नू अर्थात् विजयलक्ष्मी ने उत्तर दिया, ''छक्क पर्ने अचरज की बात! हाफ शर्ट पहना तारिणी दाज्यु का और दोस्त कहते हैं सान्दाज्यु को!''

बिशू यानी विशेश्वर प्रसाद कोइराला रेणु से उम्र में बड़े थे। उनके बाद केशव और उनके बाद तारिणी थे। ट्रेन में जो शर्ट उन्होंने पहना था, वह तारिणी का था। तारिणी उनके हमउम्र थे। मुस्कुराने वाली लड़की ने अपने हँसने का राज खोला, ''मैं तो ट्रेन में ही यह नजारा देखकर हँस रही हूँ कि इन्होंने कहा, अब आपसे मेरी मिताई हुई।'' फिर वह खिलखिलाकर हँसने लगी। बी.पी. यानी सान्दाज्यु ने परिचय कराया- ''यह सुशीला है। आपके दर्जे में ही पढ़ती है, लेकिन तुम्हारी तरह 'भारत-भारती' का सस्वर पाठ नहीं कर सकती!''

अब उस शर्ट का मालिक टी.पी. अर्थात् तारिणी का आगमन हुआ और रेणु को अपनी बाँहों में भर लिया और फिर सुशीला से कहा, ''देखा भाभी! देखा न! मैंने कहा था न, मेरी खोई हुई कमीज कुछ खोजकर वापस आएगी। मुझे तो एक 'मुसल्लम मितर' मिल गया।''

पहले बिशेश्वर 'मीत' बने, फिर उसे बदल दिया गया और तारिणी मीत बने। सुशीला भाभी को रेणु ने प्रणाम किया, पर उसने आशीर्वाद नहीं दिया, सिर्फ मुस्कुराती रही।

रेणु दो दिन कोइराला-निवास में रहे और इतना प्यार तथा अपनत्व उन्हें मिला कि अपने को इस परिवार का सदस्य ही समझने लगे। माँ दिव्या कोइराला ने घोषणा की, ''अब मेरे पाँच नहीं छह पुत्र हैं।'' पाँचों भाइयों ने कहा, ''हम पाँच नहीं छह भाई हैं।''

रेणु जब लौटने लगे, तब सबने एक स्वर में कहा, ''जब भी इच्छा हो, चले आना। तुम्हारा एक घर विराटनगर में भी है।''

रेणु लौट रहे थे, पर उनके भीतर यही वाक्य अनुगूँजित हो रहा था- तुम्हारा एक घर विराटनगर में भी है। धीरे-धीरे यह वाक्य उनके भीतर घर कर गया। सहसा रवीन्द्रनाथ की उनकी पढ़ी हुई एक कविता की दो पंक्तियाँ याद आ गईं- निःस्व आमि, रिक्त आमि, देबार किछु नाई/आछे शुधु आलोबाशा, दिलाम आमि ताई! अर्थात् मेरा स्व यानी मैं होने का बोध समाप्त हो गया है, मैं भीतर से रिक्त हो गया हूँ, कुछ देने की स्थिति में नहीं हूँ। मेरे पास सिर्फ प्रेम है, वही मैंने दिया। यह देना अपना हृदय ही सौंप देना था। अपनी पूरी भाव-सम्पदा सौंपकर ही तो सब कुछ पाया जा सकता है।

■

रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ

प्रो. चन्द्रभानु प्रसाद सिंह

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा- 846004, मो0 न0-9572386088

फणीश्वरनाथ रेणु को सिर्फ 46 वर्ष की आयु मिली। 1921 में जन्म हुआ और 1977 में संसार से विदा हो गये। 1944 में उनकी पहली कहानी (बटबाबा) दैनिक 'विश्वमित्र' में छपी। इस तरह उनका रचनाकार जीवन सिर्फ 33 वर्षों का है। पर वह भी सिर्फ लेखन को समर्पित नहीं है। आजकल के बंद कमरे या मुख पोथी (फेसबुक) पर क्रांति करने वाले लेखकों से भिन्न रेणु आंदोलनकारी लेखक थे। उनके पिता शिलानाथ मंडल कांग्रेसी थे। घर में प्रतिबंधित साहित्य की आवाजाही थी। घर के इस वातावरण ने रेणु की विश्वदृष्टि के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। 1930-31 की बात है। रेणु अररिया हाई स्कूल के चौथे दर्जे के छात्र थे। गाँधी जी की गिरफ्तारी हुई। छात्रों ने हड़ताल कर दी। रेणु नेतृत्वकारी भूमिका में थे। सहायक हेड मास्टर को स्कूल

में प्रवेश से रोका। इस बात के लिए रेणु को 10 बेंत, 14 दिन जेल और अंततः स्कूल से निष्कासन की सजा हुई। वे माफी मांग कर दण्ड से बच सकते थे पर ऐसा करने से इनकार कर दिया। नेपाल के विराटनगर से मैट्रिक किया। छात्र राजनीति में वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ सक्रिय रहे। तब राजनीति में वैचारिक सांद्रण पर जोर दिया जाता था। 1930 में सोनपुर में जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, नरेन्द्र देव और अशोक मेहता के सौजन्य से संचालित समर स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स में रेणु जी की सहभागिता रही। 1947 के भारत छोड़ो आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। गिरफ्तार हुए। बूटों से रौंदा गया। ढाई साल की सजा हुई। अररिया, पूर्णियाँ, हजारीबाग और भागलपुर की जेलों में रहे। 1947 में विराटनगर, नेपाल में कोईराला बंधुओं के साथ मजदूर यूनियन की स्थापना की। 4 मार्च 1947 से वहाँ हड़ताल शुरू हुई। दमन शुरू हुआ, गोलियाँ चलीं, रेणु घायल हुए। जेल की सजा हुई। पुनः 1950 में नेपाली क्रांति में शरीक हुए। 1967 में बिहार में भयंकर सूखा पड़ा जिसमें वे सक्रिय थे। 1960 के दशक के अन्त में मुशहरी, मुजफ्फरपुर में भूमि संघर्ष के प्रसंग में जयप्रकाश नारायण के साथ थे। 1974 के बिहार आंदोलन में उनकी सक्रियता तो सर्वविदित है ही। श्रीमती इंदिरा गाँधी की तानाशाही हुकूमत और दमन के विरोध में 'पद्मश्री' लौटा दी। उन्हें जेल में बंद कर दिया गया। उनका स्वास्थ्य निरंतर गिर रहा था। अंततः 11 अप्रैल, 1977 को उनका प्राणांत हो गया । वस्तुतः रेणु का जीवन संघर्षमय रहा। वे राहुल सांकृत्यायन और नागार्जुन की परम्परा के लेखक थे। उन्होंने लेखन और संघर्ष साथ-साथ किया। उनमें शब्द और कर्म की एकता दिखाई पड़ती है। इन दिनों हिन्दी क्षेत्र में इस कोटि के लेखक एक भी नहीं हैं। बंद कमरे में अपनी रचनाओं में या फेसबुक पर क्रांति मचाने वाले रेणु से बहुत कुछ सीख सकते हैं। आंदोलन, किसानी और लेखन की तिर्यक रेखाओं से रेणु का व्यक्तित्व साकार होता है।

'मैला आंचल' रेणु की प्रसिद्धि का शिखर है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने 1954 में इसके प्रकाशन के तुरन्त बाद इसके वैशिष्ट्य को रेखांकित किया और कहा कि 'मैला आंचल' ने 'गोदान' के बाद के गत्यवरोध को दूर किया। यह एक आँचलिक उपन्यास है। पर उससे अधिक महत्व की बात है कि उसमें जीवन का संपूर्ण विस्तार है। रेणु जी लिखते हैं ''इसमें फूल भी है, शूल भी है, गुलाब भी है, कीचड़ भी है, चंदन भी सुंदरता भी, कुरूपता भी, मैं किसी से दामन बचा कर निकल नहीं पाया।'' रेणु जी की कथा दृष्टि की खासियत है कि संपूर्णता में गाँव और परिवार आता है जिसमें पशु भी समाहित हैं। 'तीसरी कसम' में हिरामन पुलिस के चक्कर में पड़ता है। वह बैलों की जोड़ी के साथ भागता है। रेणु लिखते हैं- दम साधकर तीनों प्राणियों ने झाड़ियों को पार किया। हिरामन और बैलों को एकाकार कर दिया। समग्र मानवीय दृष्टि है रेणु के पास जिसमें तनाव और उल्लास दोनों हैं। रेणु के बाद भी सार्थक कथा लेखन हुआ है। इस प्रसंग में 'अलग अलग वैतरणी' (शिव प्रसाद सिंह), 'रागदरबारी' (श्री लाल शुक्ल), 'आधा गाँव' (राही मासूम रजा), 'महाभोज' (मन्नू भंडारी), 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (संजीव) और 'दाखिल-खारिज' (रामधारी सिंह दिवाकर) के नाम उल्लेखनीय हैं। पर इन रचनाओं में रेणु वाली समग्र दृष्टि का अभाव है।

रेणु का सौन्दर्य-बोध अपूर्व था। वह अपूर्व सौन्दर्य-बोध उनकी वैचारिकता की ठोस धरती से निःसृत होता है। हाशिये के लोगों की जिन्दगी से उनका सौन्दर्यबोध निःसृत होता है। 'लाल पान की बेगम' में छोटे लोगों का प्रणय- कलह चित्रित है। 'तीसरी कसम' का हिरामन और हीराबाई इन दोनों का संबंध इतने बारीक रूप में चित्रित किया है कि उसे न सेक्स कह सकते हैं, न प्रेम। हिरामन और हीराबाई प्रेम-सूत्र में बंध नहीं सकते। फिर भी दोनों के बीच एक संबंध है जिसे टूटना ही है। यह विलक्षण सौन्दर्यबोध की कहानी है। पूरी कहानी एक प्रगीतात्मक वातावरण का निर्माण करती है। 'रसप्रिया' की रमपतिया और पंचकौड़ी मिरदंगिया। मिरदंगिया रमपतिया पर लांछन लगाता है। लेकिन मिरदंगिया की उंगली टेढ़ी होने की खबर सुनकर रमपतिया दौड़ी आई, घंटों उँगली पकड़ कर रोती रही।

रेणु जी के जनपद में उनके समय में बड़े रसूख वाले लेखक थे लक्ष्मी नारायण सुधांशु। बड़े लोग थे सो बड़े लोगों में उठ-बैठ थी। रेणु जी पिछड़ी जाति के थे। पढ़-लिख कर जातीय छड़ीदार नये ब्राह्मण नहीं बने। अपने लेखन को पिछड़ों, दलितों पर केंद्रित किया। उनके सौंदर्यबोध का मूल यही है। यह सौंदर्यबोध पारंपरित साहित्य दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। समकालीन दलित साहित्य के सौंदर्यबोध का भी वर्गीय आधार है पर उसमें नकारात्मकता अधिक है। जबकि रेणु जी के यहाँ इसका अभाव है। इस तेवर की आगे चलकर कोशी अंचल के दूसरे लेखक रामधारी सिंह दिवाकर की एक कहानी 'सूखी नदी का पुल' दिखाई पड़ती है।

रेणु अपने पात्रों से निरपेक्ष हैं। वे पात्र अपने टोला, गोत्र, इतिहास और भूगोल से गुंथे हैं। वे अपने परिवेश की उपज हैं। उनका रसबोध अनूठा है। वे अपनी रचनाओं में निर्वैयक्तिकता का बखूबी निर्वाह करते हैं। सक्रिय राजनीति में समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे। तंत्र-मंत्र में विश्वास करते थे। पर उनकी रचनाएँ इस आग्रह से मुक्त हैं।

आज के कोशी अंचल का गाँव रेणु का गाँव नहीं रहा। सड़कें पक्की हो गयी हैं। रेणु तो चुनाव हार गये, पर उनके सुपुत्र विधायक बने। उनके गाँव औराही हिंगना की शक्ल-सूरत बहुत हद तक बदल गयी है। पहले की सामाजिक रूढ़ परंपराओं-छुआछूत, अंध विश्वास, धार्मिक आडम्बर, व्यभिचार, सामंती प्रभुत्व, नारी उत्पीड़न इत्यादि में कमी आई है। स्त्रियाँ अपने स्वाभिमान की रक्षा तथा अन्याय का प्रतिरोध करने में सक्षम हो रही हैं। किन्तु औराही हिंगना जैसे गाँवों का वातावरण हिंसक भी हुआ है। साम्प्रदायिकता बढ़ी है। नये जातीय छड़ीदार राजनेता हो गये हैं। यह नये किस्म का ब्राह्मणवाद है। कैलाश गौतम की कविता 'गांव गया था गाँव से भागा' सहसा स्मरण हो आयी है-

गाँव गया था
गाँव से भागा
रामराज का हाल देखकर
पंचायत की चाल देखकर
आँगन में दीवाल देखकर
सिर पे आती डाल देखकर
नदी का पानी लाल देखकर
और आँखों में बाल देखकर
गाँव गया था, गांव से भागा।।

'मैला आँचल' के मठ की जमीन हड़प ली गयी है। मठ भी ढह कर समाप्त हो गया है। बकौल प्रो. महेशचंद्र चौरसिया मठ में सात सौ बीघा जमीन थी जिसे गाँव के दबंगों ने हड़प लिया। सरकार द्वारा बतौर सिंलिग 18 एकड़ जमीन मठ को दी गई, वह भी नहीं बची। सिर्फ 120 डिसमिल जमीन मठ के कब्जे में रह गयी है।

रेणु जी को आंचलिकता तक सीमित करना अनुचित है। वे आजादी के बाद की मुश्किलों से मुठभेड़ करते रहे और उसका चित्रण करते रहे। 'मैला आंचल' में स्वाधीनता के पूर्व और उसके तुरंत बाद का भारत है। 'परती परिकथा' में नेहरू युग का नव रोमानवाद है। 'जुलूस' पूर्वी बंगाल के शरणार्थियों पर केंद्रित है। 'कितने चौराहे' में आजादी के ठीक पहले और उसके तुरत बाद का कोशी क्षेत्र है। 'पलटू बाबू रोड' में नव धनाढ्य लोगों की गाथा है। रेणु जी की कहानियों में भी आँचलिकता है और उसका अतिक्रमण भी।

रेणु जी समाजवादी थे। वर्ग नहीं, वर्ण को मानते थे। कम्युनिस्टों के प्रति आलोचनात्मक रवैया था। इस प्रसंग के 'पार्टी का भूत' कहानी उल्लेखनीय है। यह 'विश्वमित्र' के अक्टूबर 1945 के अंक में छपी। वे वामपंथ को गहने की तरह पहनने वाले मित्रों से परेशान हैं। इसमें कामरेड मिस रोस्सा की मोहक अदा है। वह कहती है कि सिगरेट पुरुषों के पीने की चीज है और उसकी सुंगध स्त्रियों के उपभोग की चीज है। अंततः वह अमेरिकन सैन्य अधिकारी से शादी कर अन्तरराष्ट्रीयता का अनुगमन करती है। 1965 में प्रकाशित 'आत्म साक्षी' कहानी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन पर लिखी गयी है। इस कहानी में कम्युनिस्ट लीडरों के जातिवाद, भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण है। इसी गर्हित प्रवृत्ति के कारण आज कम्युनिस्ट पार्टियाँ हशिये पर चली गयी हैं।

■

तथाकथित संभ्रांतों के मुखौटों को उतारता उपन्यास : 'पल्टू बाबू रोड'

डॉ. राजेन्द्र साह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु साहित्य के ऐसे साधक रहे हैं, जिन्होंने पूरी अन्तरंगता एवं गहरी अनुभूति के साथ सृजन किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाधर्मिता विश्वसनीयता, प्रभावशालिता तथा सर्जनात्मक प्रेरक-तत्त्वों से सम्पृक्त है।

रेणु जी का अंतिम उपन्यास है- 'पल्टू बाबू रोड' जो उनके निधनोपरान्त 1979 ई. में प्रकाशित हुआ। इस औपन्यासिक

कृति में पूर्णियाँ जिले का 'बैरगाछी कस्बा' पूरी सजीवता के साथ चित्रित है। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् उभरते नये समृद्ध वर्ग ने किस प्रकार आम जनता की उपेक्षा कर अपने को भोग-साधना में लिप्त रखा, इसका प्रत्यक्ष चित्रण इस उपन्यास में है। बैरगाछी कस्बे की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि सम्पूर्ण स्थितियाँ प्रस्तुत हैं। नेताओं का सार्वजनिक मुखौटा, देश-सेवा के नाम पर स्वार्थ सेवा आदि अनेक घटनाओं के चित्र द्रष्टव्य हैं। राजनीतिक ढकोसले, सामाजिक दंभ एवं मान-मर्यादा के मुखौटे में लिप्त समाज का व्यंग्यात्मक परिदृश्य उजागर है।

समीक्ष्य उपन्यास में बैरगाछी कस्बे की राजनीति से प्रभावित सामाजिक स्थिति का चित्रण लेखक के ही शब्दों में द्रष्टव्य है-''कौआखोम गाँव में किसान संघर्ष छिड़ा है। जमींदार ने खलिहान में आग लगवा दी है। उत्तर सीमा पर कालाबाजारियों ने मिलकर मार्केटिंग इंस्पेक्टर को पीटा है। मंगहा के महाजन के घर में डकैती हो गयी है। कदवा गाँव में दंगा होते-होते रह गया। इसके साथ ही कॉलेज में पढ़नेवाले लड़कों का भ्रष्ट चरित्र।'' (पृ.-111)

बैरगाछी कस्बे की पूरी सामाजिक स्थिति का जैसे पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रस्तुत करता है यह उपन्यास, जहाँ अनाचार-दुराचार का खेल अनवरत जारी रहता है- ''सारे कस्बे में यह बात फैल चुकी है कि नये एस.डी.ओ. को दो चीजें बहुत पसंद हैं-मुर्गी और मागी। मागी माने औरत! कपड़ा, चीनी, तेल, सीमेंट-जिस चीज की लाइसेंस लेना हो, मुर्गी और मागी को सामने कर दो। काम पक्का।''(पृ.-53)

तार-तार होती नैतिकता को विभिन्न घटनाओं, संदर्भों तथा पात्रों द्वारा प्रत्यक्ष करने में यह उपन्यास अत्यन्त प्रभावी है। बिजली, कुंतला और छवि के माध्यम से बैरगाछी के भ्रष्ट समाज की पूरी तस्वीर उभरकर सामने आयी है- ''सभी कुत्ते!! छोगमल, मुरली मनोहर मेहता, गोधन, पल्टू बाबू!''(पृ.-122)

उपन्यास के मुख्य पात्र हैं- 'पल्टू बाबू'। अन्य सभी पात्र 'शतरंज के प्यादे' हैं, फील हैं, घोड़े हैं, किश्ती हैं और वे स्वयं शतरंज के 'बादशाह' हैं, 'कठपुतली नाच के सूत्रधार' हैं, 'ओल्डडॉग' हैं, तीर्थयात्रा से लौटे रंगेसियार हैं, फूलबगान कोठी के 'गुरुदादू' हैं।

सामाजिक विधान में अवस्था, उम्र को लेकर वैवाहिक-प्रश्न अत्यन्त गंभीर रहा है। पच्चासी वर्ष के बूढ़े पल्टू बाबू की सरकारी शादी, 'कागजी शादी' को लेकर जनसमुदाय का यह प्रश्न कम विचारणीय नहीं है कि ''अच्छा! सरकार के हाथ में इस शादी को कन्ट्रोल करने का कोई कानून नहीं? बाल-विवाह के लिए तो कानून है, लेकिन.....। बाल-विवाह करना कसूर है तो बूढ़ा विवाह क्यों नहीं?''(पृ.-124)

पल्टू बाबू जैसे कामुक, भ्रष्ट एवं पतित चरित्र ने बैरगाछी कस्बे के सदृश सम्पूर्ण समाज की नैतिकता को ध्वस्त किया है जिसके संबंध में यह प्रश्न ज्वलंत है कि ''यह आदमी क्या है? आदमी या देवता या राक्षस, जिसकी भूख आजतक नहीं मिटी है।'' कहाँ जाकर समाप्त होगी यह पल्टू बाबू रोड, यानी भ्रष्टाचार-पथ, कलंक पथ। यही शीर्षक की सार्थकता भी है। वर्तमान समाज में चारित्रिक गुणों का जैसे कोई अर्थ नहीं रह गया है। आज का समाज जैसे आपराधिक चरित्र को महिमामंडित करने लगता है, उसी प्रकार समाज भ्रष्ट चरित्र को भी महत्त्व एवं प्रतिष्ठा देने से बाज नहीं आता और ऐसे लोगों को प्रकारांतर अथवा अप्रत्यक्ष रूप से शह मिलने लगती है और समाज में ऐसी वृत्तियाँ बढ़ती जाती हैं, जारी रहती हैं। पल्टू बाबू सम्भ्रांत वर्ग के हैं, पर कारनामे कितने काले? आचरण कितने पतित! यह प्रश्न एवं समस्या कस्बाई जीवन तक ही सीमित नहीं है, अपितु वैश्विक स्तर तक विस्तृत है।

इस सामाजिक समस्या प्रधान औपन्यासिक कृति में 'रेणु' की यथार्थवादी चेतना ने सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर रचनात्मक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है।

■

किसान आन्दोलन का सांस्कृतिक विमर्श और रेणु

डॉ. विजय कुमार

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारत सरकार की नयी आर्थिक नीतियों ने भारतीय किसानों को आत्महत्या के लिए विवश किया है। राजेन्द्र यादव कहते हैं- हर आत्महत्या का प्रयास सहायता के लिए लगायी गयी अन्तिम गुहार है। यह अन्तिम गुहार जब सत्ता के हृदय परिवर्तन में

विफल हुई तो किसान आन्दोलन फिर से भारतीय राजनीति के केन्द्र में आ गया।

भारत में किसान आन्दोलन का स्वर्णिम अतीत रहा है। औपनिवेशिक काल में किसान आन्दोलन ने वर्गीय मुक्ति की चेतना को राष्ट्रीय मुक्ति की चिंता से जोड़कर स्वाधीनता आन्दोलन को निर्णायक स्थिति में पहुँचा दिया।

सन् 1936 का वर्ष हिन्दी साहित्य तथा किसान आन्दोलन-दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण रहा। इसी वर्ष अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना हुई और इसी वर्ष प्रगतिशील लेखक संघ भी अस्तित्व में आया। प्रगतिशील लेखक संघ ने किसान आन्दोलन को साहित्यिक-सांस्कृतिक आधार प्रदान किया। 'भारतमाता' (पंत) जैसी कविताएँ लिखी गयीं जिसमें प्रयुक्त शब्द (मैला आँचल) को रेणु ने अपने उपन्यास का शीर्षक बनाया।

भारतीय किसान आन्दोलन के इतिहास का बिहार खण्ड अद्भुत है और अपने भीतर विराटता को समेटे हुए है, क्योंकि इस आन्दोलन से जुड़े हुए थे- सहजानंद, राहुल सांस्कृत्यायन, जयप्रकाश नारायण, यदुनंदन शर्मा आदि; क्योंकि इस आन्दोलन को राममनोहर लोहिया, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, मीनू मसानी, अच्युत पटवर्धन, आचार्य नरेन्द्र देव, मेहर अली, अशोक मेहता जैसे समाजवादियों का सहयोग प्राप्त था; क्योंकि इस आन्दोलन से जुड़े थे दिनकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, नागार्जुन तथा फणीश्वरनाथ रेणु जैसे कार्यकर्ता साहित्यकार। इनमें से कई नेताओं तथा साहित्यकारों ने आजादी के बाद भारतीय राजनीति की दशा-दिशा को बदलकर रख दिया।

किसान आन्दोलन की वर्गीय चेतना की जगह समाजवादियों ने सामाजिक चेतना को किसान आंदोलन का आधार बनाया। रेणु का संपूर्ण कथा साहित्य, उनके पात्र, परिवेश और सौन्दर्यबोध समाजवादी किसान आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में एक व्यापक सांस्कृतिक विमर्श प्रस्तुत करता है। उनके साहित्य में देशी-विदेशी जमींदार और उच्चजातियों का शोषण एक तरफ है और उस शोषण के प्रतिरोध की क्षमता की निर्मिति में सतत सक्रिय सांस्कृतिक चेतना दूसरी तरफ है। संकट है कि कोशी क्षेत्र के उच्चवर्गीय समाज अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं से मुक्त हो चुके हैं और उस परम्परा को पुनर्जीवित करने का दायित्व निम्न जातियों ने संभाला है। 'विदापत नाच' करने वाले, 'रसप्रिया' गाने वाले सभी निम्न जातीय हैं। रेणु इनके सांस्कृतिक मंचों का उपयोग सामाजिक संघटन के लिए करते हैं जहाँ जमींदार सिंघ जी, बड़े किसान राम खेलावन सिंह यादव, कम्युनिस्ट कालीचरन, डॉक्टर प्रशान्त कुमार आदि का समागम होता है।

■

रेणु की जनवादी दृष्टि

डॉ. आनन्द प्रकाश गुप्ता

सह आचार्य, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं में जनवादी दृष्टि सर्वाधिक प्रखर रूप से दिखायी पड़ती है। स्वयं रेणु ने 'मैला आँचल' में कई स्थलों पर यह बोधित किया है कि गाँव के किसान और मजदूर जागते रहे हैं। किसानों और मजदूरों का यह जागना वस्तुतः सामन्तवाद और शोषण के विरुद्ध जागना है।

'मैला आँचल' में कालीचरण का आन्दोलन वस्तुतः सामाजिक क्षितिज पर समाजवाद की स्थापना है। अंगरेजी हुकूमत के विरुद्ध तत्कालीन राजनीतिक दलों का आन्दोलन देश की आजादी की परिधि पर ही केन्द्रित है। लेकिन कालीचरण जैसे व्यक्तियों का आन्दोलन भारतीय समाज में व्याप्त सामंतवादी प्रकृति को समूल नष्ट करना है।

वस्तुतः देश को साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त करना जितना महत्त्वपूर्ण था, सामन्तवाद के खिलाफ आवाज उठाना कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं। 'मैला आँचल' में वर्णित विविध प्रसंगों से यह प्रमाणित होता है कि देश की आजादी के साथ ही पूँजीवादी और सामन्तवादी समाज व्यवस्था से जबतक हमारी लड़ाई जारी नहीं रहेगी, तब तक जन सामान्य को उनकी सुरसामुखी समस्याओं से मुक्ति नहीं दिलायी जा सकती। इस जद्दोजहद में एक दिन गाँव के निरीह किसान और मजदूर भी अपनी आवाज अवश्य बुलन्द करेंगे और अपना हक लेकर रहेंगे। मेरीगंज की संथाल टोली का जनजातीय जीवन कितना पीड़ित रहा है! उनके भोले-भाले मन में आक्रोश की कितनी तेज लहरें हैं! इस लक्ष्य का अन्दाजा सिर्फ इस बात से लगाया जा सकता है कि- मेरीगंज गाँव में मलेरिया

अस्पताल खुलने की खुशखबरी का कोई खास असर उनपर नहीं रहा। किन्तु सोशलिस्ट पार्टी की सभा की खबर ने संथाल टोली को विशुद्ध रूप से आन्दोलित किया है। ('मैला आँचल' पृ.- 82) यह सिर्फ इस कारण, करने वाले किसानों का ही अधिकार होना चाहिए। कर्त्तव्यनिष्ठ और मेहनती संथाल किसानों को बड़ी मुद्दत से उनके अधिकारों के उलझे हुए सवालों के जबाब अबतक नहीं मिल पाए थे कि जमीन का सही हकदार कौन है- सामंत, जमींदार या जमीन जोतनेवाले? उन्हें अब साफ मालूम पड़ा कि जमीन जोतनेवाला ही जमीन को असली हकदार है, वह जमीन्दार नहीं, जो अधिक हड़पकर ऐशो-मौज की जिन्दगी काटता है और गरीब किसान और कृषि मजदूर सालों-भर मेहनत करके भी दोनों शाम पेट नहीं भर पाते। इसलिए 'मैला आँचल' में सन्थाल टोली के विरसा माँझी का बेटा मंगल माँझी उस गीत की कड़ी-'जौहिरे रे जोतिबे सोहि रे बोयबे'..... को दुहराता है।

इस तरह स्पष्ट है कि रेणु ने अपनी रचनाओं में जनवादी दृष्टि के द्वारा किसानों-मजदूरों और शोषितों के अस्तित्व और अस्मिता को समाज या कि राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने की श्रमसाध्य कोशिश की है।

■

'मैला आँचल' में लोक-संस्कृति

श्री अखिलेश कुमार

सहायक प्राचार्य, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा

'मैला आँचल' हिन्दी कथा साहित्य की विशिष्ट कृति है- कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से। इस उपन्यास में पूर्णियाँ जिला के मेरीगंज गाँव की विस्तृत कथा है। आँचलिक उपन्यास होने के कारण अंचल ही इस उपन्यास का नायक है। 'मैला आँचल' में जनपद के भूगोल, सभ्यता, रहन-सहन, भेष-भूषा, रूढ़ियाँ, सामाजिक परम्पराएँ, लोक-जीवन, सब कुछ त्योहारों पर लोकगीत, रीति-रिवाज, लोक-भाषा, लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे, राजनीतिक चेतना, आर्थिक कठिनाइयों का यथार्थ सबकुछ देखने को मिलता है। 'प्रेमचंद' के बाद गाँव का इतने विस्तार के साथ सूक्ष्म चित्रण, नए शिल्प में पहली बार 'रेणु' द्वारा किया गया।

'लोक-संस्कृति' और 'लोक-जीवन' हिन्दी कथा साहित्य के केन्द्र में रहा है। फणीश्वरनाथ रेणु का आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' सामूहिक पहचान व क्षेत्र-विशेष की लोकपद संस्कृति सहित समग्र जीवनशैली को उभारता है। उपन्यास में 'मेरीगंज' के लोगों, उनकी प्रथाओं, विश्वासों, वस्तुओं का वर्णन विशिष्ट ढंग से किया गया है जो उपन्यास-शिल्प के दृष्टिकोण से 'मैला आँचल' को सशक्त रचना बनाता है।

आँचलिक उपन्यासों में अंचल की संस्कृति का चित्रण विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करता है। 'लोक-जीवन' के इस चित्रण के कारण अंचल का सम्पूर्ण परिवेश व्यक्ति के समान मुखर होकर सामने आया है। लोक-जीवन के विविध रूप लोक-संस्कृति के माध्यम से प्रकट होते हैं। इस प्रकार एक अंचल के लोगों की परम्परागत मान्यताओं, रीति-रिवाजों और रहन-सहन की अभिव्यक्ति होती है। उनकी भेष-भूषा, बोली तथा मनोरंजन के विविध रूप संस्कृति के अभिन्न अंग है।

'मैला आँचल' में चित्रित लोक-संस्कृति के विविध रूप-गीत-संगीत, नृत्य, पर्व त्योहार में देखे जा सकते हैं। इस चित्रण में अंचल के जीवन की व्याप्ति है। वस्तुतः गीत-संगीत आदि वहाँ के जन-जीवन के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति के साधन हैं। 'मैला आँचल' में 'मेरीगंज' आँचलिक परिवेश और उनकी संस्कृति का व्यापक वर्णन वहाँ के मनुष्य का इतिहास भी है। विदापत नाच, 'जाट-जट्टिन' का खेल तथा 'संथालों का खेल' 'मैला आँचल' में अंकित संस्कृति के अंग हैं। 'विदापत नाच' हास्य और व्यंग्य प्रधान नृत्य है। इसलिए मनोरंजन के साथ-साथ उसमें गाँव की अनेक बातों पर व्यंग्य भी है।

'मैला आँचल' में लेखक ने लोक-गीतों, पर्व-त्योहारों व ऋतुओं का जीवन्त चित्रण किया है। समसामयिक राजनैतिक चेतना के कारण 'सुराजी गीत' की ध्वनि सुनाई पड़ती है। साथ ही कीर्तन तथा मन के अन्दर बीजक पाठ, सुरंगा-सदावृज की कथा की भी गूँज है। और सिखा पर्व, सतुआनी पर्व, चैत संक्रान्ति, बंधना पर्व-त्योहारों का जीवन्त व यथार्थ चित्रण हुआ है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने लोक-संस्कृति के इस चित्रण के द्वारा कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं और साथ ही नयी मान्यताओं को स्थापित भी किया है। आजादी के बाद लोक-संस्कृति के जीवन तत्त्वों को, बदलते हुए परिवेश में कैसे सुरक्षित किया जाय, इस महत्त्वपूर्ण बात को भी उठाया गया है। 'रेणु' जी ने लोक-संस्कृति के गीत-संगीत तथा नृत्य के वैभव को प्रस्तुत करके नये

सिरे से विचार करने को प्रेरित किया है। आधुनिक काल में जहाँ अन्य उपन्यासकार नगरीय जीवन का चित्रण कर रहे थे, ठीक उसी समय फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने नगरीय संस्कृति के एकाधिकार को तोड़ा तथा लोक-संस्कृति के संदर्भ में 'मैला आँचल' जैसी कालजयी उपन्यास की रचना की।

■

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में लोककला

डॉ. उमेश कुमार
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, बि.म.आदर्श महाविद्यालय, बहेड़ी, दरभंगा

आँचलिक परिवेश की संस्कृतियों में लोक-कलाओं का समायोजन एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। लोक-संदर्भ के रचनाकार इसे सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं, क्योंकि वे अपने वातावरण से प्रभावित होते हैं। उनके व्यक्तित्व की छवि भी उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। किसी रचनाकार की वैचारिक अनुभूति जितनी पुष्ट होगी, उतना ही समृद्ध होगा उनका रचना संसार। रेणु जी एक ऐसे ही कथाकार हुए जिन्होंने अपनी आँचलिक कथाओं के माध्यम से समाज की प्रत्येक परिस्थितियों और तत्कालीन समाज में व्याप्त लोक-कलाओं को उजागर किया है। रेणु जी की कहानियों में लोक-कलाओं की अवधारणाएँ अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया के साथ उपस्थित होती हैं।

लोककला के अन्तर्गत लोकशिल्प, लोकगीत, लोकचित्र, लोक-नृत्य, लोकनाट्य आदि आते हैं जो अंचल-विशेष की संस्कृति के अंश हैं। रेणु जी की कहानियों में इन कला मिश्रित संस्कृतियों के दर्शन होते हैं। रेणु जी केवल ग्रामीण संस्कृति को लेकर उपस्थित नहीं होते हैं बल्कि लोक-कलाओं के माध्यम से अपनी भावनाएँ एवं संवेदनाएँ भी प्रेषित करते हैं। ये कलाएँ मानव-मन की उदात्त संस्कृतियाँ हैं, जो किसी रचनाकार अथवा कहानीकार के लिए सृजनशीलता के पक्ष को उजागर करती हैं।

मिथिलांचल में 'विदापत' नाच की परम्परा तो प्रायः समाप्त ही हो चली है, लेकिन रेणु जी ने 'रसप्रिया' कहानी के माध्यम से इसे जीवन्त रखा है। कभी दोपहरी की धूप में भी अपने गीतों के माध्यम से नमी ला देनेवाला पंचकौड़ी मिरदंगिया अब नहीं रहा। रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चाँचर और लगनी गानेवाले अब शायद ही मिलेंगे, लेकिन रेणु जी की कहानी 'रसप्रिया' हमारी इस संस्कृति की याद दिलाती रहेगी।

'तीसरी कसम' की नौटंकी में हीराबाई अपने नृत्य और गीतों से आम लोगों को रिझाती है। हिरामन को भी छोकड़ा नाच की याद आती है-

''सजनवा बैरी हो ग'य हमार
चिठिया हो तो सब कोई बाँचे
हाय! करमवा, हाय करमवा
कोई न बाँचे हमरो, सजनवा..... हो करमवा.....।

हीराबाई यह सुनकर हिरामन की बड़ाई भी करती है। रेणु जी ने कलात्मक प्रस्तुति के मध्य से यहाँ भावनात्मक और संवेदनात्मक रूप भी प्रस्तुत किया है।

मिथिला लोकचित्र की छवि 'भित्ति चित्र की मयूरी' में देखी जा सकती है। फुलपतिया के माध्यम से मिथिला लोकचित्र की परम्परा दर्शायी गई है। इसमें मधुबनी आर्ट सेन्टर' की चर्चा इस बात का भी प्रमाण है कि तत्कालीन मैथिल समाज में चित्र बनाने की परम्परा कायम रखी गई। यह परम्परा मिथिला में आज भी जीवन्त है।

लोकशिल्प का उदाहरण 'ठेस' कहानी में भी देखा जा सकता है। शीतलपाटी बुनने वाले सिरचन मुँहजोड़ जरूर है लेकिन कामचोर नहीं। सिरचन एक सच्चा और समर्पित लोक-शिल्पी है। वह ऐसा भावुक कलाकार है जो छोटी-छोटी बात पर भी रूठ जाता है। वह अन्तर से टूटता भी है लेकिन संवेदना के स्तर पर मानवीय मूल्यों की उसमें पहचान भी है।

रेणु जी की ऐसी कई कहानियाँ हैं जिसमें लोक-जीवन से जुड़ी कला और संस्कृति के दिग्दर्शन किये जा सकते हैं। भारत यायावर ने माना है कि ''सारंग-सदावृक्ष लोरिक आदि लम्बी-लम्बी लोक-गाथाएँ गाते हुए रेणु को जिन्होंने एक-आध बार भी सुना

है, वे उन्हें कभी भी भूल न सकेंगे। लोकगीत, लोकलय, लोककला आदि जितने भी तत्त्व लोक-जीवन को सफलता प्रदान करते हैं, उन सभी का समन्वित प्रतीक थे फणीश्वरनाथ 'रेणु'।'' रेणु जी जीवन के यथार्थ के प्रति जितने सचेष्ट थे उतने ही समर्पित थे कला के यथार्थ के प्रति। कभी रामधारी सिंह दिवाकर ने भी इन दोनों पक्षों के अन्तर को समझने की कोशिश की थी।

बहरहाल, रेणु जी की कहानियों में लोक-कलाओं के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक, आदर्श, आस्थाएँ मान्यताएँ सकारात्मक विचारधाराएँ एवं संवेदनाएँ व्यक्त हुई हैं। यों कहा जा सकता है कि रेणु जी की कथाएँ लोकजीवन, लोक-संस्कृति और लोक-कलाओं का संग्रहालय है।

■

नागर-आँचलिकता का एक प्रयोग- 'दीर्घतपा'

डॉ. राजकुमारी खेड़िया

अवकाश प्राप्त एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, जी.डी. कॉलेज, बेगूसराय

सन् 1963 में प्रकाशित 'दीर्घतपा' 'रेणु' का तीसरा उपन्यास है। 'मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा' के ग्राम्य-अंचल के सर्वथा विपरीत बाँकीपुर के 'वर्किंग विमेन्स होस्टल' को आधार बनानेवाली 'दीर्घतपा' उपन्यास 'रेणु' की नागर-आंचलिकता का एक असफल प्रयोग कहा जा सकता है। सम्भवतः 'मैला आंचल' तथा परती परिकथा' की विश्वप्रसिद्धि के आधार पर अनेक समीक्षकों(1) ने 'दीर्घतपा' को सशक्त आंचलिक रचना स्वीकार किया है। वस्तुतः यह शुद्ध तथा सशक्त आंचलिक उपन्यास तो नहीं-आंचलिक साज का नागरी-रूप-अवश्य है। 'रेणु' ने भी 'मैलाआँचल' के लिए जिस दृढ़ता से यह घोषणा की थी- 'यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास'(2) वैसी दृढ़ता 'दीर्घतपा' में कहाँ? शायद इसकी आंचलिकता पर लेखक को भी पूर्ण विश्वास नहीं था, इसीलिए इसकी भूमिका में स्वयं ही सन्देह प्रकट करते हुए वे लिखते हैं- 'यह उपन्यास नहीं, आंचलिक नहीं.....हाँ, आंचलिक ही.....किन्तु.....अर्थात् यह उपन्यास उपन्यास है' (3) हाँ, भाषा की दृष्टि से इसकी आंचलिकता सराहनीय अवश्य है। कथावस्तु की दृष्टि से, बाँकीपुर के वर्किंग विमेन्स होस्टल की एक रात के ग्यारह बजे से प्रस्तुत उपन्यास की कथा प्रारम्भ होती है- फाटक पीटने की 'ठन-ठन, ठन-ठन!'(4) ध्वनि के साथ और इसी वर्किंग विमेन्स होस्टल के फाटक के बन्द होने की अस्वाभाविक ठनठनाहट के साथ कथा की समाप्ति भी होती है। अतः अपने पूर्वोक्त उपन्यासों की तरह लेखक ने ग्राम्यांचल की विशिष्टता तो नहीं, पर सीमित क्षेत्र की विशिष्टता अवश्य अंकित की है तथा कथा-केन्द्र के रूप में सीमित क्षेत्र बाँकीपुर के 'वर्किंग विमेन्स होस्टल' का सम्पूर्ण सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत कर आंचलिकता का असफल निर्वाह किया है। कथानक बांकीपुर के वर्किंग विमेन्स होस्टल से प्रारम्भ होकर बांकीपुर के 'रेडियों स्टेशन', 'जनाना अस्पताल', 'मिडवाइफ व मेटेरनिटी-सेण्टर', 'मिल्क सेण्टर', 'जेनरल हास्पिटल', 'सिफ्टनहॉल'(5) आदि का चक्कर काटता हुआ पुनः बाँकीपुर के वर्किंग विमेन्स होस्टल में केन्द्रीभूत हो जाता है। यह 'दीर्घतपा' की कथावस्तु की अचंलीय सार्थकता कही जा सकती है। भौगोलिक स्थिति के नाम पर 'खगड़ा मंजिल', 'दाइकित्ता', 'मेटेरनिटी सेण्टर', 'मेम हवेली'(6) आदि का उल्लेख है, जातीयता की प्रवृत्ति के नाम पर 'अभागा बंगाली', 'बुड़बक-बंगाली'(7) कहकर बिहारी बंगाली का भेदभाव प्रकट करने वाली श्रीमती आनन्द को प्रस्तुत किया गया है, खान-पान के नाम पर बांकीपुर के बिहारी नौजवानों का सूखी 'चच्चड़ी और सड़ी हुई मछली के लिए जान देने की (8) बात भी है, अंधविश्वास के नाम गली में रहने वाली बूढ़ी औरतों का उल्लेख है, जो परिवार नियोजन को अपशकुन समझकर हेल्थ-विजिटर को गालियाँ देती हैं '.... ...आ गई मेमिनियाँ सब। खूब कोख खाती फिरो घूम-घूमकर डायन सब-कहती हैं बच्चा कम पैदा करो।'(9), पूँजीपतियों की मनोवृत्ति का उद्‌घाटन करनेवाले बागे जैसे भ्रष्ट पात्र भी हैं, जो 'सत्यमेव जयते' के भक्षक तथा दुराचार जयते के पोषक हैं, जो होस्टल के प्रबन्धकों (मिसेज आनन्द) से मिलकर किसी भी लड़की को अपने मनोरंजन हेतु घर बुला लेते या हफ्तों गायब कर सकते हैं, जो अंजू-मंजू जैसी भ्रष्ट लड़कियों को बेला के लाख विरोध करने पर भी होस्टल की नियमावली के विरुद्ध होस्टल में स्थान दिलाते हैं और काम, कामुकता तथा कामी कामिनियों के व्यभिचारी आचरणों के भी चित्रण अत्यन्त यथार्थपूर्ण हैं। बेला गुप्त की सारी पीड़ा, मिसेज आनन्द का चकलाधर्मी आचरण, अंजू-मंजू की कामुक गतिविधियाँ, प्रोफेसर रमा निगम की रेडियो-प्रोग्राम के

***डॉ. राजकुमारी खेड़िया विरचित पुस्तक 'आँचलिक हिन्दी कथा-साहित्य में फणीश्वरनाथ 'रेणु' की देन' से साभार!**

चक्कर में लालभाई के साथ व्यभिचारी केलि-क्रीड़ा, अंजू-मंजू को लेकर सुखमय घोष का 'वाइफ एण्ड हजबैंड'(10) जैसी कामोत्तेजक नृत्यनाटिका का आयोजन, बागे का श्रीमती आनन्द के साथ व्यभिचार तथा नाटक देखने गई हुई विभावती एवं गौरी के साथ बलात्कार आदि में देश और काल-व्यापी कामुकता मुखर हुई है। इस प्रकार 'दीर्घतपा' में समाज के एक अंग के चित्रण और एक होस्टल में घटनेवाली घटनाओं के सम्पूर्ण चित्रण के कारण ही इसे अगर विशुद्ध आंचलिक उपन्यास कहा जाय, तो आंचलिकता पर व्यंग्य की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। 'मैला आँचल' की तरह 'दीर्घतपा' उपन्यास की आत्मा भी यथार्थ पर आधारित अवश्य है, पर ऐसा चित्रण किसी भी सामाजिक और सामान्य उपन्यास में प्रस्तुत हो सकता है। इसीलिए इसकी आंचलिकता कृत्रिमता से सम्बन्धित है और इसमें आंचलिक साज नागरिक(11) हो गया है।

चूँकि 'दीर्घतपा' नगरांचल सम्बद्ध उपन्यास है, अतः लोक-संस्कृति के चित्रण की वैसी सम्भावना यहाँ नहीं है, जैसी ग्राम्यांचल सम्बद्ध उपन्यास 'मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा' की, तथापि सहरसा जिले की कोसी-कछार पर रहने वाली लड़की, गौरी के चित्रण में अल्हड़, चंचल, सांस्कृतिक, ग्राम-नारी-व्यक्तित्व को कुशल उभार दिया गया है। जब वह 'जंतसार' लोकगीत गाती है-

"के तोरा देलकउ सुन्दरि दस सेर गेहुंआ
के तोरा भेजलकउ एकसरि जंतसारे ना-कि।
×× ×× ×× ××
"हुथड़ा "पकड़ि सुन्दरि झमरि....."(12)

-तो, गीत की गति पर शब्दचित्र भी मानो चक्की जैसे घूमते चक्कर खाते मन के प्लेट पर उभर-उभर आते हैं। एक ग्रामीण बालिका-वधू की छवि आँखों के सामने उतर आती है, जो चांगेरी-भर गेहूँ लेकर पीसने बैठी है चक्की पर और हमदर्द पड़ोसिन उसके प्रति संवेदना प्रकट करती है तथा चक्की का हत्था पकड़कर, झमाई हुई, निहुरी-सी, सकुचाई-सी, छोटी गुड़िया-सी दुलहिन घूंघट के भीतर ही रोती है।

उपन्यास में अन्यत्र भी 'मछुवारिन-नाच', 'रागबनजारा'(13) आदि की अवतारणा हुई है, पर नगर के वातावरण में उभरी यह सांस्कृतिक चेतना कृत्रिम है, आरोपित है, जिससे स्वयं लोक-संस्कृति के चितेरे 'रेणु' भी परिचित हैं। इसीलिए लोकगीत की एक कड़ी 'अरे, सोने की थाली में जेवना परोसी.....'(14) के मर्म को न समझने वाले नागरपात्रों द्वारा इसके शब्द 'जेवना' को 'जोवना'' कहकर उस पर रोमांटिक लेप लगाया गया है। इसी प्रकार लोक-नाट्य 'वाइफ एण्ड हजबैंड'(15) में 'परती परिकथा' के लोकनाट्य 'पंचचक्र'(16) की स्निग्धता, तरलता, सहजता, उन्मुक्तता तथा ग्रामीण-आत्मीयता कहाँ? इन सबसे पृथक इस नाट्य-योजना में भी छिपी है-शहरी कामुकता। हाँ, रंगमंच-सज्जा का परिचय'(17) देते हुए 'दीर्घतपा' के रचयिता की घुटती हुई कलाकार की आत्मा एक बार अवश्य यहाँ भी पुलकित हो उठती है। 'दीर्घतपा' की नागर-आंचलिकता के प्रयोग द्वारा 'रेणु' ने यह सत्य मुखरित कर दिया है कि ग्राम्य-अंचल में ही लोक-संस्कृति का सहज सौन्दर्य प्रस्तुत हो सकता है, नागर आंचलिकता में नहीं। यहाँ तो लोक-नृत्य तथा लोक-पर्व के नाम पर 'आडिट पार्टी', 'बेबी शो', 'महिलाशिल्प मेला', 'फ्लावर शो', 'चेरिटी-शो आदि'(18) ही देखे जा सकते हैं, जहाँ कोलाहल भी है, कलरव भी है, औत्सुक्य भी है, चांचल्य भी है, पर सब यांत्रिक, कृत्रिम, आरोपित। ग्राम्य संस्कृति की सरलता, सहजता तथा प्राणों का स्पंदन यहाँ कहाँ? 'मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा' की भाँति ही "दीर्घतपा'' में बहुल पात्रों की योजना है। मात्र 128 पृष्ठ (द्वितीय संस्करण) के आकार को देखते हुए साठ से अधिक पात्रों का चित्रण इसकी आंचलिकता का आभास देता है, पर प्रधान कथासूत्र मिस बेला गुप्त का है, जो उपन्यास के प्रथम पृष्ठ से प्रारम्भ होकर कृति के अन्त तक चलता है और नायिका के रूप में बेलागुप्त की सृष्टि 'दीर्घतपा' की आंचलिकता का बाधक तत्त्व है। किशनगंज का इस्लामपुर गाँव। इस्लामपुर स्कूल के व्यायाम-शिक्षक की पुत्री बेला अपने पिता के प्रिय छात्र-नकली क्रान्तिकारी तरुण 'बांके बिहारी' की झूठी देश-भक्ति से प्रभावित होकर पार्टी के हुक्म पर घर से निकल जाती है। उसके सतीत्व को नष्टकर बिहारी उसे सरफराज खां के हवाले कर देता है और देश-सेवा के अपने कुचले अरमानों से झुलसा उसका नारीत्व चीत्कार कर उठता है। कालान्तर में बाँकीपुर जेनरल हॉस्पिटल में 'नर्स बनकर वह सच्चे देशभक्त रमाकान्त से प्रभावित होती है, पर रमाकान्त शहीद हो जाता है तथा बेला रमलामौसी से प्रभावित होकर होस्टल तथा अन्य संस्थाओं की 'फील्ड आर्गेनाइजर', 'केयर टेकर'! बन जाती है। केयर टेकर होने के पूर्व तक की कथा उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप में पूर्वदीप्ति-पद्धति द्वारा कही गई है। निर्मम, बर्बर, अत्याचारी समाज द्वारा दीर्घतपा नारी, तेजोमय नारी बेलागुप्त के आदर्श की बेबस, बेकस, विवश, कलपती, बिलखती आवाज पाठकों को भी बिलखने को मजबूर करती है। 'दीर्घतपा' शीर्षक की सार्थकता भी 'बेलागुप्त' के आदर्श चरित्र के प्रस्तुतीकरण

में ही है, किसी अचंलीय सार्थकता से सम्बन्धित नहीं। नारी को समाज में विशिष्ट स्थान दिलाने हेतु होस्टल में नियमों का कड़ाई से पालन करती, शिल्प-केन्द्र में सिलाई-कटाई सीखने के लिए महिलाओं को बुलाती, मिल्क सेण्टर में दूध पीने वाले बच्चों के घर घूमती, बीमार बच्चों के सेण्टर में चक्कर काटती बेला गुप्त के निजी जीवन में कहीं विश्राम नहीं कहीं ऐय्याशी नहीं। सादा जीवन समर्पित जीवन। सेवा ही उसका तन, मन और प्राण सब कुछ है। पर उसके चरित्र की इस उदात्तता का आंचलिकता से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ, बच्चों के बीच फैले संक्रामक रोग की खोज करती बेला गुप्त, जब ग्रामीण अंचलीय पात्र रमेश की दादी से उस रोग की दवा, ××× पहले अदरख को पीसकर रस निकालने कहिएगा... और हाँ, अदरख में एक बूंद भी पानी न पडे। इसके बाद (चांदमड़वा की) जड़ी को उसी सिलवट पर घिसकर बराबर दो बार पिला दें(20) (पाती है, तब शहरी छलावे के कारण श्रेय भले ही डॉ. मिंझ को मिलता है, पर आंचलिकता की एक झलक अवश्य मिल जाती है।

यह सच है कि बेला के माध्यम से बांकीपुर के 'वर्किंग विमेन्स होस्टल', का सम्पूर्ण नारी-समाज बोलता है, विभिन्न सेवा-केन्द्रों का यथार्थ उद्‌घाटित होता है, व्यक्ति के स्थान पर समाज का स्वर प्रमुख दिखाई देता है, तथापि बेला की कथा तथा उसके चरित्रांकन में आंचलिकता की प्रवृत्ति का निदर्शन नहीं होता। मिसेज ज्योत्स्ना आनन्द का कथा-चरित्र भी बेला गुप्त के प्रधान कथासूत्र के साथ-साथ विकसित हुआ है। दोनों के माध्यम से 'होस्टल' का बाह्य तथा अन्तरंग चित्रण बखूबी हो पाया है। बेला प्रगतिशील नारी है, दीर्घतपा नारी है तो मिसेज आनन्द नागरी-अंचल की कुरूपता को अभिव्यक्ति देने वाली वह सफेदपोश महिला है, जिसके माध्यम से महिला संस्थाओं (बांकीपुर विमेंस वेल फेयर बोर्ड के तत्त्वावधान में चल रहे वर्किंग विमेन्स होस्टल, मेटेरनिटी सेन्टर, शिल्पकेन्द्र, मिल्क सेन्टर आदि की सेक्रेटरी मिसेज आनन्द ही है) की अनैतिकता और व्यभिचारों का पर्दाफाश हुआ है। मिसेज आनन्द, जो 'बूढ़ी मौगी' 'वेश्या', 'स्खलित औरत', 'खाली-बोतल', 'व्यभिचार के बड़े अड्डे की मालकिन'(21), बच्चों के लिए विदेश से आयी हुई दवा और दूध के लिए सैकड़ों बक्से की बिक्री करने वाली, वर्किंग विमेन्स होस्टल को एक चलता-फिरता चकला बनाने वाली कलंकित नागरी-नारी-पात्र है। वह 'चतुर चालाक आदिवासी सन्तान', 'दलाल'(22) बागे के साथ मिलकर समाज में अनाचार और भ्रष्टाचार फैलाती है तथा सत्यमेव जयते की भक्षक तथा दुराचार जयते की पोषक है। सारांशतः मिसेज आनन्द के माध्यम से नागरी समाज की सफेदपोश महिला की कलंकित तस्वीर प्रस्तुत की गयी है, जो व्यापक स्तर पर यथार्थ की कटु गाथा है, पर उसके चित्रण में कहीं भी आंचलिकता की प्रवृत्ति उद्‌घाटित नहीं हो पाती है।

'गुटिरेनी वाली'(23) (ट्रेनिंग में आई हुई लड़कियाँ), लड़कियों के मध्य अपनी चंचलता के कारण 'हरपटाही', 'गिलहरी', 'हिरणी'(24) कही जानेवाली गौरी के रूप में ग्रामीण अंचलीय छवि उजागर हुई है। हमेशा मुस्कराती, दौड़-दौड़ कर चलती, कमरे में झाड़ू लगाते समय और कपड़ा धोते समय गाँव का कोई न कोई गीत गुनगुनाती गौरी देवी के चरित्र में अंचलीय चरित्र की सादगी, पवित्रता तथा लोक-संस्कृति की नैसर्गिकता का उद्‌घाटन हुआ है। इसीलिए वह नागर-पात्र बागे की नजर में भी 'विशुद्ध ग्रामोद्योग माल'(25) है। श्रीमती आनन्द के सहयोग से उसके 'जानवर'(26) दोस्तों द्वारा बेइज्जत किये जाने पर कमसिन, भोली ग्रामीण छात्रा गौरी का कपड़े में किरासन तेल डालकर आग लगा लेना और मर जाना सभ्य कहे जाने वाले नागर समाज का कुरूप यथार्थ है अवश्य है पर कथा के इस अंश का आंचलिकता से कोई सम्बन्ध नहीं।

होस्टल के वातावरण ''.....लड़कियों के छोटे-छोटे चूल्हे, छोटी केतली, सस्ती टूटी-फूटी प्यालियाँ! सस्ते गमछे, छोटा-संसार! मशहरी किसी के पास नहीं.....(27) के मध्य विभावती का चरित्र भी विशिष्ट है। उसके गाँव (पूर्णिया जिले के किशनगंज सब-डिवीजन) में तथा आसपास के गाँवों में बहुत सी माताएँ सौरगृह में ही मर जाती हैं, बच्चे रोग के शिकार होते हैं(28) इसीलिए वह सेवा की भावना से प्रेरित होकर ट्रेनिंग लेने बांकीपुर के होस्टल में आई है। किशनगंज गाँव की अशिक्षा, रोग, चिकित्सा की आधुनिक पद्धतियों का अभाव आदि स्थितियाँ अचंलीय यथार्थ को उजागर करती हैं। नागर-सभ्यता में विभावती की भी वही दुर्गति होती है, जो गौरी की।(29)

'....सूखी लकड़ियां, पुआल, कागज और कूड़ा को बटोरकर लहकाकर, अलाव ताप रही....'(30) 'दाई कित्ता' की लड़कियों के चित्रण में, दाई-ट्रेनिंग के लिए आयी हुई कुन्ती देवी, तारा देवी और जानकी देवी जैसी अधेड़ ग्रामीण महिलाओं के चित्रण में ग्राम्य-अंचल की अशिक्षित औरतों को अभिव्यक्ति मिली है। ये जहाँ-तहाँ 'एक टोकरी गन्दे चीथड़े'(31) बिखेर देती हैं, अश्लील कहावत, अश्लील शब्द, अश्लील-आशय की पूर्ण जानकार हैं, बीड़ी पीए बिना इन्हें डकार ही नहीं आती(32), रबड़ के टुकड़े, जूते का तल्ला, बाँस की टूटी खपच्चियाँ आदि जलाकर उसके धुए से मच्छर भगाती हैं''(33) और इनके ये सारे व्यवहार ग्रामीण हैं, आंचलिक हैं। 'रेणु' की अंचलीय भाषा में ये 'छिनाल' हैं, 'कुतिया' हैं, 'बदचलन' हैं, 'शराबी' हैं और जिन्हें शहरी भाषा में 'दे आर टेरिब्बल'(34) ही कहा जा सकता है। शहरी प्रभाव के कारण ये जनरल अस्पताल से 'नशा' के रूप में 'स्प्रिट' उड़ाकर "स्प्रिट

में नीला पदार्थ तुतिया मिला'(35) कर सेवन करती हैं, 'समलिंगी कामाचार'(36) द्वारा 'शहरी चाल-चलित्तर'(37) को चरितार्थ करती हैं, रुपयों के लोभ में बिककर मासूम लड़कियों की इज्जत नीलाम कराती है। गौरी के शब्दों में 'डायन'(38) हैं, क्योंकि उसी ने गौरी को 'पकड़कर कोठरी में बन्द किया था और विभा दीदी को उस कुन्ती देवी ने अपने हाथ से मुँह में कपड़ा ठूँसकर'(39)। इस प्रकार ये तीनों नारी-पात्र ग्रामीण अशिक्षा, गन्दगी, जहालत आदि को पूर्णतः मुखर करने में सक्षम हैं। 'मनुष पीटना'(40) से डरने वाली रामरतिया के द्वारा अंचलीय शब्दों को सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। दीर्घतपा के अन्य अनेक पात्रों के 'परती परिकथा' की भाँति प्रतीकात्मक नाम हैं- मिसेज रमला बनर्जी- 'बांकेपुर शहर की मौसी'(41) है, अनेक सेवा-संस्थाओं की जननी, माँ, मौसी, दीदी, मायजी, देवी जी है, प्रो. रमा निगम' 'सुरती सहुआइन'(पृ. 33) है, क्लर्क सुखमय घोष 'बुढ्ढा खोखा,' 'घोस्ट', 'भूखा बंगाली', 'अभागा बंगाली'(42) आदि आदि है। 'उड़नचण्डी' वीणा, 'बातूनी' शारदा, होस्टल की महराजिन 'नानवाइन', पंचकन्याएँ (जिद्दी 'बेटी' युथिका, 'छग्ली बेटी' 'फातिमा', बाल विधवा बधू 'सरस्वती देवी', जन्म से पंजाबी, स्वभाव से बंगाली 'आयसा और बेलागुप्त'), 'एकादशी संघ'(43) (स्नेहलता, शिवानी, कंचनलता, पारूल आदि) जैसे बहुल पात्रों के सारे क्रिया-कलाप बांकीपुर के विमेन्स होस्टल तथा अन्य नारी संस्थाओं को उजागर करने में पूर्णतरू सक्षम हैं, तथापि उनके चरित्रांकन में कहीं कोई आंचलिकता की प्रवृत्ति का उद्घाटन नहीं होता।

पुरुष पात्रों में मिस्टर आनन्द, मिस्टर नाथ, बागे, सुखमय घोष, मनोरंजन झा, बाँके बिहारी, सरफराज आदि सभी पात्र रक्त-मांस के बने जीव हैं, पुरुष के वेश में दरिन्दे हैं, 'बर्बर, दुर्निवार जानवर'(44) हैं, सभी दलाल हैं। हाँ, मिल्क सेन्टर के बच्चों-किशोरी, लतीफ राधेश्याम, बुलबुलिया, रॉकेट कुमार आदि चरित्र के माध्यम से, 'बच्चों' की 'किलकारियों'(45) से सेण्टर का ही नहीं 'दीर्घतपा' का सम्पूर्ण कलुषित नगरांचल सुवासित हो जाता है। सचमुच शिशु के निकट नित्य स्वर्ग का वास है। ("Heaven dwells with us in infancy".) और इन मासूम स्वर्गीय चरित्रों को प्रथम बार 'रेणु' ने वाणी दी है- दीर्घतपा'' में 'परती परिकथा' तथा 'मैला आँचल' का व्यापक धरातल भी जिससे अछूता रहा है।

इस प्रकार 'दीर्घतपा' के बहुल पात्रों द्वारा बांकीपुर के 'वर्किंग' 'विमेन्स होस्टल' तथा बांकीपुर की समाजसेवी संस्थाओं का चित्र पूर्ण समग्रता में उजागर हुआ है। पर यह केवल बांकीपुर का होस्टल नहीं, हिन्दुस्तान के हर शहर में ऐसी संस्थाएं देखी जा सकती हैं जहाँ बांकीपुर की तरह हर वर्ग के तथाकथित प्रतिष्ठित तथा न्यायप्रिय अधिकारियों द्वारा शिक्षित अर्ध-शिक्षित, ग्रामीण-शहरी, रूढ़िग्रस्त तथा आधुनिक-सम्पूर्ण नारी-समाज को 'रसगुल्ला', 'आइसक्रीम', चमड़े का 'पोर्टफोलियों बैग', 'विशुद्ध ग्रामोद्योग के माल'(46) आदि-आदि समझा जाता है तथा श्रीमती आनन्द जैसी आधुनिकाओं द्वारा उन्हें पूर्ण सहयोग दिया जाता है और बेला, गौरी, विभावती जैसी निरपराध नारियों को सब सहना पड़ता है, करुण भींगी सिहरन बनना पड़ता है।

इस प्रकार सरकार द्वारा संचालित महिला-संस्थाओं में या सामाजिक संस्थाओं में चलने वाले भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता पर करारा व्यंग्य करनेवाला 'दीर्घतपा' उपन्यास नागार्जुन के 'कुम्भीपाक' उपन्यास से साम्य रखता है। 'कुम्भीपाक' के महिलाश्रम की अनैतिकता का स्वरूप भिन्न हो सकता है, पर दोनों का एक ही भयंकर परिणाम है और 'दीर्घतपा' के रचयिता की 'स्वीकारोक्ति' भी है- 'यही है तुम्हारी आजादी, यही है तुम्हारे समाजवादी-समाज की रूपरेखा? ....सच्चाई नामक गुण मनुष्य के हृदय से धीरे-धीरे लोप हो रहा है। .....स्वार्थ-सिद्धि के लिए आदमी किसी भी शर्त पर अपनी आत्मा को बेच सकता है।' जहां जीवन में कोई अबलम्ब नहीं, आधार नहीं, विश्वास नहीं।'.....'(47) यही है नागर-अंचल का यथार्थ।

'परती परिकथा' तथा 'मैला आँचल' की तुलना में 'दीर्घतपा' की कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होने के बावजूद विशिष्ट नहीं है, देश-व्यापी है, जो आंचलिकता की प्रवृत्ति के विपरीत है।

बाँकीपुर के खगड़ा-मंजिल की गली से लेकर किशनगंज और पेशावर के प्रसिद्ध होटल का चक्कर काटकर 'दीर्घतपा' का कथानक बेलागुप्त की गिरफ्तारी के बाद 'क्लाइमेक्स' पर पहुँचता है, तब अपनी विशिष्ट रिपोर्ताज शैली में 'लेखक की स्वीकारोक्ति'(48) प्रस्तुत होती है, रहस्योद्घाटन होता है कि अन्नपूर्णा, बेसेन्ट स्कूल की अध्यापिका, जो बांकीपुर में परीक्षा देने आई थी तथा जिसे देखकर 'बेला गुप्त को काशी के केदारघाट की याद...विश्वनाथ गली की पवित्र मनोहर गंध'(49) आती थी ....बेलागुप्त के गर्भ से प्रसूत बांके बिहारी की लड़की है और विभावती बेलागुप्त की मौसेरी बहन है। उपन्यास के इस नाटकीय अंश से भी रिर्पोटर 'रेणु' की छवि उजागर हुई है, न कि आंचलिक कथाकार 'रेणु' की। समग्रतः वस्तु-अन्विति की दृष्टि से 'दीर्घतपा' सशक्त एवं कलात्मक रचना है तथा 'मैला आँचल' की तरह इस उपन्यास की आत्मा भी यथार्थ पर आधारित है, पर आंचलिकता की दृष्टि से 'दीर्घतपा' इस बात का प्रमाण है कि ग्रामीण आंचलिकता की तुलना में नागर-आंचलिकता का प्रयोग असफल तथा प्रभावहीन है।

संदर्भ :

1. डॉ. राधेश्याम कौशिक, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्पविधान, पृ. 133-134, पूर्णदेव, 'रेणु का आंचलिक कथा-साहित्य' आशा प्रकाशन, प्र. सं. 1978 पृ. 43; कुसुम सोफ्ट, 'फणीश्वरनाथ रेणु की उपन्यास कला', वसुमती प्रकाशन प्र. स. 1968, पृ. 174; डॉ. कडवे, 'हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता की। प्रवृत्ति' वही, पृ. 169 आदि
2. मैला आँचल, वही, पहले संस्करण की भूमिका
3. दीर्घतपा, रेणु, द्वितीय संस्करण (बिहार ग्रन्थ कुटीर प्रकाशन) में प्रस्तुत प्र. सं. (31 दिसम्बर, 1963) की भूमिका से
4. दीर्घतपा, वही, पृ. 1, प्रथम पैरा
5. दीर्घतपा, वही, पृ. सं. क्रमशः 56,62,63,90-91,93,96
6. वही, पृ. 32
7. वही, पृ. सं. क्रमशः 20,21
8. वही, पृ. 74
9. वही, 63
10. दीर्घतपा, वही, पृ. 71
11. डॉ. लक्ष्मीकान्त सिन्हा, हिन्दी उपन्यास-साहित्य का उद्‌भव और विकास, ग्रन्थ भारती प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1966, पृ. 318
12. दीर्घतपा, वही, पृ. 36
13. वही, पृ. सं. क्रमशः 70, 95
14. वही, पृ. सं. 10
15. वही, पृ. 71
16. परती परिकथा, वही, पृ. 381-383
17. दीर्घतपा, वही, पृ. 71
18. वही, पृ. सं. क्रमशः 7, 12, 13
19. दीर्घतपा, वही, पृ. सं. क्रमशः 69, 13
20. वही, पृ. 99-100
21. दीर्घतपा, वही, पृ. सं. क्रमशः 5, 48, 89, 89, 126
22. वही, पृ. सं. क्रमशः 46, 46
23. वही, पृ. 26
24. वही, पृ. 32
25. वही, पृ. 52
26. दीर्घतपा, वही, पृ. 112
27. दीर्घतपा, वही, पृ. 38
28. वही, पृ. 37
29. वही, पृ. 111-112
30. वही, पृ. 32
31. वही, पृ. 28
32. वही, पृ. 33
33. वही, पृ. 34
34. वही, पृ. क्रमशः 113, 114, 16, 24, 28
35. वही, पृ. 93
36. वही, पृ. 53-54
37. वही, पृ. 54
38. वही, पृ. 113
39. वही, पृ. 113
40. वही, पृ. 6
41. वही, पृ. 13
42. वही, पृ. सं. क्रमशः 19, 20, 20, 20
43. वही, पृ. सं. क्रमशः 15, 15, 32, 65, 65, 66, 66, 69

44. वही, पृ. 42
45. वही, पृ. 62
46. दीर्घतपा, वही. पृ. सं. क्रमशः 14, 70, 42, 45
47. वही, पृ. 125
48. दीर्घतपा, वही, पृ. 124-128
49. वही, पृ. 44

■

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में भारतीय संस्कृति

डॉ. अशोक कुमार सिन्हा
प्रभारी प्राचार्य, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा (बिहार)

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (ञ) धातु से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ साफ या परिष्कृत करना है। बृहत् हिन्दी कोश में शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण तथा पवित्रीकरण को संस्कृति कहा गया है। प्रो. विश्वनाथ प्रसाद 'साहित्य का विश्लेषण' में लिखते हैं - ''किसी विशेष भूखण्ड के निवासियों की विशिष्ट रागात्मक संवेदनशीलता और बौद्धिक संगठन को हम संस्कृति कहते हैं। किसी जाति की इसी बौद्धिक और रागात्मक विशिष्टता को दृष्टिपात करके ही हम भारतीय संस्कृति, यूरोपीय संस्कृति आदि शब्दावलियों का उल्लेख करते हैं।'' समाजशास्त्री 'मेकाइवर' ज्ञान, नैतिक आचार, कला, शास्त्र, धर्माचरण आदि को संस्कृति मानते हैं। जयशंकर प्रसाद के अनुसार ''संस्कृति का सामूहिक चेतना से, मानसिक शील और शिष्टाचारों से, मनोभावों से मौलिक संबंध है। संस्कृति सौन्दर्य बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।'' सुमित्रानंदन पंत संस्कृति के अन्तर्गत अध्यात्म, धर्म, सामाजिक रूढ़ि, व्यवहार सबों को समाहित कर लेते हैं। उन्हीं के शब्दों में - ''मैं संस्कृति को मानवीय पदार्थ मानता हूँ जिसमें हमारे जीवन के सूक्ष्म-स्थूल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे उर्ध्व चेतना शिखर का प्रकाश और सामयिक जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छायाएँ गुम्फित हैं। इसके भीतर अध्यात्म, धर्म, नीति से लेकर सामाजिक रूढ़ि, रीति तथा व्यवहारों का सौन्दर्य भी एक अन्तर सामंजस्य ग्रहण कर लेता है।'' संस्कृति की चर्चा होती है तो सभ्यता शब्द भी हमारे सामने आ जाता है। सभ्यता का संबंध भौतिक वस्तुओं से है। सांसारिक सुख-सुविधा के साधन सभ्यता के अन्तर्गत आते हैं। रामधारी सिंह दिनकर इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। मोटर, महल, सड़क, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन ये तथा इसके समान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नहीं सभ्यता के सामान हैं। मगर पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति की चीज है। इसी प्रकार मोटर बनाने और उसका उपयोग करने, महलों के निर्माण में रुचि देने और सड़कों तथा हवाई जहाजों की रचना में ज्ञान लगता है उसे अर्जित करने में संस्कृति अपने को व्यक्त करती है।'' संस्कृति मनुष्य को उसके आदिकाल से जोड़ती है। आदिकाल में वह जिस तरह से ईश्वर की पूजा करता था, पर्व-त्योहार मनाता था, पड़ोसियों से व्यवहार करता था, समाज में रहता था उसी परम्परा को वह आगे बढ़ाता है। जन्मोत्सव, शादी-विवाह की परम्परा, श्राद्ध-कर्म सभी उसकी आदिकालीन मान्यताओं, परम्पराओं से सम्बद्ध होती हैं। संस्कृति मेल-जोल से बढ़ती है। एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों के सम्पर्क में जब आते हैं तो उनकी संस्कृति भी आपस में मिलती है। फलतः संस्कृति का भी विकास होता है। उसकी परिधि बढ़ती है। उसमें अनेक गुण समाहित होते हैं। संस्कृति का संबंध मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों से है। इसकी लम्बी परम्परा है और हर आने वाली संतति इसका पालन करते हुए निरन्तर विकास करती है। हर देश अपनी संस्कृति पर गर्व करता है। किसी भी देश की संस्कृति में वहाँ की परम्परा, लोगों की भावनाएँ, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आशा-आकांक्षा आदि को सहज ही देखा जा सकता है।

■

रेणु की कहानियाँ : रचता-बसता लोक-जीवन

डॉ. दिनेश प्रसाद साह

एसोसिएट प्रोफेसर - सह हिन्दी विभागाध्यक्ष, सी.एम.साइन्स कॉलेज, दरभंगा

आवासीय पता : ग्राम- छपकी परड़ी, पो.- लक्ष्मीसागर, जिला- दरभंगा, पिन- 846009 (बिहार) मो.- 8409813802

आधुनिक हिन्दी साहित्य में रेणु ऐसे लेखक हैं जिनके कथा-साहित्य में लोक-जीवन रचा बसा है। उनकी रचनाओं में आंचलिकता आकाश की ऊँचाई से आगे निकल गयी। इससे पूर्व इस आंचलिकता का संधान और छोटे-मोटे निशान खोजने की कोशिश आलोचकों और चिन्तकों द्वारा जरूर की गयी, किन्तु उन्हें आंचलिकता का राजमार्ग न कहकर पगडंडी ही कहा जा सकता है, जिसपर चला तो गया पर पूरे जोश के साथ दौड़ा नहीं जा सका। यह जोश-खरोश और दम-खम जितना रेणु की कलम से निकला और उसका प्रकाश चतुर्दिक देश-विदेश में विकीर्ण हुआ; उससे पूर्व और पश्चात् उनका कोई भी सानी नहीं है। रेणु की भाषा ने ही और उनकी गंवई छौंक ने ही उन्हें ऐसा बना दिया कि फिर उनके बाद बहुत कुछ लिखे जाने के बावजूद लोगों के दिल में जिस गहराई से ग्रामीण गंध रेणु ने बसाई थी, वह दूसरों के द्वारा उतारी नहीं जा सकी।

रेणु की कहानियों में कला और शिल्प के साथ ही जीवन की उद्दाम शक्ति और गहरी मानवीयता के गुण भी विद्यमान हैं। लोक-शिल्पी तो वे हैं ही, लोक-जीवन का उनके जैसा अनुभव था, अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। लोक-जीवन के प्रति गहरी संवेदना एवं लोक-चरित्रों की गहरी समझ रेणु के साहित्य में सर्वत्र देखने को मिलती है। वे अपने समाज को सुन्दर बनाने एवं संवेदनशील चरित्र के निर्माण हेतु सदैव साकांक्षी रहे। सच कहा जाए तो 'रसप्रिया' एक ऐसी कहानी है जो प्रेम को, ग्रामीण प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को, मन की अनदेखा करने वाली नाट्यशीलता को, रमपतिया के चरित्र को लेकर एक ऐसा मनोभाव प्रस्तुत करती है जो ग्राम गंधी है किन्तु इसमें मिरदंगिया का मोहना के प्रति स्नेह और आकर्षण एक ऐसे भावात्मक जगत् की सृष्टि करता है जिसका कलात्मक गोपन निश्छल, सरल और समर्पित हृदय की झलक दे सकता है। निःसन्देह रसप्रिया भाव, भाषा, चरित्र-नैपुण्य और वातावरण का एक ऐसा मनोरम जगत् है जिसकी झाँकी पाठक के हृदय को रोमांचित करती है।

रेणु की एक और अत्यंत चर्चित कहानी 'ठेस' एक चरित्र प्रधान कहानी है जो लोक कलाकार 'सिरचन' को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। सिरचन एक जिन्दादिल और स्वाभिमानी कलाकार है। उसकी कला की कद्र इलाके-भर में संभ्रान्त वर्ग के लोग करते हैं।

'रसप्रिया' कहानी की डोर मिरदंगिया को मोहना और रमपतिया के फ्लैश बैक में ले जाती है, वह 'उसने कहा था' के छोर को छूती है यद्यपि रेणु की दृष्टि में 'उसने कहा था' रहा होगा कि नहीं, निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता; किन्तु दोनों कहानियों में प्रेम के जिस अवहित्था भाव की व्यंजना हुई है वह एक-दूसरे की याद ताजा कर जाती है। दोनों के वातावरण में अंतर है। 'उसने कहा था' का फ्लैशबैक अमृतसर के बाजार में घटित होता है जबकि 'रसप्रिया' का फ्लैशबैक ठेठ देहाती ग्रामांचल में। प्रकारान्तर से दोनों में ही प्रेम का बलिदान है। उधर लहना सिंह सुबेदारनी को दिए वचन के निर्वाह में बलिदान हो जाता है तो इधर रमपतिया मिरदंगिया के पूर्व प्रेम की स्मृति को झूठलाती नजर आती है। त्याग की पराकाष्ठा दोनों ही कहानियों में दिखलाई पड़ती है।

■

रेणु के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना

डॉ. विनीता कुमारी

अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, डॉ. लोहिया कर्पूरी विशेश्वरदास महाविद्यालय, ताजपुर, समस्तीपुर, बिहार

'मैला आँचल' फणीश्वरनाथ रेणु का प्रतिनिधि उपन्यास है। यह हिन्दी का श्रेष्ठ और सशक्त आंचलिक उपन्यास है। नेपाल की सीमा से सटे उत्तर-पूर्वी बिहार के पिछड़े ग्रामीण अंचल को पृष्ठभूमि बनाकर रेणु ने इसमें वहाँ के जीवन का, जिससे वह स्वयं ही घनिष्ट रूप से जुड़े हुए थे, अत्यंत जीवन्त और मुखर चित्रण किया है।

सन् 1954 में प्रकाशित इस उपन्यास की कथावस्तु बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज की ग्रामीण जिंदगी से सम्बद्ध है। यह स्वतंत्र होते और उसके तुरंत बाद के भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य का ग्रामीण संस्करण है। रेणु के अनुसार इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है और कीचड़ भी है। मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया। इसमें गरीबी, रोग, भुखमरी, जहालत, धर्म की आड़ में हो रहे व्यभिचार, शोषण, बाह्याडंबरों, अंधविश्वासों आदि का चित्रण है। शिल्प की दृष्टि से इसमें फिल्म की तरह घटनाएँ एक के बाद एक घटकर विलीन हो जाती हैं और दूसरी प्रारंभ हो जाती हैं। इसमें घटना की प्रधानता है किन्तु कोई केन्द्रीय चरित्र या कथा नहीं है। इसमें नाटकीयता और किस्सागोई शैली का प्रयोग किया गया है। इसे हिन्दी में आँचलिक उपन्यासों के प्रवर्तन का श्रेय भी प्राप्त है। 'मैला आँचल' का नायक एक युवा डॉक्टर है जो अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद पिछड़े गाँव को अपने कार्य-क्षेत्र के रूप में चुनता है तथा इसी क्रम में ग्रामीण जीवन के पिछड़ेपन, दुःख-दैन्य, अभाव, अज्ञान, अन्धविश्वास के साथ-साथ तरह-तरह के सामाजिक शोषण-चक्रों में फँसी हुई जनता की पीड़ाओं और संघर्षों से भी उसका साक्षात्कार होता है। कथा का अन्त इस आशामय संकेत के साथ होता है कि युगों से सोई हुई ग्राम-चेतना तेजी से जाग रही है।

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले में फारबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उस समय यह पूर्णिया जिले में था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद रेणु ने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के विराटनगर आदर्श विद्यालय से कोईराला परिवार के साथ रहकर पूरा किया। इन्होंने इंटरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् 1942 में की। जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में इन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आंदोलन में भी हिस्सा लिया, जिसके परिणाम स्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। 1952-53 के समय वे भीषण रूप से रोगग्रस्त रहे थे, जिसके बाद लेखन की ओर उनका झुकाव हुआ। उनके इस काल की झलक उनकी कहानी 'तबे एकला चलो रे' में मिलती है। उन्होंने हिन्दी में आँचलिक कथा की नींव रखी। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' एक समकालीन कवि, उनके परम मित्र थे। इनकी कई रचनाओं में कटिहार के रेलवे स्टेशन का उल्लेख मिलता है।

■

रेणु के कथा-साहित्य में लोक-संस्कृति और 'विदापत नाच'

डॉ. अमरकान्त कुमर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा

फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिन्दी के ऐसे शब्द-शिल्पी हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों, कहानियों और रिपोर्ताजों में उत्तरी बिहार के 'पूर्णियाँचल' के लोक-जीवन और यहाँ की बहुविध लोक-संस्कृति को जीवन्त कर दिया है। रेणु के कथा-साहित्य में यहाँ की लोक-संस्कृति और लोक-जीवन सम्पूर्णता में चित्रित है। रेणु के कथा-साहित्य में संवेदना और संस्कृति रसमयता और मानवीयता के गहरे अर्थ को जीती हैं। 'रेणु रचनावली' के संपादक भारत यायावर लिखते हैं- ''रेणु ने ग्रामीण अंचल के लोक-जीवन की आर्थिक बदहाली, राजनैतिक पिछड़ेपन को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है, किन्तु लोक-जीवन की सांस्कृतिक दशाओं का जितना सूक्ष्म और विराट चित्रण किया है, ग्रामीण लोगों की समस्याओं को जितनी अनुभूति और समझ की प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है वह हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है।'' फणीश्वरनाथ 'रेणु' के कथा-साहित्य में वस्तुतः तीन चीजें हैं जो उनको शक्ति प्रदान करती हैं और वे जन-प्रियता की आधार भी हैं-(1) लोक-जीवन (2) लोक संवेदना और (3) लोक-संस्कृति। ये वे तत्व हैं जो रेणु के कथा-साहित्य को बाँधकर रखते हैं। जीवन्त और रसग्राही बनाते हैं, उनकी प्राणवत्ता के कारण हैं।

यूँ तो फणीश्वरनाथ रेणु का समग्र कथा-साहित्य लोक-संस्कृति के निर्मल-सरस धारा से आप्लावित है, किन्तु कतिपय उपन्यासों और कहानियों में लोक-संस्कृति के दिग्दर्शन रेणु ने कथा की माँग और परिवेश के सृजन के लिए ही नहीं किया है, बल्कि उसका चित्रण उनका ध्येय-सा लगता है। इन लोक-संस्कृतियों के चित्रण में रेणु रम-से जाते हैं। संस्कृति उनकी लेखनी को बल देती है और लेखनी संस्कृति को अमरता देती दीखती है। अगर गौर से देखें तो रेणु के पात्र संस्कृति के गर्भ से उभरते हुए दिखाई देते हैं। गाँव उनका केन्द्र है और ग्रामीण संस्कृति वर्ण्य तथा उससे उभरते पात्र जीवन के सहज-सरल परिस्थितियों में आते बदलावों

के बावजूद जीवटता से संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

'रेखाएँ वृत्त चक्र' का शिबू भोले-भाले लोक गायक में बुरे बदलाव के लक्षण की बात हो कि 'संवदिया' में हरगोविन संवदिया का चित्रण। दोनों लोक-संस्कृति को उजागर करनेवाली कहानियाँ हैं।

'सिरपंचमी का सगुन' जो 'ठुमरी' में संकलित है, में किसान के अपने खेतों से आत्मीय लगावों को उद्घाटित किया गया है। इस पारम्परिक कृषि-त्योहार के बहाने कथाकार रेणु ने गाँव के भविष्य के प्रति सच्ची चिन्ता व्यक्त की है। 'रसप्रिया' का पंचकौड़ी मृदंगिया 'विदापत नाच' के लिए उचित पात्र की तलाश में है। जो रसपिरिया (रसप्रिया) का सटीक गान कर सके और जब उसकी भेंट मोहना से होती है तो उसकी जैसे साध पूरी हो जाती है। पंचकौड़ी भले ही मृदंग बजाकर माँगकर खाता है, पर है वह सच्चा कलाकार। वह अपनी मंडली का 'मूलगैन' (मूलगायक) भी है और मृदंग भी बजाता है। 'ठुमरी' में संकलित 'ठेस' कहानी का मुख्यपात्र और शीतलपाटी का अद्भुत कलाकार सिरचन को 'चटोर' शब्द झकझोर देता है, कलाकार को ठेस लगी है। वह काम छोड़ देता है, लेकिन उसके अन्दर का कलाकार झिहिर-झिहिर रस में सराबोर है। स्टेशन पर उदास जमींदार की बेटी को प्यार से शीतलपाटी बनाकर पहुँचा जाता है अपनी ओर से। 'तीसरी कसम', 'मैला आँचल', 'लालपान की बेगम' में कई जगहों पर मेला और 'थियेटर कम्पनियों' की चर्चा है। भले ही बदलते परिवेश में पारसी थियेटर कम्पनियों ने भारतीय जन-मानस की रुचियों में बदलाव लाया था, पर उत्तरी बिहार में थियेटरों के प्रति जनरुचि को उजागर करती हैं ये कहानियाँ और उपन्यास। संघर्ष से तपते जीवन में ये सांस्कृतिक मनोरंजन के साधन फुहार का काम करते हैं। 'तीसरी कसम' कहानी में पूरा ताना-बाना ही थियेटर कम्पनियों के वृत्त में है। रेणु की अनेक कहानियाँ और कतिपय उपन्यास लोक-संस्कृति के रेशे से रचे गए हैं, जो समकालीन संदर्भ को भी संचालित और अनुप्राणित करते हैं।

'रसप्रिया' और 'मैला आँचल' में फणीश्वरनाथ रेणु ने मिथिलांचल और 'पूर्णियाँचल' में प्रसिद्ध रह चुकी प्राचीनतम नाच 'विदापत नाच' का कथा में संगुंफन अत्यन्त कलात्मकता के साथ किया है। रेणु 'विदापत' के पवित्र विरासत को बचाकर रखना चाहते थे, साहित्य में उसे पिरोकर अमर कर देना चाहते थे। लोक-संस्कृति के इस अनुपेक्षणीय पक्ष 'विदापत नाच' को बचाने के लिए रेणु ने स्वयं सन् 1960 ई0 में 'विदापत नाच मंडली' का गठन 'औराही हिंगना' अर्थात् अपने गाँव में किया था और इस सरस नाच परम्परा को बचाने का अपने स्तर से भरसक प्रयास भी किया था। आकाशवाणी, पटना द्वारा 'विदापत नाच' की रेकॉर्डिंग भी करवाई थी। हालांकि इससे पूर्व कई 'विदापतनाच मंडलियाँ' सहरसा, सुपौल, पूर्णियाँ, अररिया आदि क्षेत्रों में अभिनय-नाच कर लोगों का मनोरंजन किया करती थीं। नेपाल के 'गनगाई' (गणगायक) समुदाय आज भी कई अवसरों पर नाच करता है। यह नाच आक्रान्ताओं से बचाने के लिए शुरू हुआ था, ऐसा कुछ लोग मानते हैं। हिन्दी साहित्य के प्रख्यात नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर ने बिहार के पूर्णियाँ जिले में 'विदापत नाच' नाम से एक आँचलिक नाटक की परम्परा की बात स्वीकार की है और बताया है कि नाच में मध्ययुगीन मिथिला के 'किर्तनियाँ' नाटक तथा असम के 'अंकिया नाच' दोनों की झलक इसकी शैली पर स्पष्ट दिखाई देती है। विदापत नाच मंडलियों में प्रायः किसान-मजदूर होते हैं, जो अधिकतर हरिजन-वर्ग के होते हैं। जिस स्थान पर पात्र शृंगार और साज-सज्जा करते हैं उसे 'साजघर' और मुख्यगायक को 'मूलगैन' 'मूलगाईन' और साथी गायकों को 'समाजी' कहते हैं। 'विकटा' (विदूषक) सूत्रधार और हास्य उत्पादक होता है। यह मुक्ताकाशीय नाच विधा है। 8 से 15 तक इस मंडली में सदस्य होते हैं। 'भगवती', 'सरस्वती' अथवा 'गणेश वंदना' से इस नाच का आरंभ होता है। गीतात्मक अभिव्यक्ति इसकी मूल पहचान है। इसमें वाद्ययंत्रों में ढोल, मृदंग और झाल-मंजीरे का प्रमुखतः प्रयोग होता है। पात्र मुखौटा और घूँघट का इस्तेमाल अपनी विकृत-असुन्दर चेहरे को छुपाने के लिए करता है। 'जमीनिका' वाद्ययंत्रों में संगति बिठाने हेतु होती है, पर यह दर्शक को जुटाने का काम भी करती है। फणीश्वरनाथ रेणु ने 'विदापत नाच' पर एक रिपोर्ताज भी लिखा था, जिसके द्वारा क्लासिक रिपोर्ताज के प्रतिमान स्थापित हुए।

'विदापत नाच' में 'रसप्रिया' के गायन के प्रसंग में फणीश्वरनाथ रेणु स्वयं 'रसप्रिया' कहानी में लिखते हैं- ''विदापत नाचनेवाले रसप्रिया गाते थे। सहरसा के जोगेन्द्र झा ने एक बार विद्यापति के बारह पदों की एक पुस्तिका छपाई थी। मेले में खूब बिक्री हुई थी रसप्रिया पोथी की। विदापत नाचनेवालों ने गा-गाकर जनप्रिया बना दिया था रसप्रिया को।'' 'किर्तनियाँ' और 'अंकिया' नाच शैली की तरह 'विदापत नाच' भी प्रेम और भक्ति की निष्ठा लेकर तो शुरू हुई, पर वह 'खराब' नाच शैली बन गई। 'मैला आँचल' उपन्यास में 15वें परिच्छेद में रेणु ने 'विदापत नाच' की पूरी चर्चा की है और हास्य-व्यंग्यपूर्ण उसके संवादों की अद्भुत सर्जना भी की है। 'मैला आँचल' उपन्यास का नायक डागदर बाबू 'विदापत नाच' देखेंगे। ''इसकी जानकारी पासवान टोली के लिबड़ू पासवान को दे दी गई है। लिबड़ू नाच का 'मूलगैन है। 'मूलगैन' अर्थात् म्यूजिक डायरेक्टर।'' इस पर बलदेव की

टिप्पणी से 'विदापत नाच' के ह्रास और होती जा रही दुर्दशा का पता चलता है-''बलदेवजी को डागडर बाबू की बुद्धि पर अचरज होती है-विदापत नाच क्या देखेंगे? बड़ा खराब नाच है। कोई भला आदमी नहीं देखता। खराब-खराब गीत गाता है। नाच ही देखने का मन था तो तहसीलदार साहब से कहकर सिमरबनी गाँव की ठेठर कम्पनी को बुला लेते।'' फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने प्रसिद्ध रिपोर्ताज 'विदापत नाच' में समाज में उत्पन्न हो आयी विकृति दर्शायी है। इसी जमीन को उकेरा है ''विदापत नाच' निम्नस्तर के लोगों की ही चीज रह गई है। तथाकथित भद्र समाज के लोग इस नाच को देखने में अपनी हेठी समझते हैं लेकिन मुसहर, धाँगड़, दुसाध के यहाँ विवाह, मुंडन तथा अन्य अवसरों पर इसकी धूम मची रहती है।''

'मैला आँचल' में 'विदापत नाच' के आरंभ से लेकर अन्त तक के हास्य-व्यंग्य मिश्रित संवादों की सर्जना रेणु ने की है। हास्य-व्यंग्य से शुरू होकर नाच रसपिरिया (रसप्रिया) के सरस गीतों तक और कबीरहा शैली में अपने व्यंग्य तक संचरण करती है।

इस प्रकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' के कथा-साहित्य में लोक-संस्कृति और 'विदापत नाच' का उल्लेख ही नहीं उसकी रसमयता और सौन्दर्य का दिग्दर्शन भी होता है। रेणु लोक-संस्कृति के अद्‌भुत चितेरे हैं। आज भी लोक संस्कृति के इन शाश्वत मानव-मूल्यों की महती आवश्यकता है। लोक और अपनी संस्कृति से विच्छिन्न मनुष्य भटकाव की स्थिति में होता है। अतः संवेदना, लोक संस्कृति और लोकजीवन जैसे तत्त्वों की प्रासंगिकता का निहितार्थ है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु : सृजन और चिंतन

डॉ. महेश प्रसाद सिन्हा
(प्रधानाचार्य, सी.एम.जे. कॉलेज, दोनवारीहाट, खुटौना)

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु का सृजन पिछड़े समाज और मूक जनता की आवाज है। 'मैला आँचल' का मेरीगंज या 'परती परिकथा' का परानपुर इन प्रतिनिधि ग्रामांचलों के माध्यम से रेणु ने समग्र भारत के ग्रामांचलों का नक्शा, उसकी स्थिति-परिस्थिति, गति और दुर्गति का जायजा पेश किया है। 'मेरीगंज' और 'परानपुर' का हुलिया जैसा था, समस्त भारत के किसानों एवं जनसाधारण का हुलिया कमोबेश वैसा ही था। भारत की आजादी के बाद भी लोग मूलभूत सुविधाओं को पाने के लिए तरसते रहे। जैसे, आजादी बेमानी होकर हजारों बरसों की गुलामी से भी बदतर हो गयी हो। प्रकृति भी किसान-मजदूरों का साथ नहीं दे रही थी। इसलिए रेणु का सृजन भारतीय ग्रामांचल की मूलभूत सुविधाओं के अभाव की अकथ कथा के साथ प्रकृति के कोप की त्रासदी और जीवन की भयावहता को भी उजागर करती है। सत्ता-व्यवस्था की विसंगतियों, प्राकृतिक त्रासदी, और जीवन में मूलभूत सुविधाओं शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार से वंचित पीड़ित समाज की पीड़ा की ध्वनि-प्रतिध्वनि रेणु के सृजन में सुनायी पड़ती है। उनकी वैश्विक भूमिका थी। उन्होंने नेपाली जनता की गुलामी से मुक्ति के लिए भी संघर्ष किया और भारत की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था कायम करने के लिए भी जनमत तैयार किया। फणीश्वरनाथ रेणु प्रेमचंद के बाद सर्वाधिक ख्याति पाने वाले कथाकार हैं। रेणु का साहित्य सृजन आंचलिक समाज के यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति है। उनका सृजन उनके चिंतन के अनुरूप है। उनके अनुसार अशिक्षा, अज्ञानता और अंधविश्वास मनुष्य और सामाजिक जीवन तथा राजनीतिक पिछड़ेपन का केन्द्रबिन्दु है। इसी से उन्होंने सामाजिक जीवन के पिछड़ेपन और सभी तरह की गुलामी के खिलाफ अपनी रचनाओं में प्रतिरोधी एवं क्रांतिकारी चेतना को प्रतिध्वनित किया है। बुनियादी सुविधाओं से वंचित पूर्णिया जिले का 'मेरीगंज' हो या 'परानपुर' या संपूर्ण भारत के गाँवों की व्यवस्था, सभी जगह शिक्षा, ज्ञान, चिकित्सा और राजनीतिक चेतना का घोर अभाव था। सन् 1945 तक पूर्णिया जिले में एक भी कॉलेज नहीं था। अस्पताल में नियुक्त होने वाले डॉ. अपने को काला पानी का सजायाफ्ता मानते थे। यही हाल और हालात पूरे देश के गाँवों के थे। अंचल- विशेष के लोकरंग के उत्कर्ष और लोकभाषा की अभिव्यक्ति से रेणु ने जिस आंचलिक समाज, जीवन और संस्कृति के यथार्थ को अभिव्यक्त किया, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनूठा है।

रेणु मूलतः आंचलिकता के लिए ही जाने जाते हैं। इतिहास उन्हें इसी रूप में देखता-परखता रहा है। ग्रामांचल के संपूर्ण

जीवन और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्त स्थितियाँ तथा रहन-सहन, बोल-चाल, वेश-भूषा, अंधविश्वास, जातिवाद, भौगोलिक परिवेश, लोक-संस्कृति आदि की परत-दर-परत यहाँ खुलती हुई दिखलायी पड़ती है। भाषा संघटन और शिल्प संयोजन भी उनके साहित्य में लोक-चेतना तथा परंपरा के गंध के अनुरूप ली हुई है। भाषा-शिल्प का संयोजन केवल शब्दों के चयन तक सीमित नहीं है, वह कथ्य के अनुरूप जीवन-दृष्टि को भी परिभाषित करती चलती है। शील-स्वभाव, रंग-रूप, आचार-विचार, बोली और व्यवहार तक को बखूबी समन्वित करती है। मनुष्य से परे पशु-पक्षियों तक की इच्छा-आकांक्षा, व्यथा, हर्ष-उल्लास को अभिव्यंजित करती है। सब कुछ उनके विचार-चिन्तन के अनुरूप मूर्त और साकार होती है। इसलिए रेणु का सृजन उनके चिंतन के साथ और चिंतन उनके सृजन के साथ लिपट कर लोकचेतना की संवेदना प्रवाहित करता है। रेणु की सृजन-प्रक्रिया मानवीय मूल्यों और जीवन दृष्टि के साथ नये विचार, उपाय या कान्सेप्ट को जन्म देती है। रेणु के समय में आंचलिकता का अर्थ और मर्म भी बदल जाता है। पूर्व में आंचलिकता के उदय की आरंभिक स्थिति जिसमें शिवपूजन सहाय का हास्य उपन्यास (देहाती दुनिया, 1926), वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक आँचलिक उपन्यासों (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, अमरबेल, कचनार आदि), आँचलिकता से युक्त सामाजिक सांस्कृतिक उपन्यास (निराला का 'बिल्लेसुर बकरिहा'), अमृतलाल नागर का 'सेठ बांकेलाल' आदि से रेणु की आँचलिकता भिन्न है। रेणु आँचलिकता के सही मायने और मर्म को अभिव्यक्त करने वाले कथाकार हैं। उनके मुख्य उपन्यास हैं- 'मैला आँचल' (1954), 'परती परिकथा' (1957), 'दीर्घतपा' (1963), 'जुलूस' (1965), 'कितने चौराहे' (1966), 'पल्टू बाबू रोड' (1979) आदि। कहानियों में 'ठुमरी', 'आदिम रात्रि की महक', 'अग्निखोर', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि संग्रह मुख्य हैं। इनके अलावे अन्य चर्चित आंचलिक रचनाओं में देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र' (1955), नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952), 'बाबा बटेसरनाथ'; शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' का उपन्यास 'बहती गंगा' (1952); अमृतलाल नागर का उपन्यास 'बूँद और समुद्र' (1956); रांगेय राघव का सर्वकालिक क्लासिक उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' (1957) आदि आजादी के बाद की गणतंत्रात्मक स्थिति की सहमति-असहमति से जुड़े हुए उपन्यास हैं।

■

बदलते हुए ग्रामीण जीवन-मूल्यों के कथाकार : फणीश्वरनाथ 'रेणु' (संदर्भ- उपन्यास-साहित्य)

डॉ0 तीर्थनाथ मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा

फणीश्वरनाथ 'रेणु' स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन के सफल चितेरे हैं। रेणु की विरल विशेषता यह रही है कि उन्होंने अपने कथा-साहित्य में टूटे हुए भारतीय ग्रामीण जीवन के आभ्यन्तरिक संगीत को सहेजने का सार्थक प्रयास किया है और टूटे हुए गाँवों एवं टूटे हुए लोगों की टूटी हुई जिन्दगी में एक अज्ञात किन्तु अनवरत, अप्रतिहत प्रवहमान लय की खोज करने की भी सफल चेष्टा की है। चतुर्मुखी क्षरण से टूट कर ये गाँव मर नहीं गये हैं। क्यों नहीं मर गये हैं, इसकी पड़ताल 'रेणु' के उपन्यासों के माध्यम से की जा सकती है।

'रेणु' से पहले हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद का प्रादुर्भाव हो चुका था। ग्रामीण जीवन-मूल्यों के बदलाव से प्रेमचंद का साहित्य भी पूर्णतः प्रभावित है। ग्रामीण-जीवन की दुर्दशा एवं टूटते जीवन मूल्यों को प्रेमचंद ने 'गोदान' में उसकी सम्पूर्णता एवं विराटता के साथ उकेरा है। प्रेमचन्द ग्रामीण-संवेदना के महान् कथा-गायक रहे हैं। प्रेमचन्द का व्यक्तित्व जिस प्रकार ग्राममय रहा है- वैसा ही ग्राममय व्यक्तित्व 'रेणु' जी का भी रहा है, पर दोनों में एक अन्तर साफ द्रष्टव्य है और वह है प्रेमचन्द का बाहर जितना ग्राममय था, भीतर उतना न था। ठीक इसके विपरीत 'रेणु' जी बाहर से नागर और सम्भ्रांत दीखते थे, किन्तु उनका अन्तर शुद्ध ग्रामीण था। व्यक्तित्व का यही अन्तर दोनों कथाकार को भी पृथक् करता है। प्रेमचन्द ने सामंती-व्यवस्था के नीचे दबकर भारतीय गाँवों को तार-तार बिखरते देखा था। उन्होंने इसी करुण-वेदना के एक-एक बूँद को निचोर कर 'गोदान' की ट्रेजडी का निमार्ण किया था। वहाँ उन्होंने यह दिखलाने की सफल चेष्टा की थी कि किस प्रकार सामंती-व्यवस्था से उजड़ते-टूटते पुर्जों का स्थान नया पूँजीवाद लेता जा रहा था। 'रेणु' के उपन्यासों की शुरुआत वहीं से होती है, जहाँ से प्रेमचन्द के उपन्यास का अन्त होता है। 'रेणु'

उस विन्दु से खड़े होकर देख रहे हैं जहाँ से सारा भारतीय ग्रामीण-जीवन बेमानी लगता है। बदलते हुए अर्थशास्त्र ने जीवन-मूल्यों को बदल दिया है। रेणु इन्हीं बदलते जीवन मूल्यों के कथाकार हैं।

'रेणु' ने अपने उपन्यासों में भारत के उखड़े हुए समाज के उखड़े हुए लोगों की कथा लिखी है। 'रेणु' के संस्कारों में पूर्णिया के गाँवों की आँचलिक गंध रची-पची थी और वे इस क्षेत्र के लोक-जीवन के गहरे पारखी भी थे। वहाँ के लोगों के रहन-सहन, स्वभाव, लोक-संस्कार, विचार, मनोविज्ञान और रूढ़ियों एवं विश्वासों से परिचित थे। इस परिचय के साथ वे समाज के आन्तरिक स्वरूप और बाहरी उतार-चढ़ाव दोनों को समझते थे। वे परती की परिकथा से ही नहीं, उसकी व्यथा से भी अवगत थे। बदलते समाज के साथ उसके बदलते जीवन-मूल्यों को उन्होंने नजदीक से देखा-परखा था।

'रेणु' के उपन्यास 'मैला आँचल' एवं 'परती परिकथा' में 1945 के स्वतंत्रता-संग्राम से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति तक के भारत का ग्रामीण चित्रण प्राप्त होता है। दोनों उपन्यास एक-दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों की व्यापक संवेदना ही संपूर्ण रेणु-साहित्य में समाहित है। आजादी के पूर्व जनता में यह विश्वास दृढ़ था कि गुलामी ही उनके दुख एवं उत्पीड़न का मुख्य कारण है। यदि हमें स्वराज्य मिल जाए तो सुराज ही होगा- हम सभी के लिए। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्त होने के तुरन्त बाद ही उनका मोह भंग होता गया। देश को विकास की ओर अग्रसर करनेवाले नेता और सामाजिक कार्यकर्ता कमजोर पड़ने लगे। पुलिस अत्याचार, सामन्तों का शोषण, जातिवाद, दलगत राजनीति के परस्पर विद्वेषी चरित्र उभरने लगे और इसका समापन गाँधी की हत्या के रूप में हुआ। 'रेणु' के क्रान्तिदर्शी कथाकार ने 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में देश में उभर रहे चारित्रिक संकट और मानवीय मूल्यों के कुचले जाने का जो दृश्य देखा था, वह आज प्रचण्ड रूप में पूरे देश में विद्यमान है। 'मैला आँचल' में कमला को अवैध सन्तान देने पर भी ग्रामीण कुलीन परिवार में डाक्टर प्रशान्त को जमाई के रूप में स्वीकार करना- बदलते हुए ग्रामीण जीवन-मूल्य का अन्यतम उदाहरण है। उसी प्रकार 'परती परिकथा' में कोशी अंचल की समग्र जीवन गति को उद्घाटित करते हुए बदलते हुए ग्रामीण जीवन-मूल्यों को उजागर किया गया है। 'दीर्घतपा' उपन्यास में नारी-जीवन के यथार्थ चित्र को उजागर करते हुए ग्रामीण परिवेश में बदलते जीवन-मूल्यों की स्वीकारोक्ति प्रदर्शित है। नारी अब घर की चाहरदीवारी में बन्द होकर केवल बच्चे पैदा करनेवाली मशीन नहीं कहलाना चाहती, अपितु वह भी अपने हृदय में उठनेवाली अभिलाषाओं और इच्छाओं को सच्चे रूप में प्रस्तुत करना चाहती है।

जिस प्रकार 'मैला आँचल' मेरीगंज की कथा कहता है, उसी प्रकार रेणु का उपन्यास 'जुलूस' गोड़ियर गाँव की कहानी सुनाता है। यह भारतीय जीवन को एक अर्थहीन जुलूस के रूप में प्रस्तुत करता है। ''यह जुलूस कहाँ जा रहा है, क्या चाहते हैं. .....। इस कोलाहल में अपने मुँह से निकला हुआ नारा मुझे सुनाई नहीं पड़ता। चारों ओर एक बवंडर मंडरा रहा है, धूल का।'' ('जुलूस' की भूमिका में) बदलते हुए अर्थशास्त्र ने किस प्रकार जीवन-मूल्यों को बदल दिया है- इसके जीवन्त उपन्यासकार हैं 'रेणुजी'।

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में लोक-संस्कृति

डॉ. कैलाशनाथ मिश्र

सहायक प्राध्यापक(वरिष्ठ) , हिन्दी-विभाग, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा

'फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिन्दी साहित्य के बड़े उपन्यास-शिल्पी थे। उन्होंने अपनी चित्र-कुशल लेखनी द्वारा इतिहास के असुन्दर यथार्थ को अपने कथा-साहित्य में अंकित कर उसे सर्वाङ्गसुन्दर काल्पनिक सत्य बना दिया। उनके कथा-चित्र इतिहास की तरह ग्लानि नहीं भरते, अपितु पाठकों के मन को आनन्द से आप्लावित कर देते हैं। नेपाल की तराइयों में राजनीति का अलख जगाकर, स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रहकर भी 'रेणुजी' की मूल चेतना कथाकार की चेतना ही रही। उनकी स्थूल दृष्टि पहाड़ों, तराइयों, उपत्यकाओं, जंगलों में भले ही भटकती रही, लेकिन उनकी मानसिक दृष्टि गाँवों की आभा में, जन-जन के स्पन्दन में घुली-मिली रही। उन्होंने आस्था एवं ध्रुव मूल्यों को साथ लेकर अपनी लेखकीय यात्रा प्रारम्भ की थी और यही कारण रहा है कि उनका कथा-साहित्य निरन्तर गतिशील बना रहा। उन्होंने तलस्पर्शिनी दृष्टि से आँचलिक ग्रामीण-जीवन के गम्भीर सत्यों, मूल्यों

एवं आदर्शों का अनुसंधान किया और अपनी सहज सरलता से सबके बीच उसे लाकर रख दिया। रेणुजी ने अपने वक्तव्यों द्वारा मानव-संस्कृति के विकास की वकालत की है।

'रेणुजी' मुख्यतः आँचलिक उपन्यासकार के रूप में परिगणित होते हैं। उनके उपन्यास 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'जुलूस', 'पल्टूबाबू रोड' आदि इसी श्रेणी के उपन्यास हैं। लोक-संस्कृति आँचलिक उपन्यास-लेखन का एक महत्वपूर्ण प्रदेय हैं। मनीषियों का यह मत रहा है कि प्राचीन परम्पराओं और सांस्कृतिक मान्यताओं की रक्षा का प्रश्न अत्यन्त गम्भीरता एवं जटिलता के साथ युग के सामने उपस्थित है। इसीलिए आंचलिक उपन्यास-लेखक प्रदेश-विशेष के रीति-रिवाज, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार, तीर्थ-मेले, लोक-नृत्य, लोकगीत, परम्परागत मान्यताएँ, विभिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ, किस्से-कहानियाँ, कला, बोली-बानी लोकोक्तियाँ, मुहावरे आदि पर पर्याप्त आलोक प्रक्षेपित कर रहे हैं।

'रेणु' जी के 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' एवं 'जुलूस' का कथांचल पूर्णिया रहा है। रेणुजी ने पूर्णिया जिला के मेरीगंज गाँव को कथा का केन्द्र बनाकर नेपाल, बंगाल, संथालपरगना और मिथिला आदि की सांस्कृतिक विशेषताओं को उभारने का भगीरथ प्रयास किया है। सन् 1942 के बाद सन् 1948 तक उस गाँव की स्थिति, संगठन, बोलचाल, रहन-सहन, व्यक्ति के मनोविकास के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आंदोलनों को ग्रहण करने की उस अंचल की प्रक्रियाओं के संकलित शब्दचित्रों का मान ही मैला आंचल है। उसी प्रकार 'परती परिकथा' में परानपुर गाँव के लोकजीवन में फैले ईर्ष्या भाव, स्वार्थ, अंधविश्वास, जादू-टोना, जात-पाँत, कुण्ठा और ग्रन्थियों को उजागर किया गया है। 'जुलूस' में पूर्णिया जिले के एक नये बसे हुए गाँव नबीनगर और गोड़ीयर गाँव-इन दो कथांचलों की लोक-संस्कृति का चित्रण सहज ही द्रष्टव्य है।

■

रेणु की कहानियों के नारी पात्र : एक आकलन

रश्मि शर्मा

सहायक प्राचार्य (हिन्दी विभाग), स्वर्गीय विश्वनाथ सिंह शर्मा महाविद्यालय, बेगूसराय, बिहार

स्त्री हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। परिवार की धुरी स्त्री ही होती है। साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्य समाज से पृथक होकर अपने अस्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता है। साहित्य में स्त्री के विभिन्न पहलुओं को विभिन्न रचनाकारों ने दर्शाया है। महान कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु ने भी अपने कथा साहित्य में स्त्री के विविध आयामों को अंकित किया है। रेणु ने अपनी कहानियों में ग्रामीण और कस्बाई समाज में रहनेवाली स्त्रियों की मनोदशा का सूक्ष्म अंकन किया है। आजादी के बाद की लिखी गई कहानियाँ उस समय की महिलाओं की स्थिति को दर्शाती हैं। अब जबकि हम रेणु की जन्मशती वर्ष मना रहें हैं, तब यह आवश्यक जान पड़ता है कि इनकी रचनाओं के स्त्री पात्रों का पुनर्मूल्यांकन हो। आज भी हम अपने आस-पास के गाँवो, कस्बों में रहनेवाली महिलाओं को देखें तो कहीं न कहीं उनके स्त्री-पात्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं। वह 'तीसरी कसम' की 'हीराबाई' हो या 'लाल पान की बेगम' की 'बिरजू की माँ', 'विघटन के क्षण' की 'विजया' और 'चुरमुनिया' हो या 'भित्तिचित्र की मयूरी' की 'फूलपतिया और उसकी माँ'। इन नारी पात्रों को अगर देखें तो इनके चरित्र में दृढ़ता दिखाई देती है। इन्हें अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति से प्रेम है। इनके अधिकांश स्त्री पात्र अनपढ़ हैं या कम पढ़े लिखे हैं, लेकिन व्यावहारिक रूप से परिपक्व हैं, इनमें कोमलता, बुद्धिमत्ता, माधुर्य इत्यादि स्त्री सुलभ गुण भरे पड़े हैं। यही कारण है कि उनकी सूझ-बूझ, उनका व्यवहार उन्हें एक आदर्श नारी-चरित्र बनाता है। अपनी स्त्री-पात्रों को रेणु ने मानवीय गुण-दोषों के साथ उजागर किया है। इसलिए जब इनका दलन होता है तो इसके विरुद्ध वो आवाज उठाना भी जानती हैं। 'रतनी' इसका एक सुन्दर उदाहरण है। एक और महत्त्वपूर्ण बात है, इन्होंने अपने स्त्री पात्रों को कहीं भी 'देवी' के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया है।

सामान्य दृष्टिकोण से ये सारे पात्र यथार्थवादी हो सकते हैं, लेकिन यथास्थिति से ओतप्रोत इनमें जीवंत जीवन की जिजीविषा दिखाई देती है। परिस्थितियों से हारना इनके स्त्री-पात्रों ने नहीं सीखा है। वे संघर्ष करती हैं और अपने लक्ष्य को प्राप्त करती हैं।

■

कस्बाई जीवन के यथार्थ को उकेरता 'कितने चौराहे'

डॉ. पूनम कुमारी
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
(बाघा, वार्ड नं0-24, पो0-सुहृदनगर, बेगूसराय-851218)

सन् 1966 ई. में प्रकाशित 'कितने चौराहे' फणीश्वरनाथ रेणु की पाँचवीं औपन्यासिक कृति है जिसमें 'कस्बाई' जीवन के यथार्थ की प्रभावी अभिव्यक्ति है। 'कितने चौराहे' के केन्द्र में अररिया कोर्ट कस्बा है। इसमें सन् 1933-34 से लेकर सन् 1965 तक की भारतीय राजनीति जीवन्त है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत है कि इसमें चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। दूसरी विशिष्टता है कि इसमें 10 से 20 वर्षों तक की उम्र के मनमोहन, प्रियोदा, सूर्यनारायण, कृत्यानंद, भोला, अशर्फी, इस्माइल, शिवनाथ आदि बालकों-विद्यार्थियों-स्कूली बच्चों की राष्ट्रीयता, निर्भयता तथा हिम्मत को, स्वाधीनता आन्दोलन में उनके योगदान को लिपिबद्ध किया गया है। निश्चय ही यह हिन्दी उपन्यास साहित्य को रेणु की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। संभवतः किशोरवय एवं नवयुवा वर्ग को केन्द्रित कर हिन्दी उपन्यास का सृजन नहीं हुआ।

वस्तुतः यह औपन्यासिक कृति रेणु जी के छात्र-जीवन की राजनीति की सत्यता को उद्‌घाटित करती है। चित्रात्मक शैली द्वारा पाठकों में उत्तेजना, आक्रोश और स्वाधीनता के दीवाने छात्रों के प्रति सहानुभूति तथा करुणा उत्पन्न करने में पूर्णतः समर्थ है।

'कितने चौराहे' के शीर्षक की सार्थकता समसामयिक छात्र और राजनीति के संदर्भ में है कि छात्र को सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिए या जीवन के किसी भी चौराहे पर न रुकते हुए अपनी पढ़ाई खतम करके आन्दोलन में भाग लेना चाहिए या अंग्रेजों द्वारा संचालित स्कूलों की पढ़ाई निरर्थक है, व्यर्थ है, अतः छात्रों को शिक्षा छोड़कर आन्दोलन में भाग लेना चाहिए- यह 'कितने चौराहे' में स्पष्टतः लक्षित है।

समीक्ष्य उपन्यास में एक स्थल पर मनमोहन से तिवारी जी कहते हैं- आप लोग पढ़-लिखकर क्या कीजिएगा? छोड़िए इस्कूल-फिस्कूल। दूसरी ओर बड़े महाराज मनमोहन से बार-बार यही कहते हैं कि इस आयु में राजनीति से दूर रहना ही योग्य है- कभी 'झोंक' में आकर तुम भी पढ़ना-लिखना मत छोड़ बैठना। अभी सीधे बढ़ चलो। राह में छाँव में कहीं बैठना नहीं है। कितने चौराहे आएँगे। न दाँये मुड़ना, न बाएँ-सीधे चलते जाना। इस तरह दो विचारधाराओं के आपसी संघर्ष को उद्‌घाटित करने के साथ समाधान के तौर पर नायक मनमोहन द्वारा यह निर्णय निर्दिष्ट है कि पहले अध्ययन, फिर राजनीति।

मनमोहन के चरित्र के माध्यम से रेणु जी की ग्रामीण ममता भी मुखरित हुई है। कस्बाई जीवन जीनेवाला मनमोहन जब भी अपने गाँव सिमरबनी आता है तो उसे लगता है- "गाँव के खेत-मैदान, बाग-बगान-सभी उससे सवाल करते हैं।"

चने के खेतों और शकरकंद -मिसरीकंद की बगिया से कोई इशारा करता है- यहाँ आओ! गाँव आते ही लगता है-माया, ममता, मोह, स्नेह, प्यार, दुलार लेकर धरती-माँ दौड़ी आती है और उसे छाती से लगा लेती है। मनमोहन कई दिनों तक बेसुध पड़ा रहा है। वस्तुतः मिट्टी से जुड़े कलाकार रेणु के पात्र भी धरती के साथ आत्मिक रूप से सम्पृक्त पूर्णतः जीवन्त हैं।

■

कथाकार रेणु की सामाजिक चेतना

डॉ. श्रवसुमी कुमारी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, जी.डी. कॉलेज, बेगूसराय

साहित्य समाज का दर्पण है और सहित्यकार अपनी समाजगत परिस्थितियों की उपज। अतीत साहित्यकार को अनुभव प्रदान करता है, भविष्य उसमें आशा का संचार कर उसे प्रगतिशील बना देता है, परंतु युग साहित्यकार का निर्माण करता है। साहित्यकार युग-चेतना से प्रभावित रहता है। उसकी रचना युग की परिस्थितियों से प्रभावित रहती है। अपने युग के प्रति जागरूक कलाकार ही अपने युग-समाज का सच्चा प्रतिनिधि होता है। साहित्यकार मूलतः एक सामाजिक प्राणी होता है और यह साहित्य

का सर्जक होता है और प्रेरक भी।

हिंदी साहित्य को लोकरंगों में रंगने वाले और उसके दामन को ग्रामीण संस्कृति की गंध से दमकाने वाले हिंदी साहित्य में आंचलिकता के जनक फणीश्वरनाथ रेणु अपने युग के वैसे ही एक जागरूक कलाकार थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में समाज की असमानता, असंगतियाँ, सामाजिक-राजनीतिक चेतना, देशज माटी से जुड़े जन-सवाल, जन संस्कृति और जन-आन्दोलनों को जीवंत कर दिया। रेणु के उपन्यासों की बात करें तो उसकी ग्राम्य भूमि वही है जो प्रेमचंद की थी किन्तु उनके किसान, जमींदार, ग्रामवासी सामान्य, जनसाधारण एक नितांत भिन्न अनुभव परिवेश में जीते-जागते प्राणी जान पड़ते हैं। यह वह भारत है जिसमें स्वतंत्रता संग्राम के सांस्कृतिक मूल्य, समाजवादी आदर्श और बदलती हुई ग्राम्य-व्यवस्था से अपनी मानसिक उथल-पुथल एक ऐसे मानचित्र पर संघर्षरत दिखाई देते हैं, जो संक्रांतिकाल का भारत है।

रेणु की कहानियों के बारे में भी यही माना जाता है कि अगर किसी आंचलिक कथाकार में सचमुच स्पंदित जीवन रेखा है तो वह केवल रेणु जी की कहानियों में है। रेणु के गाँव में कई पढ़े-लिखे राजनैतिक चेतना सम्पन्न लोग भी रहते हैं और रेणु का आशावान मन शैक्षणिक प्रगति से गाँव की सामूहिक प्रगति का सपना भी देखता है। प्रेमचंद के पश्चात् फणीश्वरनाथ रेणु अकेले एक ऐसे समर्थ कथाकार हैं; जिन्होंने अंचल-विशेष की संवेदनाओं का इतना विराट यथार्थ चित्रित किया है। इनकी 'भाषिक त्वरा' तथा गति का परिणाम है कि इनकी समस्त कहानियों में पात्रों की संवेदना भारत माता के धूलि-धूसरित आंचल की निर्मल प्रतिकृति बन गई है। यहाँ एक की वेदना अनेक की वेदना के साथ साधारणीकृत हो गई है। रेणु गाँव को मानवीय दृष्टि से देखते हैं। वे क्रांति या बदलाव का मार्ग प्रशस्त करने, जन आंदोलनों को मशाल दिखाने वाले पथ-प्रदर्शक बुद्धिजीवी थे।

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में चित्रित नारी

डॉ. मीना कुमारी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जे.एम.डी.पी.एल. महिला कॉलेज, मधुबनी

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में पूर्णिया जिले के जनपद का मुख्य रूप से चित्रण हुआ है। रेणुजी के उपन्यासों में अवतीर्ण ये पात्र लेखक के निर्माण - कौशल का अविस्मरणीय उदाहरण बन जाते हैं।

रेणु के उपन्यासों - 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', 'जुलूस', 'दीर्घतपा' और 'पल्टूबाबू रोड' के नारी-पात्रों का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इन सभी पात्रों की अपनी मौलिकता है, अपना अस्तित्व है और अपनी वैयक्तिकता है। 'रेणु' के अधिकांश नारी-पत्रों के चरित्र का मूल स्वर प्रेम रहा है- गहरा, ऊँचा और उदात्त प्रेम। इन नारी चरित्रों ने अपने नायक के जीवन की शुष्क, अस्तव्यस्त और बिखरी राहों को सँवारा है, नदी की तरह पाटा है और ''सम्भवतः कोई परती धरती नहीं छोड़ी है। उनका नायक अपने बड़े आदर्शों की ओर बढ़ता हुआ बीच में ही कहीं अवरुद्ध न हो जाय अथवा किसी 'मैले आंचल' के दर्द का इतना विस्तार नहीं होने दिया है कि नायक नपुंसक अथवा कापुरुष हो जाय। इनमें नायक के पौरुष का श्रेय तो है ही, पर नायिका के धैर्य और प्रेमिक साहस का श्रेय भी उतना ही है।''

'मैला आँचल' की नायिका कमली का जो रूप उपन्यास में मुख्यतः उभारा गया है वह है उसका प्रेमिका रूप। वह भारतीय नारी का चरित्र ही जीती है। उसके जीवन की विद्रूपताएँ उसे कई प्रकार की मानसिक परेशानियाँ देती हैं। पर डॉ. प्रशान्त के जीवन में आने पर उसके जीवन का नया अध्याय खुलता है। ग्राम्यबाला होकर भी 'रेणु' की यह कमली अशिक्षा का अँधेरा नहीं ढ़ोती है, बल्कि बचपन से पिता के साहचर्य में रामायण, महाभारत जैसे महान् ग्रन्थों से जीवन और व्यक्तित्व-निर्माण के प्रकाश ग्रहण करती है तथा अपने चरित्र का आदर्श निर्धारित करती है। 'रेणु' की यह नारी कहीं किसी कुंठा, संत्रास और जीवन की विषमताओं का शिकार नहीं होती, न कहीं टूटती है, बल्कि नारीत्व का सम्पूर्ण गौरव ही प्रदर्शित करती है। उसी प्रकार इसी उपन्यास की लक्ष्मी दासिन का चरित्र भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लक्ष्मी यहाँ उन नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो भ्रष्ट समाज की भ्रष्ट मान्यताओं, गलत आदर्शों और भ्रष्ट, खूंखार नर पिशाचों द्वारा किये गए यौन अत्याचारों की शिकार बनी है और अपने शरीर पर के निशान से उसका परिचय देती है।

'परती-परिकथा' की नायिका ताजमनी रेणुजी की अविस्मरणीय नारी पात्र है। 'खपसूरती' में अद्वितीय 'तजमनियॉ एक तरफ सामन्ती मालकिन की नौकरानी है और दूसरी ओर नायक जितेन्द्र नाथ की प्रेमिका। दोनों चरित्रों का प्रेमपूर्ण और विवेकपूर्ण होकर समन्वय करती ताजमनी पूरी तरह संतुलित है। उसके सम्पूर्ण जीवन में प्रेम ही प्रेम है- ममता ही ममता है और कल्याण ही कल्याण है। 'परती परिकथा' की एक उल्लेखनीय नारी पात्र गीता देवी है। अपने प्रेमी को समर्पित इस नारी ने अपने हृदय की हर दीवार को गिरा दिया है वह रूढ़ मान्यताओं- अंध विश्वासों और किसी खास धर्म की हठवादिता के संकुचित दायरों से पूरे आत्मविश्वास के साथ बाहर आती दिखती है। इसी प्रकार 'पल्टूबाबू रोड' की नायिका भ्रातृपितृहीना बिजली का उदात्त चरित्र उजागर हुआ है जो पूरा कारोबार सँभालती है। 'दीर्घतपा' उपन्यास में दफ्तरों में काम करनेवाली नारियों की जिन्दगी को उभारने का प्रयास किया गया है।

■

आँचलिकता की परिधि को तोड़ती रेणु की कहानियाँ

डॉ. सूर्यप्रताप

हिंदी-विभाग, जीएमआरडी महाविद्यालय, मोहनपुर, समस्तीपुर

रेणु की कहानियाँ अपनी बुनावट या संरचना, स्वभाव या प्रकृति, शिल्प और स्वाद में हिंदी कहानी की परंपरा में एक अलग और नयी पहचान लेकर उपस्थित होती हैं। अंततः एक नयी कथा-धारा का प्रारंभ इनसे होता है। ये कहानियाँ प्रेमचंद की जमीन पर होते हुए भी, जितनी प्रेमचंद की कहानियों से भिन्न हैं उतनी ही अपने समकालीन कथाकारों की कहानियों से। इसीलिए रेणु की कहानियों के सही मूल्यांकन के लिए एक नया सौंदर्य-शास्त्र निर्मित करने की आवश्यकता है। रेणु ने जिन कथाकारों से प्रेरणा ग्रहण की, वे हैं रूसी कथाकार मिखाइल शोलोखोव, बंगला कथाकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय और सतीनाथ भादुड़ी तथा हिंदी के महान कथाकार प्रेमचंद। रेणु की कहानियों पर इन चारों का मिलाजुला प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसीलिए प्रेमचंद द्वारा निर्मित कथा-भूमि को वे ग्रहण करते हैं, पर उसमें शोलोखोव की तरह सांस्कृतिक गरिमा को मंडित करते हैं, सतीनाथ भादुड़ी की तरह शिल्प में नवीनता और आधुनिकता तथा ताराशंकर की तरह स्थानीय रंग को विभूषित करते हैं। इसीलिए प्रेमचंद के द्वारा रेशे-रेशे को उकेरा गया भारतीय ग्राम-समाज ही रेणु की कलम से इतना रससिक्त, प्राणवंत और नये आयाम ग्रहण करता हुआ दिखाई पड़ता है। रेणु हिंदी के पहले कथाकार हैं, जो 'प्राणों में घुले हुए रंग' और 'मन के रंग' को यानी मनुष्य के राग-विराग और प्रेम को, दुख और करुणा को हास, उल्लास और पीड़ा को अपनी कहानियों में एक साथ लेकर 'आत्मा के शिल्पी' के रूप में उपस्थित होते हैं। साथ ही, वे मनुष्य का चित्रण एक ठोस जमीन पर, एक काल विशेष में करते हैं, पर स्थानीयता या भौगोलिक परिवेश और इतिहास की एक कालावधि में सांस लेते हुए पात्र सार्वदेशिक एवं समकालीन जीवन के मर्म को भी उद्घाटित करते हैं। कहा भी गया है कि रेणु का महत्व सिर्फ आंचलिकता में नहीं, अपितु उसके अतिक्रमण में है।

■

रेणु की कहानियों में आंचलिकतावादी संसार का यथार्थ बिम्ब

रवीन्द्र कुमार

सहायक प्राध्यापक हिन्दी शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, ताला, सतना (म0प्र0) मो0नं0:- 7460954438

पताः- शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय ताला (बाजार टोला) तहसील अमरपाटन , जिला सतना (म0प्र0) पिन कोड- 485778

हिन्दी साहित्य में आंचलिकता के जनक फणीश्वरनाथ रेणु देशज दुनिया में बसे देशज समाज के पैराकारों की अग्रणी पंक्ति में रहे। इनकी रचनाओं में देशज समाज की असमानता, असंगतियां, सामाजिक-राजनीतिक चेतना, देशज माटी से जुड़े जन-सवाल, जन संस्कृति और जन-आंदोलन आदि जनभाषा में जीवंत हुए हैं। रेणु का कथा साहित्य स्वतंत्रता के पहले व स्वतंत्रता

के बाद दोनों ही स्थितियों में ग्रामीण समाज का यथार्थ प्रस्तुत करता है। अगर स्वतंत्रता के पहले देश की आजादी की छटपटाहट है तो स्वतंत्रता के बाद व्यवस्था के प्रति मोह भंग की स्थिति भी उनके कथा साहित्य में मिलती है। ये सभी ग्रामीण जीवन की अन्तरात्मा हैं। फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी कथा साहित्य के ऐसे अमरशिल्पी कथाकार हैं, जिन्होंने अपने कथा सहित्य में ग्रामीण समाज के यथार्थ को उद्‌घाटित किया है। रेणु की कहानियाँ अपनी संरचना, स्वभाव या प्रकृति, शिल्प और स्वाद में हिन्दी कहानी की परम्परा में एक अलग और नई पहचान लेकर उपस्थित होती हैं। अन्ततः एक नई कथा धारा का प्रारम्भ इनसे होता है।

'रसप्रिया' कहानी में रेणु ग्रामीण समाज से ओझल होती लोक संस्कृति की परम्परा का चित्रण करते हैं।

'तीर्थोदक' एक ऐसी कहानी है जो ग्रामीण परिवेश में स्त्री जीवन के यथार्थ रूप को प्रकट करती है।

'सिरपंचमी का सगुन' कहानी में रेणु ग्रामीण समाज में निहित व्यक्तियों का चित्रण करते हैं, साथ ही वहाँ से जुड़ी लोक परम्पराओं का चित्रण करते हैं।

'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' रेणु की बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी के माध्यम से रेणु ने ग्रामीण एवं शहरी समाज की आत्मीयता को जोड़ने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त कहानियों की भांति ही रेणु की अन्य कहानियों जैसे पंचलाइट, तीन बिंदिया, ठेस, ठुमरी, आदिमरात्रि की महक इन सभी में यथार्थ की झाँकी मिलती है।

■

'रेणु' : हिन्दी साहित्य का संवदिया

डॉ. पुलकित कुमार मण्डल

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पी.बी.एस. कॉलेज, बाँका, ति.मा.भा.वि.वि., भागलपुर

वर्तमान में ग्रामीण भारत की नब्बे प्रतिशत जनता सामयिक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय गतिविधियों से दूर है। वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं शासकीय उपेक्षा से उत्पन्न समस्याओं को अपनी जन्मजात नियति मान जिंदगी ढोने में ही लगी हुई है। आज आधुनिक संचार-साधकों के होते हुए भी अभावग्रस्त ग्रामीण भारत पर 'नगर देवता', 'भाग्य-विधाता', 'नीति-नियंता', शासक-प्रशासक की दृष्टि नहीं पड़ पाई है, तो 'रेणु-युग' के ग्रामीण भारत की स्थितियों के बारे में पढ़ कर हमारा तन-मन सिहर जाता है।

'रेणु-युग' अर्थात् हिन्दी साहित्य इतिहास में कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु का रचनाकाल जो कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय 1945 ई. से लेकर 1977 ई. तक का है, में रेणुजी ने ग्रामीण भारत के प्रतिनिधि अंचल के रूप में अररिया, पूर्णिया, कटिहार, मुज्जफरपुर, भागलपुर, मुंगेर इत्यादि के ग्रामीण जीवन का वर्णन अपनी कहानियों, उपन्यासों एवं रिपोर्ताजों में एक लेखक के रूप में नहीं, बल्कि भोक्ता और संवदिया के रूप में किया है। 'संवदिया' - पत्रवाहक या समाचार वाहक नहीं, बल्कि केवल 'संवदिया'। रेणुजी ने संवदिया के गुणों को सामान्य नहीं, बल्कि विशिष्ट माना है; क्योंकि जब तक कोई व्यक्ति संबंधित घटना का भोक्ता, और प्रत्यक्षदर्शी नहीं होगा तब तक वह संवदिया नहीं बन सकता।

रेणुजी की रचनाओं यथा-'मैला आँचल','परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'पलटूबाबू रोड', 'कलंक' इत्यादि उपन्यास हों या 'बटबाबा', 'संवदिया', 'ठेस', 'पंचलाइट', 'रसप्रिया', 'लाल पान की बेगम', 'तँबे एकला चलो', 'एक आदिम रात्रि की महक' 'ना जाने केहि वेष में', 'तीसरी कसम' एवं 'अतिथि सत्कार' जैसी कहानियाँ हों या 'डायन कोसी', 'उतरी स्वप्न परी धरती पर' 'तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन' जैसे रिपोर्ताज हों सब में रेणुजी का 'भोक्ता' और 'संवदिया' रूप ही प्रकट होता है। तभी तो इनकी रचनाओं को पढ़कर पाठक उन घटनाओं से तादात्म्य स्थापित कर स्वयं को उस रचना की घटनाओं का एक प्रमुख पात्र मान लेता है।

इस प्रकार रेणुजी अपनी रचनाओं के माध्यम से ग्रामीण समस्याओं, यथा - अशिक्षा निर्धनता, सड़क, बिजली, अस्पताल, विद्यालय के अभाव के साथ-साथ ग्रामीण विशेषताओं यथा - भोलापन, सहयोग, प्रेम, उदारता आदि से भी हमें परिचित कराते हैं और ऐसा केवल एक संवदिया ही कर सकता है। अतः रेणुजी हिन्दी साहित्य के एकमात्र संवदिया के रूप में सिद्ध होते हैं।

■

आँचलिक उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु का स्थान

डॉ. ममता रानी अग्रवाल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, महात्मा गाँधी महाविद्यालय, सुन्दरपुर, दरभंगा

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास के सशक्त हस्ताक्षर फणीश्वरनाथ रेणु जी का आगमन हिन्दी कथा-साहित्य में एक धूमकेतु की तरह हुआ। आँचलिक उपन्यासों में 'रेणु जी' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। आँचलिक उपन्यासों की चर्चा होते ही 'रेणु जी' सर्वप्रथम सामने आ जाते हैं। उनके द्वारा नये-नये अंचलों की तलाश-नये अंचल केवल वस्तु के क्षेत्र में ही नहीं, भाषा और संवेदना की भी, उन्हें अन्य आँचलिक उपन्यासकारों से अलग स्थान दिलाती है।

यों तो हिन्दी साहित्य में आँचलिक उपन्यास की रचना का श्रीगणेश शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' से होता है। इस उपन्यास में लेखक ने भोजपुर क्षेत्र के अँचल-विशेष की संपूर्ण संस्कृति को चित्रित करने का भरपूर प्रयत्न किया है। पर इस उपन्यास की कुछ दुर्बलताएँ भी हैं। आँचलिक उपन्यासों की कुछ प्रवृत्तियाँ होती हैं:- अंचल विशेष की संस्कृति और सभ्यता के प्रति विशेष लगाव, समाज सुधार की भावना, उस क्षेत्र की अच्छाइयों को बचाने की भावना, अँचल विशेष के यथातथ्य सत्य को प्रकाशित कर सार्वभौम सत्य के साथ प्रतिष्ठा की भावना आदि कई ऐसे तथ्य हैं जो आँचलिक उपन्यास के लिए आवश्यक माने जाते हैं। 'देहाती दुनिया' की दुर्बलताओं को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समेटने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में आँचलिक तत्वों की योजना स्पष्ट है, किंतु उन्हें आँचलिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उसमें सार्वभौमत्व का पुट इतना गहरा है कि आँचलिकता दब जाती है। इसलिए कथा सम्राट प्रेमचन्द को आँचलिक उपन्यासकार नहीं माना जाता है। प्रेमचन्द का 'गोदान' हिन्दी साहित्य का महान उपन्यास है, वैसा ही रेणु जी का 'मैला आँचल' हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रेमचन्द और फणीश्वरनाथ रेणु दोनों के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है, लेकिन दोनों के भाव में कुछ असमानता भी है। प्रेमचन्द ग्राम्य-जीवन से सहानुभूति रखते हैं, उनकी समस्याओं का चिंतन भी करते हैं, किंतु उनमें वह आत्मीयता नहीं दिखती जो रेणु जी में स्पष्ट है। वे ग्राम्य-जीवन में गहरे उतर जाते हैं, उनके साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। उनके जीवन की समस्याओं को एक दर्शक की भाँति नहीं, बल्कि एक भोक्ता की हैसियत से जीते हैं।

रेणु जी के उपन्यासों के कथा-शिल्प में अत्यधिक आकर्षण है जो कि पाठक को बाँधकर रखता है। उनकी महान रचना 'मैला आँचल' में दृश्य के परिवर्त्तन या दृश्य-प्रवाह में परिवर्त्तन के लिए प्रगीत-पद्धति में कथाएँ संयोजित कर दी गयी हैं। ये कथाएँ मूल कथा या वर्तमान कथा की पृष्ठभूमि में भावधाराओं का निर्माण करती हैं। कभी एक वातावरण का तो कभी दूसरे, इस प्रकार अतीत और वर्तमान, बाहर और भीतर का योगपदिक संक्रमण कथा में रस और प्रवाह पैदा करता है। घटनाओं में बहता हुआ पाठक अचानक ही रुककर किसी भूली कड़ी से जुड़ जाता है।

रेणु जी के कथा-शिल्प की मूल विशेषता उसकी सरलता और आडम्बरहीन होना ही नहीं, बल्कि उसका सप्राण और जातीय होना है। इस तरह यदि देखा जाय तो रेणु जी कथा के विशिष्ट शिल्पी हैं। उनकी आँचलिकता एकदेशीय तत्व नहीं है, उसमें ग्रामांचलों की समस्त धड़कनें कैद हैं। उनकी रचनाधर्मिता का स्रोत जीवन-बोध में है। यही कारण है कि किसी भी दूसरे समकालीन रचनाकारों की अपेक्षा उनका यथार्थबोध ज्यादा गहरा है। उनकी कल्पना यथार्थ से अनुशासित होती है। ग्राम्य-जीवन से उनकी आत्मीयता उनकी रचनाओं में स्पष्ट है। उनकी उद्दाम जिजीविषा और गहरी मानवीयता उन्हें हिन्दी साहित्य के आँचलिक उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान दिलाती है।

■

'रेणु' साहित्य की प्रासंगिकता : ग्रामीण चेतना के सन्दर्भ में

डॉ. स्नेहा कुमारी
(+2) हिन्दी शिक्षिका, रा0 सु0 रा0 उच्च माध्यमिक विद्यालय, बरियारपुर, सीतामढ़ी

फणीश्वरनाथ रेणु (1921 ई0 - 1977 ई0) स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण जीवन के कथाकार है। समकालीन हिन्दी

साहित्यकारों में 'रेणु' जी का विशिष्ट स्थान है। विशेष इसलिए भी कि वे नई कहानी की प्रवृत्तियों से गुजरते हुए समकालीन सत्य को एक कलात्मक परिणति तक ले जाते हैं और अन्य कहानीकारों से अलग हटकर एक नई जमीन की तलाश करते हैं, जो कि उनकी अपनी जमीन है जहाँ के जीवन को उन्होंने गहराई से जिया है और उसके रूप, रंग, गंध, स्पर्श, सुख-दुःख आदि का गहरा अनुभव प्राप्त किया है। दरअसल नई कहानी को ग्रामीण अंचल के अनुभूत जीवन से जोड़कर संवेदना, चरित्र और शिल्प के नये आयामों से जोड़ने का काम 'रेणु' जी ने ही किया।

साहित्य रचना कर्म एक ऐसा कर्म है जिसके केन्द्र में रचनाकार का एकल व्यक्तित्व स्थिर होता है। यह सत्य है कि कोई रचनाकार व्यक्तिगत स्तर पर ही रचनारत होता है किन्तु, चूँकि वह एक सामाजिक प्राणी है इसलिए रचना में उसकी भूमिका प्रच्छन्न रह जाती है। कारण रचनाकार अपने उदिष्ट श्रोता व पाठक के प्रति भी मर्यादा बोध की दृष्टि से सचेत रहता है। रचना का उद्देश्य और सामयिक परिस्थितियाँ भी रचनाशैली को नियंत्रित करती हैं।

रचनाकार द्रष्टा और भोक्ता दोनों ही होता है। वह न केवल अपने चतुर्दिक घटनेवाली घटनाओं का अवलोकन करता है, वरन् उनसे प्रभावित भी होता है। लोकजीवन की गहराई में पैठनेवाला तथा अपने अनुभवों में डूबने-उतरने वाला ही तथ्यों एवं वृत्तों को कथा में संजोता है। रेणु जी ऐसे ही रचनाकार हैं, जिन्होंने ईंट की पक्की दीवार से लेकर फूस-मड़ैया के भीतर तक झाँकने का प्रयास किया है।

'रेणु' जी की भाषा काव्यभाषा और कथाभाषा दोनों की विशेषताओं से मंडित है। रेणुजी ने अपनी कथाभाषा उसी प्रकार गढ़ी है जिस प्रकार काव्यभाषा गढ़ी जाती है। वही काव्यभाषा अकृत्रिम और प्राणवती होती है जो बोलचाल की भाषा के बीच से उठायी जाती है। 'रेणु' की कथाभाषा स्थानीय लोकभाषा है। इसलिए उसमें लोकभाषा की सारी विशेषताएँ - लय, उच्चारण, भंगिमाएँ आदि विद्यमान हैं। इस प्रकार 'रेणु' जी ने कथाभाषा को ही एक नया आयाम नहीं दिया है, वरन् हिन्दी को भी एक नयी दिशा दी है।

■

रेणु जी के 'मैला आँचल' में वर्णित आर्थिक स्थिति

प्रो0 सिमरन भारती

सहायक प्राचार्य, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय, ति0 मां0 भा0 वि0 वि0 ,भागलपुर

फणीश्वरनाथ रेणु की ख्याति हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासकार के रूप में है। इसके अलावा वे राजनीतिक कार्यकर्ता, कथाकार, क्रांतिकारी, निर्देशक, रिपोर्टर भी हैं। व्यक्तित्व के इन विभिन्न रूपों में एक सामान्य तत्व है, वह है रेणु का मानवतावादी दृष्टिकोण। उन्होंने 1954 में प्रकाशित अपने उपन्यास 'मैला आँचल' को आंचलिक उपन्यास की संज्ञा प्रदान करते हुए इसकी भूमिका में लिखा है- ''यह है 'मैला आँचल' एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।'' स्पष्ट है कि किसी भी साहित्य में जिस समाज का चित्रण होता है, वह साहित्य उस समाज की वास्तविक तस्वीर होता है । इसलिए किसी भी साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि-

(क) उस समाज की सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक सोच, राजनीतिक जागरूकता, व्यक्ति और व्यक्ति के बीच का अन्तर्सम्बंध, भावनात्मक स्थिति, सभ्यता, शिक्षा, रूढ़ि, परम्परा, आर्थिक स्थिति आदि कैसी है।

(ख) साहित्यकार किस सीमा तक व्यक्ति, समाज और संस्कृति को समझ सका है तथा उन्हें अपनी रचना में रूपायित कर सका है।

(ग) साहित्यकार ने समाज और व्यक्ति का चित्रण कर उनके विकास की किस दिशा की ओर संकेत किया है।

इस प्रकार रेणु जी ने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में वर्णित समाज की आर्थिक स्थिति का बड़ा ही स्पष्ट और गहरा चित्रण किया है। वहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति कैसी है, उनका पेशा क्या है, बदलते समय के साथ आर्थिक स्थिति तथा समीकरण में किस प्रकार के परिवर्तन घटित हुए हैं, सबका बड़ा सटीक वर्णन हुआ है।

सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ सदैव ही एक-दूसरे से जुड़ी रही हैं। लोवी का कहना है कि ''सामाजिक कारणों की अवहेलना करके अर्थशास्त्र को किसी प्रकार भी एक स्वतंत्र विज्ञान नहीं कहा जा सकता।'' तात्पर्य यह कि किसी भी समाज की विविध क्रियाओं को संचालित एवं नियंत्रित करने में आर्थिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शायद ही कोई समाज ऐसा मिले, जहाँ आर्थिक दशाएँ सामाजिक दशाओं को और सामाजिक दशाएँ आर्थिक दशाओं को प्रभावित न करती हों।

इस कारण से रेणु जी के 'मैला आँचल' में वर्णित आर्थिक स्थिति एवं बदलते आर्थिक परिवेश के अन्तर्गत मुख्य रूप से - आय के स्रोत, आर्थिक संघर्ष, जमीन्दारों का आंतक, वैज्ञानिक आविष्कारों का अर्थ पर प्रभाव, सरकारी आर्थिक नीतियाँ, आर्थिक स्थिति तथा रहन-सहन में परिवर्तन इत्यादि मुद्दों पर अध्ययन करने की आवश्यकता है।

■

'मैला आँचल' में ग्रामीण जीवन

डॉ. आलोक प्रभात

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, एम.के.कॉलेज, लहेरियासराय, दरभंगा

हिंदी में ग्रामीण जीवन पर लिखने वाले रचनाकारों के क्रम में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम एक ऐसे समर्थ रचनाकार के रूप में लिया जाता है जिन्होंने ग्रामीण जीवन को एक विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति दी है। एक ऐसी अभिव्यक्ति जिसमें ग्रामीण आत्मीयता की गंध है, जो रेणु को अन्य ग्रामीण जीवन के कथाकारों से अलग करती है और कुछ मायनों में विशिष्ट भी। वे हिंदी के ग्रामीण उपन्यास साहित्य के पहले रचनाकार हैं जिनमें गाँव की परिवर्तित, अनगढ़, राजनीतिक चेतना का स्वरूप अपनी पूरी गत्यात्मकता में रूपायित हुआ जो रेणु को विशेष रूप से रेखांकित करता है।

वैचारिक धरातल पर रेणु समाजवादी रहे हैं। उनका संबंध उस प्रकार के समाजवादी चिंतन से रहा जिसके प्रवक्ता भारत में डॉ. लोहिया और जयप्रकाश नारायण रहे हैं। उनके उपन्यासों में इन राजनैतिक विचारों तथा सक्रियता की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। उपन्यासों का कथांकन बिहार का पूर्णिया जिला है और इसमें संदेह नहीं कि रेणु अपने अंचल के रग-रेशे से परिचित हैं। रेणु जिस समय कथा-क्षेत्र में आए, हिंदी का कथा-साहित्य नगर-जीवन की कुछ खास समस्याओं के घेरे में ही सीमित था। 'मैला आँचल' का प्रकाशन इस प्रकार की रचनाओं से दबे पाठक वर्ग के लिए सुबह की ताजा बहार से कम सुखद अनुभूति देने वाला नहीं था। 'मैला आँचल' ने उन्हें रातोंरात हिंदी कथा साहित्य की अगली पंक्ति के रचनाकारों के बीच प्रतिष्ठित कर दिया और यह सच है कि उस कृति में ऐसा बहुत कुछ था जो कथा साहित्य के तत्कालीन संदर्भों में हिंदी पाठक के लिए नया और अछूता था।

रेणु के उपन्यासों के माध्यम से पाठक वर्ग ने हिंदुस्तान के एक ग्रामीण अंचल को उसके प्रकृत रूप में देखा।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों, कहानियों में आंचलिकता की कोई सीमा नहीं थी, बल्कि वह आजाद भारत के ग्रामीण समाज के विराट स्वप्न के लेखक थे, जो शहरीकरण को विकास का एकमात्र पैमाना नहीं मानते थे, न ही गाँवों को पिछड़ेपन का प्रतीक। उनके लेखन पर हिमाचल में रहने वाली लेखिका, अनुवादिका पल्लवी प्रसाद का लेख 'मॉडरेटर' पठनीय है।

फणीश्वरनाथ रेणु भारतीय साहित्य के एक प्रतिनिधि लेखक हैं। रेणु का लेखन निजी पठन-पाठन अथवा विचारकों के चिंतन के आयातीत प्रभावों के बनिस्पत उनके परिवेश में अपनी जड़ें जमाये हुए है। उसी जनजीवन से वह जैविक खाद व ऊर्जा पा कर स्फूर्त होता है, कुछ इस तरह कि रेणु का साहित्य कालजयी है। रेणु की कलम की स्थानीयता ही उसकी ताकत है। उनका लेखन अपने मिजाज में जितना अधिक स्थानीय है उतना ही अधिक वैश्विक है। रेणु के 'लोकल' का फलक दरअसल 'ग्लोबल' है।

■

रेणु साहित्य का सिनेमाई संदर्भ

श्याम भास्कर
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, एमएमटीएम कॉलेज, दरभंगा

फिल्म और टेलिविजन दृश्य-श्रव्य माध्यम हैं । इस माध्यम के लिए लेखक ऐसा होना चाहिए जो दृश्य-श्रव्य कल्पना का धनी हो, जो अपने मानस-पटल पर घटनाओं को घटता हुआ देख सके और पात्रों को बोलते हुए सुन सके । जब लेखक का दिमाग भी कैमरे की तरह काम करता हो और घटना और संवादों का ब्योरा दर्ज करता रहता हो। फणीश्वरनाथ रेणु इस दृश्य-श्रव्य स्मृति के मामले में सबसे धनी थे। इसलिए उनकी अधिकांश रचनाओं में उसके फिल्मीकरण की संभावनाएँ हैं। किसी साहित्यिक हिंदी कहानी पर बनी हुई सबसे अच्छी फिल्म 'तीसरी कसम' है। इस कहानी में दिए गए छोटे-से-छोटे संकेतों का पटकथा में फिल्म को भरापूरा बनाने की दृष्टि से भरपूर उपयोग किया गया है। 1966 ई. में बनी फिल्म 'तीसरी कसम' को बहुत से लोगों ने सेल्युलाइड पर लिखी कविता कहा है। इसे श्रेष्ठतम अभिनय और निर्देशन के लिए भी जाना जाता है। हीरामन गप रसाने का भेद जानता है। फिल्म में, यह शैली इन दोनों को तकनीक के स्तर पर एक-दूसरे से जोड़ती है। यह एक दुखान्त कहानी पर बनी एक दुखान्त फिल्म है। फिल्म में हीरामन, जो फिल्म का नायक भी है तथा कीमती रत्न हीरा का प्रतीक भी तो यह हीरा-समान व्यक्ति की शराफत की हार है।

फिल्म में हीराबाई के नौटंकी छोड़कर जाने का .श्य मूल कहानी से थोड़ा अलग है। फिल्म में यह दृश्य वर्गीय मजबूरी स्पष्ट करता है। साथ ही हीराबाई के प्रेम को, उसके चरित्र को एक गरिमा प्रदान करता है। विरोधाभासों का समुच्चय ही किसी रचना को महान बनाता है। हीरामन और हीराबाई को समाज की मर्यादाओं का दबाव एवं बंधन हमेशा के लिए दूर कर देता है।

'मैला आँचल' का प्रसारण धारावाहिक के रूप में हुआ। यदि उसपर बनने वाली फिल्म पूरी होती तो बात ही अलग होती। 'परती : परिकथा' पर भी बेहतर फिल्म बन सकती है, क्योंकि फिल्म-कथा-लेखन का रहस्य जितना रेणु जानते हैं, उसके आसपास बहुत कम लेखक पहुँच पाते हैं।

■

रेणु साहित्य का आंचलिक संदर्भ

डॉ0 सुनील कुमार सिंह
सहायक प्राचार्य, हिन्दी विभाग, आर0 बी0 कॉलेज, दलसिंहसराय, समस्तीपुर

हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में फणीश्वरनाथ रेणु एक आंचलिक कथाकार के रूप में विख्यात रहे हैं। उन्होंने अपने साहित्य में जिस विषयवस्तु को ग्रहण किया है, उसकी प्रस्तुति जिस आकर्षक ढंग से की है, वह अपनी संपूर्णता में आंचलिकता को लिये हुए है। विद्वानों ने आंचलिक साहित्य की प्रवृत्ति के तहत कथावस्तु की सीमित अंचलीय भौगोलिक स्थिति, भौगोलिक सीमा की तमाम स्थितियों का चित्रण, लोक प्रचलित मान्यताओं व संस्कृतियों का चित्रण, वातावरण चित्रण पर अंचलीय प्रभाव, जन जागरण की नवीन चेतना, नवीन व अंचलीय भाषिक संरचना, नायकत्व की नवीन परिकल्पना आदि को समाहित किया है। ये तमाम प्रवृत्तिगत विशेषताएँ रेणु जी के साहित्य में दिखाई पड़ती हैं।

रेणु जी के लोकप्रसिद्ध उपन्यास मैला आंचल, परती परिकथा, पल्टू बाबू रोड आदि तथा कहानी-तीसरी कसम, लालपान की बेगम, पंचलाइट, ठेस आदि में आंचलिकता के संपूर्ण तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में पूर्णिया जिले की तमाम स्थितियों का- बोली-वाणी, रहन-सहन, खान-पान, लोक संस्कृति, पहनावे-ओढ़ावे, प्राकृतिक दृश्य-नदी, नाले, तालाब, पोखर, फसल, पेड़-पौधे के साथ-साथ-वहाँ की रूढ़ियाँ, मान्यताएँ, विश्वास, अंधविश्वास, शोषण, दमन, संस्कार, लोकगीत, लोकमान्यताएँ, मानसिक पिछड़ापन आदि का सम्यक् चित्रण किया है। ये तमाम विशेषताएँ उनकी रचनाओं को आंचलिक स्वरूप प्रदान करती हैं।

सारतः कह सकते हैं कि रेणुजी के साहित्य में आंचलिक तत्व इस रूप में प्रदर्शित होते हैं, उसका प्रभाव इतना गंभीर

व मार्मिक होता है कि उसके प्रभाव से अपने को अछूता रखना संभव नहीं हो पाता। उनके साहित्य की इन विशेषताओं की वजह से ही उन्हें आंचलिक साहित्य के इतिहास में सर्वोत्कृष्ट स्थान प्रदान किया गया है। उन्होंने अपने सद्प्रयास से स्थानीय समस्याओं को राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उजागर कर उसके निदान हेतु जनजागृति लाने का सफल प्रयास किया है। अपने इस महानतम योगदान हेतु वे सदा एक आंचलिक साहित्यकार के रूप में अमर रहेंगे।

■

संस्मरण

रेणु के गाँव : रेणु के बाद

डॉ. निवेदिता कुमारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, जे.एम.डी.पी.एल. महिला महाविद्यालय, मधुबनी

पौ फटने वाला था, रात की कालिमा धुल चुकी थी। सामने वाली पीली कोठी से मि. मुखर्जी ने राग भैरवी की तान छेड़ दी थी....भोर आई....।

अपनी तैयारी पूरी कर हमने यानि मैं और मेरा भाई अनंत मोटरसाइकिल से निकल पड़े रेणु ग्राम की ओर, जिसका पुराना नाम औराही हिंगना है। अररिया से रेणुग्राम की दूरी लगभग 25-30 कि.मी. है। मधुबनी से कल शाम ही मैं अररिया आ गई थी।

अररिया जिले के कुसियार गाँव में ननिहाल होने के कारण इस क्षेत्र की आबोहवा से अपना पुराना नाता है जो सुखद बचपन की स्मृतियों के खजाने का साक्षी भी है। ठंढी हवा का स्पर्श ममत्व से ओत-प्रोत स्नेह की वर्षा से भिगो रहा था।

पीले वस्त्रों में सजे स्कूली बच्चों का समूह रास्ता रोके खड़ा था, आज सरस्वती पूजा है। मुझे लगा सरस्वती पुत्र के घर जाने का हमने सही दिन चुना था। सड़क के आस-पास खेतों में सरसों के पीले फूल लहलहा रहे थे और सड़क पर पीले वस्त्रों में सजे छोटे-बड़े बच्चे और किशोरियाँ खिलखिला रही थीं। बड़ा मनोहर दृश्य था।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर मक्के और मूँगफली के खेत शुरू हो गए, कितना फर्क आ गया है। प्रगति के नाम पर परिवर्तन हो रहे हैं। धान की जगह मक्का, मूँगफली की उपज हो रही है। कौनी, कोदो, मडुवा अब इधर के किसान नहीं उपजाते क्योंकि बाजार में इनका मोल नहीं मिलता। जो बिकता है वही उपजता है।

कोशी, परमान, कजरा और दो गच्छी नदियों के जल से सिंचित धान, पाट और माछ यहाँ के जीवन और जीविका दोनों के आधार हुआ करते थे। रास्ते से गुजरते लोग मुझे सिरचन, मनु, संवदिया जैसे लगते। बातों ही बातों में माणिकपुर पार हो गया और हमने फारबिसगंज जाने वाली एन.एच. सड़क छोड़ बाई तरफ सिमराहा की ओर जाने वाली सड़क पकड़ ली।

सड़क ऐसी थी कि मोटरसाइकिल भी तांगे की तरह उछल कर चल रही थी। ऐसा लगता था मानो सीट से फिसल जाऊँगी। मैंने सहारे के लिए मोटरसाइकिल का जो भाग हाथ में आया उसे कसकर पकड़ लिया।

यहाँ चौराहा नहीं तिराहा मिलता गया जिसका उल्लेख रेणु जी की कहानियों में मिलता है। पूछते-पूछते हम आखिरकार पहुँच ही गए। सामने था गाँव का मिडिल स्कूल लाल। रंग की इमारत। वह भी अच्छी अवस्था में। आस पास आम के कई पेड़ थे।

मोटरसाइकिल रुकते ही मेरी तंद्रा टूटी रेणु जी का घर आ गया है। सामने बरामदे में रेणुजी की बड़ी तस्वीर लगी थी। परिचय पूछ कर हमें बड़े आदर के साथ घर के अंदर आंगन में ले जाया गया। कुश की नई चटाई पर हमें बिठाया गया 'पटिया दहैन' यह पद्मा जी थीं, हमने उनके पाँव छूकर उनका आशीर्वाद लिया 'भागवती रहअ'। फिर शुरू हुई रेणुजी के बारे में ढेर सारी बातें जो उनके स्मृति गह्वर से बाहर आ मोतियों की तरह बिखर रही थीं और मैं उन्हें समेट रही थी ताकि माला पिरो सकूँ। रेणुजी लोटे में चाय पीते थे। साथ में सिगरेट और रात भर लिखते रहते। कभी आम बगान की तरफ निकल जाते, वहीं तंत्र साधना करते, गाँव में सबों की मदद करते। सोहजन, पटुआ, साग, लाफासाग, भुनी रूलेजी, काली मछली, कबूतर का माँस, रेहू आदि उनके प्रिय भोजन में शामिल था।

रेणुजी चिड़ियों की आवाज बहुत ध्यान से सुनते थे फिर वैसी ही आवाज निकालने की कोशिश करते।

दरोगा को पीटना, ट्रेन की पटरी उखाड़ने जैसा काम भी उन्होंने किया था, जेल भी गए। लोक नायक की गिरतारी पर उन्होंने पद्श्री की उपाधि लौटा दी थी।

एक बार बीमार पड़े और पटना के अस्पताल में लतिका जी ने उनकी खूब सेवा की तो वहीं दिल हार बैठे। वहीदा रहमान उन्हें बहुत पसंद थी।

उनके ज्येष्ठ पुत्र मद्म पराग राय 'बेनु' से भी बहुत सारी बातें हुईं। रेणु जी की रचनाओं के पात्र उनके आस-पास के जीवंत पात्र होते थे, तभी उनमें इतनी स्वाभाविकता होती थी। अमूल्य निधि समेटे हम शाम तक अररिया लौट आए।

'आज सरस्वती पूजो है तुम लोग भोग प्रसाद लेने आना' मिसेज़ मुखर्जी बड़े स्नेह से निमंत्रण दे गईं।

■

रेणु की कहानियों में मूल्य चेतना

डॉ. दिलीप कुमार झा

प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, लूटन झा महाविद्यालय, ननौर, मधुबनी

नई कहानी और नई कविता का दौर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारतीय जीवन के दौर का समानार्थी है। इस समय लोगों के मन में स्वाधीनता प्राप्ति के कारण नए जीवन-निर्माण का एक सपना था। उसे लेकर एक बड़ा उत्साह था, लेकिन धीरे-धीरे हमारे देश में हर क्षेत्र में स्वार्थपरता उभरती गई। कथनी और करनी की खाई चौड़ी होती गई। जनसामान्य अभावों और असुविधाओं से ग्रस्त होता गया, फिर भी लोगों के मन में भविष्य को लेकर एक आशा थी। नए समाज के निर्माण की संभावना पूरी तरह चुकी नहीं थी। नई कहानी जनसामान्य के यथार्थ को ध्वनित करती है। इसलिए यहाँ भी उकताहट, पीड़ा, घुटन आदि के बावजूद भविष्य की एक संभावना दिखाई पड़ती है, अर्थात् मनुष्य और उसके समाज के प्रति एक गहरी आस्था लक्षित होती है। मूल्य से तात्पर्य उन सिद्धांतों, विचारों, संभावनाओं और क्रियाओं से है जो व्यक्ति और समाज के मंगल के लिए होती हैं। कभी ये मूल्य हमें बने बनाये रूप में परंपरा से प्राप्त होते हैं और कभी हमें नए समय और समाज के संदर्भ में इन्हें तोड़कर कुछ नए मूल्यों की स्थापना करनी पड़ती है। नई कहानी ने प्रायः बने-बनाये मूल्यों का निषेध किया। कारण यह है कि ये कहानीकार अनुभवों पर बल देते थे और जो चीज इन्हें अपने परिवेश में अनुभूत नहीं होती थी वह चाहे कितनी बड़ी क्यों न मानी गई हो, इनके लिए स्वीकार्य नहीं थी। इसलिए इन कहानियों में एक ओर तो इन आध्यात्मिक और भौतिक मूल्यों का व्यंग्य रूप में निषेध है जो आज आदमी के लिए बोझ है और दूसरी ओर अनेक संस्थागत मूल्यों के स्थान पर एक खुले मानवीय मूल्यों की स्थापना दिखती है जो मूल्य मानव को मानव से जोड़ते हैं जो जन सामान्य की ओर हमें उन्मुख करते हैं, जो अभिशप्त वर्गों के बीच मानवीय छवि का उद्घाटन करते हैं और जो रेणु जी वर्तमान शासन या समाज व्यवस्था के बीच उभरती हुई क्रूर स्थितियों और मनःस्थितियों के बीच एक कोमल मानवीय संवेदना का प्रसार करते हैं, जो वर्तमान की भयावहता के बीच भविष्य की एक संभावना को संकेतित करते हैं। 'रेणु' नई कहानी के मुख्य हस्ताक्षर हैं। इसलिए उनकी कहानियों में मूल्यगत यथार्थ की यही आहट सर्वत्र सुनाई पड़ती है। 'तीसरी कसम' कहानी में एक पेशेवर नर्तकी के भीतर निहित मानवीय छवि का जो उद्घाटन किया गया है वह अद्भुत है। एक अभिशप्त समाज के प्रति पाठक की कितनी गहरी सहानुभूति लेखक ने निर्मित कर दी है। इसी प्रकार 'रसप्रिया' में पंचकौड़ी मिरदंगिया को उसकी मानवीय छवि के साथ उपस्थित किया गया है। वह मात्र गा-बजाकर माँगनेवाला या व्यक्ति बनकर शेष नहीं रहता, बल्कि संगीत और नृत्य की एक लोक-परंपरा के मिटते जाने का सारा दर्द लेकर छटपटाने वाले और मोहना के प्रति वात्सल्य भाव से भर जाने वाले एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में अपनी छाप छोड़ता है। 'ठेस' कहानी में अपनी सारी अकड़ के बावजूद सिरचन मानू को चिक शीतलपाटी आदि दे आता है। 'संवदिया' में सारी पीड़ा के बीच टूट-टूट कर जीने वाली बहुरिया में एक अद्भुत जीवट का संचार किया गया है और संवदिया हरगोबिन अपने निठल्लेपन को छोड़कर बहुरिया के भविष्य के निर्माण के लिए अपने को प्रस्तुत करता है। 'भित्ति चित्र की मयूरी' में शहर का एक आकर्षण पैदा करने के बावजूद फुलपत्ती और उसकी माँ को अपनी ही जमीन से जोड़े रखा गया है और इस तरह लोक-कला और लोक-जीवन के प्रति अटूट आस्था व्यक्त की गई है। 'लाल पान की बेगम' में गाँव के सारे छोटे-छोटे तिक्त संवादों के बावजूद धीरे-धीरे एक मानवीय संबंध स्थापित किया है जिसमें

बिरजू की माँ को जंगी, वही पतोहू बड़ी प्यारी लगने लगती है जो कुछ देर पहले उसके प्रति बहुत ही अपमानजनक उद्‌गार व्यक्त कर रही थी। इसी प्रकार अन्य कहानियों में भी किसी-न-किसी स्तर पर मानव-मूल्य की आहट सुनाई पड़ती है। इतना निश्चित है कि रेणु ने किसी भी रूढ़ या संस्थागत मूल्य का प्रयोग नहीं किया है। खुले मानवीय मूल्यों को ही अपनाया है और एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि कुल मिलाकर वह अपनी विशेष शैली में अभिशप्त समाज के प्रति पाठकों का एक मानवीय लगाव प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. धनंजय वर्मा के शब्दों में ग्राम जीवन के प्रति आत्मीयता और तादात्म्य है। वे गहरे-उभरे उस जीवन की समस्याओं और उसके संपूर्ण और समग्र व्यक्तित्व हैं..... उसमें अनुभूति की वास्तविकता का ताप है, उनमें जीवन की वास्तविक प्रक्रिया है। उनकी कहानियों में उद्दाम जिजीविषा और गहरी मानवीयता है- जनजीवन के गहरे आत्मीय संस्पर्श और उस जीवन की व्याकुल अकुलाहट है।

■

पंचलैट की रोशनी

डॉ. स्नेहलता कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.आर.बी. कॉलेज, समस्तीपुर

''पंचलैट की रोशनी में सभी के मुस्कुराते हुए चेहरे स्पष्ट हो गए। पंचलैट के प्रकाश में पेड़-पौधों का पत्ता-पत्ता पुलकित हो रहा था।'' हिन्दी कथा जगत् में आँचलिकता के प्रकाश से आलोकित ये पंक्तियाँ रेणु जी द्वारा लिखी गई कहानी 'पंचलाइट' की हैं। कहानी के प्रमुख पुरुष पात्र गोधन के चरित्र-चित्रण से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि कहानीकार ने प्रेम-सौन्दर्य के बरअक्स सामाजिक परिवर्त्तन को कथा का केन्द्र-बिन्दु बनाया है। सामाजिक प्रतिष्ठा और समष्टिमूलक चेतना ये दोनों भावनाएँ पंचलाइट की रोशनी पाकर पुलकित हो रही हैं ''जाति की बंदिश क्या, जबकि जाति की इज्जत ही पानी में बही जा रही है।

पंचलैट से सनसनाहट की आवाज निकलने लगी और रोशनी बढ़ती गई, लोगों के दिल का मैल दूर हो गया। पंचलाइट को जलाने की समस्या को आधार बनाकर लिखी गई इस कहानी में सामाजिक ताना-बाना, स्वाभिमान, मान-सम्मान, प्रेम, उदारता, आदर, श्रद्धा ये सब जो कि जीवन-सौन्दर्य को निरूपित करते हैं, एक साथ समाहित हैं। रेणु जी के कथा-शिल्प को देखकर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि वे न केवल सहज कथाकार हैं, बल्कि सहज जीवन के आकांक्षी भी हैं। व्यक्ति, समाज और सामाजिक संबंधों के अद्‌भुत गठजोड़ के साथ रेणु जी ने कहानी की आँचलिकता को अक्षुण्ण बनाए रखा है। ग्रामीण परिवेश और सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों की उपस्थिति कहानी की प्रासंगिकता को ग्राम्य दृष्टिकोण से और भी अधिक सार्थक करती है। पंचलाइट खरीदे जाने पर नेम-टेम के लिए दस रुपये की पूजा-सामग्री खरीदा जाना, पूजा की सामग्री के पास चक्कर काटती हुई बिल्ली को भगाना इसके उदाहरण हैं। स्वाभाविक जीवन की कथा की तलाश पंचलैट की रोशनी में कथाकार रेणु जी के द्वारा की गई है। परिवर्त्तनाकांक्षी मानवीय जीवन और प्रकृति दोनों को पंचलाइट की रोशनी में गति प्रदान की गई है। रेणु जी के पंचलाइट में वह रोशनी व्याप्त है, जिसके आलोक में पाठकों को नैसर्गिक जीवन सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त होता है।

■

कल, आज और कल के साहित्यिक स्वर : रेणु

डॉ. रीना यादव
सहायक शिक्षिका +2 रा.उ. वि., कोलहंटापटोरी, दरभंगा

फणीश्वरनाथ 'रेणु' अतीत, वर्तमान और भविष्य के साहित्य-स्तंभ हैं। अपने विपुल साहित्य से उन्होंने जन-जीवन को जो दृष्टि प्रदान की है, वह अमूल्य हैं उनके उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, राजनीतिक-सामाजिक, आर्थिक खोखलों परिदृश्यों को

उजागर करती अनमोल निधियाँ हैं, जो केवल किसी एक काल विशेष की नहीं, युग की धरोहर है। 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' जैसे सफल उपन्यासों के प्रखर लेखक रेणु जीवन के यथार्थ को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियाँ भी मानव-मूल्यों के संघर्षों की गाथा को गहन अंतर्दृष्टि के साथ व्यक्त करती हैं।

समाज में व्याप्त वर्ण-भेद, वर्ग-संघर्ष, भूमि-संघर्ष, पारंपरिक मूल्यों की टकराहटें, प्रभुत्व संपन्न व सर्वहारा का अंतहीन संघर्ष रेणु की रचनाओं में पूर्णता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। रेणु केवल समस्याएँ नहीं दर्शाते, उनके समाधान में भी जुटे दृष्टिगत होते हैं। स्वतंत्रतापूर्व तथा बाद की राजनीतिक उथल-पुथल, नेताओं के विविध हथकंडे, षड्यंत्रों का रेणु ने पर्दाफाश किया है तथा भोली-भाली जनता का उनके द्वारा इस्तेमाल होने की तस्वीरों को भी साझा किया है। अपनी पत्रकारिता के माध्यम से भी उन्होंने अपने समाज और राजनीति की विसंगतियों पर कटाक्ष किया है। उनकी अनगिनत कविताएँ भी सत्तांध नेताओं के विषैले खेलों का कच्चा-चिट्ठा खोलती दृष्टिगत होती हैं। लगभग हर विधा में लेखनी चलानेवाले इस बहुमुखी प्रतिभामनीषी ने अपनी हर रचना से जन-जीवन को सचेत करने का अमूल्य प्रयास किया है।

उनकी रचनाओं की प्रासंगिकता हमें आज भी अपने चारों ओर परिलक्षित होती है। चाहे आज का किसान आंदोलन हो, चाहे कोरोना महामारी का प्रकोप हो, चाहे बिहार की जातिवादी-राजनीति का भयावह रूप हो, हर दृष्टि से रेणु आज भी प्रासंगिक एवं समीचीन लगते हैं। यही कारण है कि रेणु के उपन्यास, कहानियाँ, कविताएँ, रिपोर्ट आज भी पठनीय, सहर्षग्राह्य एवं रोचक लगते हैं। रेणु ने समय को इन रचनाओं में आबद्ध कर रखा है। ऐसे कालजयी साहित्यकार युग बदलने की क्षमता रखते हैं। इनकी प्रासंगिकता हर युग में बनी रहती है।

■

भारत की आत्मा के अप्रतिम रचनाकार : रेणु

डॉ. हनी दर्शन

हिंदी विभागाध्यक्ष, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

संवेदनहीनता से तप्त युग में मानवीय संवेदनाओं के कुशल चितेरे फणीश्वरनाथ 'रेणु' आदिम रस-गंधों के रचनाकार हैं। उपेक्षित अंचल को साहित्य के सिंहासन पर उन्होंने इस कौशल के साथ प्रतिष्ठित किया है कि वह अपनी समस्त वास्तविकता और परिवर्तन की गूँज के साथ वैविध्यपूर्ण रूप में जीवंत हो उठा है। मानवीय, ममतामयी और यथार्थवादी दृष्टि के कारण रेणु के अंचल विशेष में स्पंदित संवेदना उसे समस्त अंचल से जोड़कर व्यापकता के नये आयाम प्रदान करती है। उनका रचना-संसार महज यथार्थ का अस्थि-पंजर नहीं, न केवल कोरी कल्पनाओं का मांस-पिंड है, वरन् यथार्थ और कल्पना के मणिकांचन संयोग से निर्मित सुंदर शरीर है, लोक जिसकी आत्मा है। उसमें कहीं प्रेम की सुमधुर सुरभि है तो कहीं सामाजिक जीवन से उठती सड़ांध, कहीं मानवीय व्यवहारों के विविध रूप हैं तो कहीं राजनैतिक दाँव-पेच। विविधता से परिपूर्ण उनका रचना-संसार आंचलिकता के रंगों से सराबोर होकर राष्ट्रीयता के फलक तक विस्तार पाता है।

भारत गाँवों का देश है, उसकी आत्मा गाँव में वास करती हैं। रेणु ग्रामांचल को पृष्ठों पर जीवंत करने वाले सर्जक हैं इसलिए वह 'भारत की आत्मा' के रचनाकार हैं। उनकी कहानियाँ हों या उपन्यास या फिर रिपोर्ताज, मूलतः लोक की धड़कन की प्रतिध्वनि है। उनमें राग-बोध भी है, अंधविश्वास पर आघात भी और शोषण पर कुठाराघात भी है। वे ऐसे शिल्पी हैं जिनकी शब्द-लहरियों में कहीं लहराते खेत जीवंत हो उठते हैं तो कहीं महुआ घटवारिन की कथा गूँजती है, कहीं लोकभाषा का मधु छलकता है तो कहीं जीवन का उल्लास। लोकजीवन अपनी समग्रता के साथ खूबियों और खामियों के साथ वास्तविक रूप से कल्पनाओं का झीना आँचल ओढ़े उजागर होता है।

■

लाल पान की ही बेगम क्यूँ

डॉ. दीपक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, रामकृष्ण कॉलेज, मधुबनी

यह कहानी स्त्री-मन के मनोविज्ञान और उसके शाश्वत भाव-बोध को रेखांकित करती है। 'लाल पान की बेगम' शीर्षक नाच-विधा से प्रेरित शीर्षक लगता है। ताश के पत्तों में भी 'लाल पान की बेगम' होती है- एक पत्ते के नाम के रूप में। जो भी हो, यद्यपि यह शीर्षक कई अर्थ-सम्भावनाओं की तरफ संकेत करता है, लेकिन कहानी के अन्त में इस कहानी की केन्द्रीय पात्र जिस भाव-बोध से भर उठती है वही भाव-बोध स्पष्ट करता है कि लाल पान की बेगम होना वस्तुतः क्या है।

यह कहानी स्त्री-मन को टटोलने-समझने के साथ-साथ स्त्री-हृदय के उदात्त मूल्यों और स्त्री-जीवन के व्यावहारिक संघर्षों को भी बयान करती है। जब कहानी की नायिका अपने पति को जमीन हासिल करने के लिए प्रेरित करती है तो वो कह उठती है ''जोरू-जमीन जोर के, नहीं तो किसी और के'', लेकिन अपने पति को बैलगाड़ी लेकर आने में हो रही देर के कारण जब मन-ही-मन कुढ़ती रहती है तो भगवान को भी 'दाढ़ीजार' कहने से नहीं चूकती। जोरू और जमीन को लेकर जो जुम्ला वो कहती है वो 'वीरभोग्या वसुंधरा' जैसी पुरानी संस्कृत-सूक्ति का ही तो देशी अनुवाद है।

एक स्त्री सबको लेकर चलना जानती है - अपने परिवार को, अपने पास-पड़ोस को, अपने गाँव-देश को। सभी उसके जीवन का हिस्सा हैं। जब एक स्त्री का मन प्रसन्न होता है तो उसके मन का औदात्य और प्रखर हो उठता है। एक तरफ तो वही स्त्री जीवन के संग्राम-क्षेत्र में संघर्षरत है तो दूसरी तरफ वही एक बच्चे की तरह नाच देखने के लिए भी उत्साहित-लालायित है।

इस कहानी के माध्यम से रेणु जी ने कुछ देशी शब्दों को भी रक्षित-सुरक्षित किया है। स्त्रियों की आपसी बतकही का अन्दाज और उनके द्वारा प्रयोग किये जानेवाले श्लील-अश्लील शब्दों को भी रेणु जी जमीन से उठाकर और उसे झाड़-पोंछकर साहित्य के सिंहासन पर बैठा देते है; जैसे कोई माँ अपने धूल में खेलते बच्चे को गोद में उठाकर चूम लेती है, बिना इस बात की परवाह किये कि उसकी साड़ी गन्दी हो जायेगी । रेणु जी अपनी मातृभाषा से पुत्रवत् प्रेम करते हैं। रेणु जी की कहानियों की एक अपनी शब्दावली है। वो शब्दावली ऐसे शब्दों को सहेजे हुए है जो शब्द तथाकथित शिक्षित वर्ग द्वारा बहिष्कृत कर दिये गये हैं और अब भी कर दिये जाते हैं।

■

रेणु के 'पूर्ण आलोचक' सुरेंद्र चौधरी की दृष्टि में रेणु का कथा-साहित्य

डॉ. शंकर कुमार
हिंदी विभाग, रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

''रेणु की कहानियों का संसार आंचलिक भी है और शहराती भी है। पर तथाकथित आधुनिकता से भिन्न उनका एक जातीय स्वरूप है। रेणु की कहानियों के पात्र अकेले होकर भी अकेलेपन की नियति से अभिशप्त नहीं है। वे अपने अकेलेपन की व्यक्तिगत त्रासदी को भी उस रूप में नहीं देखते जिस रूप में रेणु के समकालीन कुछ कहानीकारों ने देखा है। यह भिन्नता रेणु की कहानियों की अलग से पहचान देती हैं।'' (सुरेंद्र चौधरी, हिंदी कहानी : रचना और परिस्थिति, पृष्ठ संख्या-192) रेणु की इस अलग पहचान से परिचित करवाने वाले प्रसिद्ध कथा- समीक्षक डॉ सुरेंद्र चौधरी रेणु पर कई दृष्टि से विचार करते हैं। साहित्य अकादमी के लिए फणीश्वरनाथ रेणु पर 1987 में लिखा गया उनका विनिबंध आकार की दृष्टि से मात्र 104 पृष्ठों का होने के बावजूद उनके जीवन और साहित्य की बारीकियों से न केवल रू-ब-रू कराता है, बल्कि उनके साहित्य पर एक समग्र मूल्यांकन करता प्रतीत होता है। यही कारण है कि सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी समीक्षक मैनेजर पांडेय लिखते हैं कि ''रेणु पर सुरेंद्र चौधरी ने जो विनिबंध लिखा है उसमें वे रेणु के संपूर्ण साहित्य के पूर्ण आलोचक के रूप में हमारे सामने आते हैं। यह आलोचना पूर्ण इसलिए

है कि उसमें सुरेंद्र चौधरी के साहित्य-विवेक से उनके जीवन-विवेक और जगत-विवेक का संबंध दिखाई देता है और वही संबंध रेणु के उपन्यासों, कहानियों, रिपोर्ताजों और रेखाचित्रों की गुणवत्ता और विशेषता की व्याख्या करने में भी मदद करता है।'' (मैनेजर पांडे, बया, अंक- अप्रैल-जून 2011, पृष्ठ संख्या- 22)

वस्तुतः सुरेंद्र चौधरी ने 'कहानियों का गंध परिवेश', 'कहानियों का रचना संसार', 'नाटकीयता और प्रगीत का योगपद' एवं 'समकालीन यथार्थवाद और रेणु का कथा साहित्य' शीर्षक से लिखित अपने अध्यायों में रेणु की कहानियों और उपन्यासों की भावनात्मक दुनिया की गहरी पड़ताल की है। यह पड़ताल उन्हें रेणु की रचनाओं में निहित मूलराग के अन्वेषण तक ले जाती है। वे यहाँ रेणु की कहानियों की उन तमाम छोटी-छोटी रागिनियों के वितान में लहराते भाव-जगत की व्याख्या करते दिखते हैं, जो रेणु के ऐंद्रिक स्पर्श का जीवंत दस्तावेज है। रेणु की कहानियों की नाटकीयता और प्रगीत के तत्त्व एवं परिवेश निर्माण की कला और रचनात्मक रागदीप्ति के मार्मिक स्वरूप को डॉ. चौधरी ने 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम', 'ठेस', 'लालपान की बेगम' आदि कहानियों की व्याख्या के द्वारा स्पष्ट करते हुए दिखलाया है कि रेणु ने कैसे दैनंदिन जीवन के छोटे-छोटे व्यवहारों से नैसर्गिक संबंधों की दुनिया तैयार की है। यह दुनिया ग्राम्य जीवन की बारीकियों पर मानवीय आस्था के पक्ष के साथ अपना सरोकार निर्मित करती है।

इस तरह मानवीय रागबोध की सार्थक पहल में जीवन के स्पंदनों का निकट साक्षात करवाने वाले फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-संसार में सुरेंद्र चौधरी के साथ प्रवेश करना एक रचनात्मक अनुभव है। वे उत्तम परिचायक की तरह रेणु की कहानियों की विविधता और अंतरंग तक ले जाते हैं, जहाँ रूप-रस-गंध-शब्द-स्पर्श की एक जीवित दुनिया है और जिसमें जीवन की उत्सवधर्मिता मूर्त हुई है। साथ ही वे रेणु की रचनाओं में उपस्थित यथार्थ के स्तरों से विकसित जातीय चेतना एवं आधुनिकता के स्वर को नयी कहानी आंदोलन के मध्य प्रतिष्ठित करते हुए उसकी प्रासंगिकता के समकालीन संदर्भ पर भी गहराई से ध्यान दिलाते हैं।

■

यथार्थ का जीवन्त चित्रकार : फणीश्वरनाथ 'रेणु'

नीलम सेन

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, एम0आर0 महिला महाविद्यालय, दरभंगा, बिहार

जीवन के यथार्थ, वास्तविकता की सूक्ष्म पड़ताल, समाज के प्रत्येक समूह के जीवन की गहराई, इस समाज के हर उस पात्र के मनोविज्ञान, राजनैतिक हस्तक्षेपों व निर्मम हथकंडों के प्रति एक सजगता के साथ पैनी दृष्टि रखते हुए, उसे उसी स्वरूप में साहित्य व समाज के समक्ष प्रस्तुत करनेवाले जीवन्त रचनाकारों का नाम लिया जाए तो उसमें फणीश्वरनाथ 'रेणु' का नाम सबसे अग्रिम श्रेणी में उच्चरित होगा। यही नहीं, यहाँ 'रेणु' को यथार्थ का जीवन्त चित्रकार की संज्ञा से अभिहित करना पूर्णतया सार्थक है। समाज के प्रति संवेदनशीलता का जो सूक्ष्म स्वर 'रेणु' के सृजनात्मक रूप में दिखाई देता है उसी के साथ इन संवेदनाओं की सहज व सजीव प्रस्तुति इन्हें एक 'चित्रकार' के रूप में भी स्थापित करती है। एक ऐसा चित्रकार जो दिन-रात समाज के हर उस छोटे-छोटे, बड़े-से-बड़े दृश्य के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। ये दृश्य, ये घटनाएँ ग्रामीण परिवेश की भी हैं और शहरी परिवेश से भी उतना ही गहरा सरोकार रखती हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में जो वैचारिक क्रान्ति हमें दिखाई देती है उसका सीधा संबंध 'कबीर का विद्रोह, सामाजिक न्याय की माँग और बन्धुत्व का आग्रह'' से आगे बढ़ता प्रत्येक आन्दोलन से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च,1921 को बिहार में पूर्णियाँ जिले (वर्तमान में अररिया) के ग्राम 'हिंगना' में हुआ। इसी ग्रामीण परिवेश में इनका जीवन आरंभ हुआ। इस ग्रामीण परिवेश से 'रेणु' जी के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। यही प्रभाव हमे इनकी रचनाओं में भी देखने को मिलता है। इन विशेषताओं के कारण कई बार फणीश्वरनाथ 'रेणु' व मुंशी प्रेमचन्द की रचनाओं में समानता खोजने के प्रयास किय गये हैं। इस संबंध में भारत यायावर लिखते हैं - 'रेणु' प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन के सबसे प्रमुख कथाकार हैं। इनकी प्रमुखता का सबसे बड़ा कारण है 'ग्रामीण जीवन को अपने कक्षा क्षेत्र का आधार बनाते हुए

भी प्रेचमंद के कथा-शिल्प को अपने से विलगाना।' भारत यायावर प्रेमचंद के बाद फणीश्वरनाथ 'रेणु' को ग्रामीण परिवेश का सबसे प्रमुख कथाकार तो मान रहे हें परन्तु प्रेमचंद के व फणीश्वरनाथ 'रेणु' के खुरदरेपन में बहुत बड़ा अन्तर है। जहाँ एक ओर प्रेमचंद अपनी रचनाओं में आदर्शोन्मुख यथार्थ को दोहराते दिखाई देते हैं वहीं दूसरी ओर 'रेणु' की रचना-प्रक्रिया किसी आदर्श को ढोये बगैर समाज को उसी रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है जो समाज आम जन द्वारा जिया व भोगा जा रहा है। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' पर ही चर्चा की जाए तो हम पाऐंगे कि उपन्यास के अधिकतर पात्र समाज के किसी-न-किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। 'होरी' के रूप में प्रेमचंद ने उत्तर भारत के किसान वर्ग की कल्पना की है और उसी को उत्तर भारत के किसान का आदर्श रूप मान लिया है। वे प्रत्येक पात्र के प्रति अपना एक निश्चित व पूर्व निर्मित एक रूप गढ़कर रखते हैं और रचना के आरंभ से अंत तक उसी परिपाटी पर बढ़ते हैं। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के पात्रों में इस प्रकार की किसी पूर्व अनुमानित छवि को ढोने की कोई परम्परा नहीं दिखती। 'रेणु' चाहे ग्रामीण परिवेश के बारे में लिख रहे हों अथवा 'शहरी परिवेश' का कथानक। वे दृश्य को दर्शक की भाँति देखते नहीं, वे उस परिवेश को स्वयं जीते हैं। उनके पास समाज की जटिलताओं को सूक्ष्म व निरपेक्ष रूप में देखने की समझ है और इस समझ के साथ ही साथ वह ईमानदारी भी है जिसके सहारे वे समाज के यथार्थ को जीवन्त रूप में चित्रित करने में सक्षम हैं। नई कहानी जिस 'व्यक्ति स्वातंत्र्य', 'तथ्य की खोज', 'विसंगतियों की पहचान' व जटिल व सूक्ष्म अभिव्यक्ति को महत्त्व देती है उन्हीं का प्रभाव हमें 'रेणु' की रचनाओं पर भी दिखाई देता है। 'रेणु' अपनी रचनाओं में पात्रों के व्यक्तित्व को सुन्दर बनाने के प्रयास करते दिखाई नहीं देते, अपितु वे व्यक्तित्व के खुरदरेपन को व्यक्त करने में लेखन की सफलता स्वीकार करते हैं। 'पंचलाइट', 'लाल पान की बेगम', 'तब शुभ नामे', 'तीसरी कसम' उर्फ मारे गए गुलफाम' कई ऐसी कहानियाँ हैं जो समाज के उन पात्रों का आधार बनाती है जिनसे सरोकार रखना कोई फायदे का सौदा कभी रहा नहीं। यही विशेषता भी है 'रेणु' के लेखन की, कि इन्होंने कला को जीवन से जोड़कर देखा और यही नजरिया रेणु को उस आमजन के साथ चलने को, उसके साथ जीने को प्रेरित करने लगी, जिसे पहले इतनी तवज्जो नहीं मिली, यदि मिली भी तो उस सहज व स्वाभाविक रूप में नहीं। रेणु के इस संजीदा चित्रण की बात उनके ग्रामीण परिवेश पर वे रेखांकन पर तो लागू होती ही है, शहरी जीवन के प्रति भी उनकी तथ्यपरकता किसी प्रकार से कम नहीं। स्त्री के प्रति नवीन दृष्टिकोण, यथार्थ के प्रति नई पहचान, मनुष्य के सत्य को समझने का प्रयास, किसी भी छद्म आवरण से मुक्ति का समर्थन हमें 'रेणु' जी की रचनाओं में दिखाई देता है। राजकमल चौधरी का यह कथन फणीश्वरनाथ 'रेणु' के लेखन के संदर्भ में सटीक प्रतीत होता है कि ''लेखकों और कवियों का सामाजिक कर्त्तव्य होता है कि वे जनता को सही जानकारी दे, उसकी स्थिति के विषय में और उसकी मुक्ति के विषय में। आमूल परिवर्तन के लिए जनता को प्रस्तुत करना हमलोगों का कर्त्तव्य है।'' यही निर्वहण फणीश्वरनाथ 'रेणु' सदैव करते दिखाई देते है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में नारी - चित्रण

डॉ. माला कुमारी
शिक्षिका, मध्य विद्यालय खिरमा, दरभंगा

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ रेणु दोनों ही कथा साहित्य में नया आयाम प्रस्तुत करनेवाले रचनाकार रहे हैं। साहित्य की अन्य विधाओं से ज्यादा उपन्यास में स्त्री-जीवन को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। उपन्यास के प्रारंभ से ही स्त्री जीवन के विभिन्न पक्षों को लक्षित किया गया है। वर्षों से साहित्य के मुख्य विमर्श के केंद्र में तीन ही विमर्श रहे हैं 'स्त्री विमर्श' 'दलित विमर्श' और 'आदिवासी विमर्श'। इनमें से 'स्त्री विमर्श' पर कई साहित्यकारों ने अपनी स्वानुभूति एवं कल्पना मात्र का सहारा लेकर साहित्य रचना की है। इसी कड़ी में एक नाम फणीश्वरनाथ रेणुजी का भी है। रेणुजी की रचना आज के परिप्रेक्ष्य में उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी यह पूर्व में थी। अमर कथाकार फणीश्वरनाथ रेणुजी की कुछेक रचनाओं में महिलाओं के जीवन से जुड़े हुए संघर्षों और संत्रास के आलोक में स्त्री-विमर्श को दर्शाया गया है।

सर्वप्रथम उनका एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'कितने चौराहे' की प्रमुख महिला पात्र 'शरबतिया' के जीवन से जुड़ी हुई घटना है, जो किसी भी कीमत पर अपनी बेटी का ब्याह अधेड़ उम्र के दो बच्चों के बाप से नहीं करना चाहती है दूसरा चर्चित उपन्यास 'कलंक

मुक्ति' की महिला पात्र 'बेला' की है जिसका शोषण राजनेता से लेकर डायरेक्टर का किरानी तक करता है। कथाकार के उपरोक्त संदर्भ से यह स्पष्ट होता है कि न सिर्फ उस वक्त बल्कि आज भी महिलाओं की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है। आज भी ग्रामीण परिवेश की भोली-भाली लड़कियों को सुनहरे भविष्य का सपना दिखाकर किस प्रकार उसका शोषण, उत्पीड़न किया जा रहा है, यह आज भी एक यक्ष प्रश्न है? रेणुजी की और भी कहानियाँ हैं- 'रसप्रिया', 'तीसरी कसम', 'जालवा' है। चाहे 'रसप्रिया' की 'रमपतिया' हो या 'जालवा' की 'फातिमा' सबकी कहानी आपस में मिलती-जुलती है।

■

बहुभाषिकता की अवधारणा और रेणु के उपन्यास

डॉ. कृष्ण कुमार पासवान
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, राम चरित्र सिंह महाविद्यालय, मंझौल, बेगूसराय

भाषा और साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं जिसमें संस्कृति की रसधारा अजस्र रूप से प्रवाहित होती रहती है। भाषा अगर मानव चिंतन का संरचनात्मक आधार है तो साहित्य उसकी प्रतिकृति। ऐसे में इसके अन्तःसम्बन्धों को समझना, एक-दूसरे के सह-अस्तित्व को पुनर्व्याख्यायित करना है। रेणु जैसे रचनाकार का साहित्य एक अलग तरह की व्याख्या की माँग करता है। आज तक रेणु का साहित्य और उनकी भाषा को आंचलिकता की सीमा से बांध कर देखा जाता रहा है परन्तु रेणु का साहित्यिक और भाषिक फलक अत्यंत व्यापक और असीमित है।

समाज भाषा विज्ञान की अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में अपना आकार ग्रहण कर रही थी, परन्तु रेणु अपने रचना-संसार में इस अवधारणा को उससे लगभग डेढ़ दशक पहले अपने लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे थे। समाज भाषा विज्ञान का मूल आधार भाषिक-विकल्पन को रेणु के 'मैला आंचल' में देखा जा सकता है जिसे अनजाने में ही रेणु एवं समस्त हिंदी जगत् ने आंचलिकता नाम देकर सैद्धान्तिकी-निर्मिति की सारी संभावनाओं को जैसे प्रतिबंधित कर दिया। परन्तु साहित्य की सार्थकता इसी में है कि समय के साथ इसकी पुनर्व्याख्या होती रहती है।

■

रेणु-साहित्य का आंचलिक संदर्भ

डॉ. देवाशीष
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, टी एन बी कॉलेज, भागलपुर
पूर्णिमा भारती
एम. एड. (छात्रा), एच.एम.एस.आई.टी.ई, सासाराम

हिन्दी साहित्य/उपन्यास के संदर्भ में 'आंचलिक' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में किया है- ''यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास! कथानक है पूर्णियाँ। पूर्णियाँ बिहार राज्य का एक जिला है- मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर- इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाब भी, कीचड़ भी है चंदन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी। मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''1

फणीश्वरनाथ रेणु को आंचलिक उपन्यासों का प्रवर्त्तक माना जाता है; क्योंकि इस संबंध में स्वयं रेणुजी कहते हैं,- ''आंचलिक उपन्यास से मेरा आशय ऐसे उपन्यास से है, जिसकी समस्याओं को सामाजिक दृष्टिकोण से रेखांकित किया जा सकता है। हालाँकि उसमें शिल्प-भावना के साथ परिवर्तित युग-परिस्थिति के फलस्वरूप जीवन-बोध में जो परिवर्तन आता है, उसका भी चित्रांकन किया जा सकता है। इस बारे में मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि उपन्यास जगत् में इस धारा का प्रयोग मैंने ही पहली बार किया।''2

फणीश्वरनाथ रेणु ने आंचलिकता के सभी उपादानों से लैस होकर या उसकी समग्रता में पूरे अंचल को अपने साहित्य

में चित्रित किया है। वे अपने आंचलिक साहित्य में आंचलिक भाषा का प्रयोग करते हुए साहित्य जगत में उतरे। सच में दृश्यों, पात्रों और परिवेश के सटीक, सुस्पष्ट चित्रण के लिए यह जरूरी है कि चीजें जैसी प्राकृत अवस्था में प्राप्त होती हैं, वह वैसे ही रूप में आएं। रेणु जी की मान्यता है,- ''साहित्य का मूल स्रोत-जीवन और सहजता से है, उसी में सौंदर्य है। आंचलिक उपन्यास का प्रतिपाद्य ग्राम, वन, नगर, शहर कोई भी अंचल हो सकता है। जो लोग आंचलिकता को सीमाओं में बाँधकर उसे अलग कर देना चाहते हैं- वे भूल करते हैं। संस्कृति, रीति-रिवाज, लोक-वाणी, इतिहास तथा प्राकृतिक दृश्यावली से मिलकर ही क्षेत्र विशेष अंचल बनता है।''3

फणीश्वरनाथ रेणु का समय प्रेमचंद के ठीक बाद का है। रेणु जी का हिंदी साहित्य के आंचलिक कथाकारों में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। आंचलिकता से तात्पर्य है, किसी साहित्य में किसी क्षेत्र के शब्दों और परंपराओं का बहुतायत में पाया जाना। रेणु जी ने 'मैला आँचल' उपन्यास के द्वारा पूरे भारत के ग्रामीण जीवन का चित्रण करने की कोशिश की है। उनको जितनी प्रसिद्धि उपन्यासों से मिली, उतनी ही प्रसिद्धि कहानियों से भी मिली। उनका संपूर्ण साहित्य राजनीति की मजबूत बुनियाद पर आधारित है। उन्होंने सामाजिक बदलाव में साहित्य की भूमिका को कभी राजनीति से कमतर नहीं माना। उनकी लेखन-शैली वर्णनात्मक थी, जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया गया है, आंचलिक उपन्यास का नायक व्यक्ति विशेष न होकर अंचल होता है; साथ ही आंचलिक उपन्यास में कथाओं का भंडार होता है। आंचलिक रस्म-रिवाज और संस्कृति को चित्रित करने में आंचलिक कथा-सम्राट फणीश्वरनाथ रेणु सफल रहे हैं।

संदर्भ :

1. फणीश्वरनाथ रेणु, 'मैला आँचल', भूमिका
2. भारत यायावर, 'रेणु रचनावली-4', पृ.- 388
3. भगवती प्रसाद शुक्ल, 'आंचलिकता से आधुनिकता का बोध', पृ.- 129

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियों में जीवन-संघर्ष

डॉ. बलराम कुमार
अतिथि सहायक प्राध्यापक, डॉ. लोहिया कर्पूरी विशेश्वरदास महाविद्यालय, ताजपुर, समस्तीपुर

'रेणु' ने हिन्दी-कथा-साहित्य की आधुनिकतावादी फैशन की परवाह न करते हुए एक लम्बे अरसे बाद पुनः भारत की उस आत्मा से जुड़ने की कोशिश की थी जिसे प्रेमचंद ने पूर्ण प्रामाणिकता के साथ जोड़ा था। बीच में कहानीकारों द्वारा मध्यवर्गीय नागरिक जीवन की केन्द्रीयता के कारण यह जुड़ाव टूट गया था। यही कारण है कि रेणु एक ऐसे लेखक रहे जिन्हें एक ओर यदि पुरानी पीढ़ी का प्रयोग, समकालीनों का नेह मिला तो दूसरी ओर नए लेखकों द्वारा सम्मान भी प्राप्त हुआ। उन्होंने ग्राम्य जीवन के सम एवं विषम दोनों पक्षों के यथार्थ का अनुभव किया और उसके विविध आयामों को कहानियों का विषय बनाया। उनकी कहानियों में अंचल का विशेष गहराई से अंकन हुआ क्योंकि उन्होंने उस परिवेश के परिवर्तनों, धड़कनों को भोगा भी था। यही कारण है कि 'रेणु' की कहानियाँ आंचलिक यथार्थ के अधिक सन्निकट प्रतीत होती हैं। इनकी कहानियों में जन-जीवन की समस्याओं को रागात्मकता के साथ प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता है।

हिन्दी कहानी के इतिहास में 'रेणु' का प्रवेश सर्वप्रथम सन् 1945 ई0 में 'साप्ताहिक विश्वमित्र' कलकत्ता में प्रकाशित 'बटबाबा' शीर्षक कहानी से होता है। दूसरी बार इन्होंने ग्रामांचलों के वस्तुबोध को अपनी कहानियों का आधार विषय बनाकर कई सशक्त रचनाएँ लिखीं (1) ठुमरी-1959, (2) आदिम रात्रि की महक-1967, (3) अग्निखोर-1975 आदि उनके कहानी संग्रह हैं। इन तीनों कहानी संग्रहों में कुल चौंतीस कहानियाँ हैं।

■

रेणु के 'मैला आँचल' में निरूपित चरित्रों का मूल्यांकन

डॉ. ज्वालाचन्द्र चौधरी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, महात्मा गाँधी महाविद्यालय, दरभंगा, बिहार

कथानक के वाहक एवं प्रसंगों के भोक्ता पात्र होते हैं। उपन्यास में पात्रों का चयन और संख्या कथावस्तु की मूल संवेदना और आकार पर निर्भर है। प्रत्येक उपन्यास में कुछ पात्र प्रधान और अन्य गौण होते हैं, उपन्यासकार को अपने पात्रों के बहिरंग-चित्रण से लेकर अंतरंग के विश्लेषण-उद्घाटन तक के लिए कई प्रयोग करने पड़ते हैं। उपन्यास विधा में पात्र तथा चरित्र चित्रण का महत्त्व कम नहीं है क्योंकि पात्र ही उपन्यास की शोभा और लेखन की सफलता का कारण होते हैं। प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद ने उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्र' माना है और यह घोषणा की है कि उपन्यास में चरित्रों अथवा पात्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

वैसे कथावस्तु और पात्र उपन्यास के दो प्रमुख तत्त्व हैं। किन्तु आधुनिक उपन्यासों में कथावस्तु को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। अब चरित्र कथा का सन्देश वाहक न होकर लेखक के सत्य और अनुभूति का सन्देश वाहक बन गया हैं। आँचलिक उपन्यास की कथा भी अन्य उपन्यासों की तरह पात्रों और घटनाओं द्वारा भी उत्तम होती है। 'मैला आँचल' का 'मेरीगंज' गाँव तथा 'परतीः परिकथा' के परानपुर गाँव की भूमि इन उपन्यासों के नायक हैं। इनकी विशिष्टताओं को पूर्णतः प्रकट करने के लिए लोक की सृष्टि की गई है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि-चरित्रों को अपने उपन्यासों में सम्मिलित किया है। इनमें एक ओर जहाँ रूढ़िवादी एवं विघटनशील प्रवृत्ति वाले चरित्र हैं तो दूसरी और आदर्शवादी चरित्र भी हैं। इन विभिन्न प्रवृत्ति वाले चरित्रों से जहाँ ग्रामीण जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है, वहाँ आदर्श चरित्रों के माध्यम से रचनात्मक स्थितियों और भावी संभावनाओं का संकेत भी किया गया है। 'रेणु' के उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक है, लेकिन अतिरिक्त नहीं है। उन्होंने वातावरण के निर्माण हेतु पात्रों को महत्त्वपूर्ण माना है। 'रेणु' के सभी चरित्र यथार्थ अनुभव पर आधारित हैं। अतः अत्यंत स्वाभाविक एवं विश्वसनीय हैं। उनके उपन्यासों में पात्रों की सजीवता, स्वाभाविकता और उनके अंतर्मन के सूक्ष्म स्वाभाविक चित्रण के कारण ही 'प्रदेश-विशेष' अपनी संपूर्ण प्राणवत्ता के साथ उभरकर आया है। 'रेणु' ने पात्रों के भावजगत तथा अंतर्मन की सूक्ष्म लहरों को कुशलता के साथ चित्रित किया है। पात्रों की भाषा, चाल-चलन, रंग-ढंग, विचार, आदर्श, यथार्थ आदि को उसी परिवेश के अनुरूप अंकित किया गया है।

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियों का वैशिष्ट्य : ग्राम्य-संस्कृति के संदर्भ में

डॉ. अजय कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, महात्मा गाँधी महाविद्यालय, सुन्दरपुर, दरभंगा

भारत गाँवों का देश है। हमारी सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में गाँव का विशेष स्थान एवं महत्व है। भारत के अस्सी प्रतिशत लोग गाँवों में निवास करते हैं। चूँकि साहित्य समाज का दर्पण है, अतः साहित्यकार जब भी समाज का चित्रण करेगा तो स्वाभाविक रूप से उस सामाजिक व्यवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट होगा जहाँ अधिक से अधिक लोग रहते हैं।

रेणु की कहानियों का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य ग्राम्य संस्कृति के प्रति उनकी गहरी ललक के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। यह ललक ही इन कहानियों को रोमानी तथा फैन्टेसी बनाती है जो परिवेशगत यथार्थ की संश्लिष्टता से बचकर उसकी जटिलताओं और अन्तर्विरोधों को बहुत कुछ अनदेखा करके अपनी आकांक्षाओं और कल्पनाओं को स्थितियों पर आरोपित और प्रक्षेपित कर देती है। यही कारण है कि रेणु की कहानियों को आधार बनाकर स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँवों की कोई प्रामाणिक

तसवीर बना पाना कठिन हो जाता है।

रेणु की कहानियाँ जो ग्रामीण परिवेश से संबंधित हैं उनमें मनुष्यता की गंध मौजूद है। उसके भीतर राग और रूप हैं। 'तीसरी कसम' का हीरामन तो अब एक क्लासिक बन चुका है। उसका कोमल धुकधुकाना हृदय, उसका तरल अतृप्त प्रेम, उसके भीतर का राग और अन्त में उसका अवसाद क्या भूलने की चीज है? इसी प्रकार 'रसप्रिया', 'संवदिया' तथा 'एक आदिम रात्रि की महक' कहानियों की मनोभूमि भी मुख्यतः 'तीसरी कसम' की ही भूमि है। 'रसप्रिया' का मिरदंगिया उतना ही संवेदनशील है, जितना हीरामन। उसके जीवन के भी कुछ अपने अभाव और लगाव है। 'एक आदिम रात्रि की महक' का करमा आदि भी इन्हीं अभावों और लगावों से बुने गये चरित्र हैं। 'संवदिया' कहानी का हरगोबिन बड़ी बहुरिया का संदेश लेकर जाता है पर उसका संदेश वह कह नहीं पाता। हीरामन, मिरदंगिया, करमा, हरगोबिन-ये सभी चरित्र एक ही ताने-बाने से बुने गये हैं। इनके भीतर वह राग मौजूद है जो मनुष्य के भीतर उसकी मनुष्यता को सुरक्षित रखता है।

ग्राम्य-कथा कोई आकस्मिक वस्तु नहीं है और न यह अस्थाई कथा-प्रवृत्ति का परिणाम है। जिसे भारत की उस आत्मा से जोड़ने की कोशिश की थी जिसे प्रेमचंद ने पूर्ण प्रामाणिकता के साथ जोड़ा था। यही कारण है कि रेणु एक ऐसे लेखक रहे, जिन्हें एक ओर यदि पुरानी पीढ़ी का प्रयोग, समकालीनों का स्नेह मिला तो दूसरी ओर नयों द्वारा सम्मान भी प्राप्त हुआ।

■

रेणु की कहानियों के 'पागल' पुरुष पात्र

डॉ. निहार रंजन सिन्हा

एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा साहेब राम संस्कृत महाविद्यालय, पचाढ़ी, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों के पुरुष पात्रों की एक बड़ी संख्या असामान्य व्यवहार करने वाली है। अनेक चरित्रों की सोच और करनी विचित्र है! ऐसे कई पात्रों के लिए स्वयं लेखक ने 'पागल', 'अधपगला' अथवा 'उन्मत्त' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है। दुनिया जिन पात्रों को सामान्य कहती है, वे भीतर से कतई सामान्य नहीं होते! वे हर पल सामान्य अथवा लौकिक बने रहने के लिए संघर्षरत होते हैं। वास्तव में संसार झूठे और अभिनय-प्रिय व्यक्तियों और पात्रों से अँटा पड़ा है। ये नकलची लोग ही अपनी अपार संख्या के कारण सहज और सामान्य मान लिए गए, जबकि सच्चे लोग असामान्य और पागल! लीक छोड़कर सोचने की काबिलीयत वाले और उस सोच को सच्चाई के साथ व्यवहार में लाने का माद्दा रखने वाले पात्रों को गढ़ना-तराशना रेणु को प्रिय है। मशहूर कहानी 'रसप्रिया' के मुख्य पात्र 'पंचकौड़ी मिरदंगिया' को दस-बारह साल का मोहना भी अधपगले के रूप में जानता है। रेणु के पागल पुरुष पात्रों के अलग-अलग वर्ग हैं- कोई प्रेम में पागल है, कोई लोक-कल्याण में या कोई कला के लिए पागल है तो कोई आदिम रसगंध के लिए! रेणु के पुरुष-पात्र ही नहीं, पशु-पात्र भी पागल हैं! जब अनीति के खिलाफ समाज भी जड़ हो जाता है, तब 'तँबे एकला चलो रे' का 'किसन महाराज' दुराचारियों के विरुद्ध अकेला मोर्चा सँभालता है। ऐसा शहीदी अंदाज सामान्य जनों में कहाँ? - यह तो पागलों की ही पूँजी है! 'ठेस' का 'सिरचन' हो अथवा 'कलाकार' का 'शरदेन्दु बनर्जी' - पागल अर्थात् सच्चे कारीगर कलाकार रेणु को विशेष भाते हैं। 'कस्बे की लड़की' की 'सरोज' 'प्रियव्रत' को पगला कहती है : 'लल्लनजी यह क्या कर रहे हो? लल्लन...पगला।' और तो और 'तीसरी कसम, अर्थात् मारे गए गुलफाम' के 'हिरामन' का पवित्र-पागलपन सूक्ष्मता और विस्तार के साथ कहानी के विशाल फलक पर फैला है।

■

रेणु के उपन्यासों के समाजसेवी : आज के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. श्वेता कुमारी
उच्चतर माध्यमिक हिन्दी शिक्षिका, +2 एम.ए.आर.एम. विद्यालय, दरभंगा (बिहार)

हिन्दी उपन्यास के विकास में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का योगदान सर्वविदित है। एक उपन्यासकार के रूप में भारत को सुखी, समृद्ध एवं समुन्नत राष्ट्र बनाना चाहते थे। वे भारत को सामंतवादी मानसिकता से मुक्त करवाना चाहते थे। राष्ट्र-निर्माण से जुड़ी उनकी चिंताएँ और योजनाएँ भारत के राष्ट्रीय यथार्थ के सूक्ष्म और गहन पर्यवेक्षण पर आधारित हैं। रेणु जी की रचनाएँ अपने समय के साथ-साथ आनेवाले समय की भी आवाज बन कर उभरी हैं। वे दुःखी हुए, मोहभंग की स्थितियों से भी उनको गुजरना पड़ा, फिर भी उन्होंने यथार्थ से कतरा जाने की बात कभी नहीं सोची। जिस हकीकत को रेणु जी पूर्णिया अंचल के संदर्भ में उजागर करते हैं वह आज पूरे देश की हकीकत है जो तमाम आधुनिक प्रगति के बाद भी मूलतः गाँवों का देश है। अपने साहित्य में जो व्यथा-कथा कही है वह आज पूरे देश का यथार्थ है। रेणु जी ने अपने उपन्यासों में कई समाजसेवियों के बारे में बतलाया है जो अपनी सेवा और लगन से आज भी हमारा मार्ग दर्शन करते हैं। 'मैला आँचल' में डॉ. प्रशांत, डॉ. ममता, बावनदास, बलदेव, 'परती : परिकथा' में जितेन्द्र नाथ, 'दीर्घतपा' में बेला गुप्त, रमला बनर्जी तथा 'जुलूस' में पवित्रा ऐसे ही पात्र हैं। आज हमारे बीच कई समाजसेवी हैं जो समाज की सेवा पूरी ईमानदारी से कर रहे है। रेणु जी का समस्त उपन्यास अपने समय के साथ-साथ निकटतम भविष्य की भी आवाज बनकर उभरा है। राष्ट्र निर्माण और सेवा के मामले में रेणु ने जिस समग्रता और वैज्ञानिकता के साथ अपनी विचारधारा अपनी रचनाओं के माध्यम से हमारे समक्ष रखी है, वह उन्हें अप्रतिम उपन्यासकार बनाती है। किसी भी साहित्य की प्रासंगिकता बाहर नहीं, बल्कि उसके अंदर निहित है। कोई भी श्रेष्ठ रचना जो हमारी संवेदना से जुड़कर जीवन के गहरे मर्म को पकड़ती है तो उससे एक गहरा आत्मीय रिश्ता बन जाता है। ऐसा साहित्य हमेशा प्रासंगिक और महत्वपूर्ण रहेगा।

■

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में सामाजिक चेतना

महेश कुमार चौधरी
सहायक प्राचार्य, हिन्दी विभाग, आर.बी. कॉलेज, दलसिंहसराय, समस्तीपुर

कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ऐसे साहित्यकार हैं जो सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को केन्द्र में रखकर अपने कथा संसार का सृजन करते हैं। उनके द्वारा सृजित कहानी बेबाकी से अपनी बात समाज के मध्य रखती ही नहीं, बल्कि अपनी सार्थकता भी सिद्ध करती है। उनकी कहानियों के पात्र मूल समस्याओं का उद्घाटन कर उसका समाधान भी करते हैं। रेणु का बहुआयामी व्यक्तित्व व दृष्टिकोण ही उनकी कृतियों को अमर बनाता है। उनके द्वारा रचित उपन्यास हो या कहानी, वे दोनों ही विधाओं में सामाजिकता को समेटे हुए हैं। इनकी कहानियों में-पंचलाइट, लाल पान की बेगम, ठेस, संवदिया, रसप्रिया, अग्निखोर, अतिथि सत्कार, धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे आदि को काफी प्रसिद्धि प्राप्त है। समाज का उत्थान, संस्कृति का पोषण, नागरिकों में राष्ट्र-प्रेम का संचार, ग्रामीण जीवन की सरलता व सीधापन, मानवीय संवेदना, करुणा, जातिगत विभेदों पर करारा प्रहार, शोषण का विरोध आदि ही उनकी कृतियों का मूल उद्देश्य रहा है। निस्संदेह हिन्दी साहित्य में कथाकार प्रेमचंद के बाद इनका ही स्थान आता है। भले ही आंचलिक परिवेशों का चित्रण इनकी कहानियों में देखने को मिलता है किन्तु उनका संबंध राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य से जुड़ा हआ है जिनका विवेचनात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है। रेणु की कहानियों ने समकालीन संदर्भ में काफी प्रसिद्धि तो पायी ही थी, वर्तमान समय में इनकी कहानियों की प्रासंगिकता बनी हुई है तथा भविष्य में भी इनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी या नहीं, इन्हीं प्रश्नों का उत्तर खोजना इस शोध का उद्देश्य है। इस शोध से फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों की मार्मिकता व सार्थकता पाठक के सामने प्रस्तुत हो सकेगी। मानवीय जीवन व सामाजिक चेतना के विकास में इनकी कहानियाँ किस हद तक कामयाब हैं इसका उद्घाटन हो सकेगा।

■

रेणु का कलाकार मन

डॉ. महेश कुमार ठाकुर
व्याख्याता, हिन्दी विभाग एम0 एम0 टी0 एम0 कॉलेज, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु समतामूलक एवं सुसंस्कृत समाज की स्थापना अपनी लेखनी के द्वारा करना चाहते थे। फणीश्वरनाथ रेणु चाहते थे कि ऐसा समाज हो जो सांस्कृतिक चेतनाओं से लैश हो, कलाकारों, समाजसेवकों को सही मान-सम्मान मिले। रेणु जी का आविर्भाव उस समय में हुआ था जब घोर सामाजिक विषमता थी। भारतीय संस्कृति-सभ्यता का पलायन हो रहा था। अंग्रेजों का शासन था, जिस शासन में जमींदारों और सामांतों के द्वारा समाज के लोगों पर अन्याय और अत्याचार होता था। समाज जाति और मजहब में बँटा हुआ था। मानव मानव से अलग-विलग था। उस समय में कलाकारों को मजदूर की भाँति समाज में गिना जाता था। जैसा कि मजदूरों से खेतों में या कारखाना में काम कराया जाता था और उसे कुछ पारिश्रमिक ढेला के जैसे फेंक दिया जाता था। ठीक वैसे ही कलाकारों की भी उपेक्षा की जाती थी। मान-सम्मान के बदले उसे उपेक्षित किया जाता था। वे चाहते थे कि समाज में सबों को मान-सम्मान मिले और जो कलाकार हैं, सुसंस्कृत व्यक्ति हैं; उन्हें उनके व्यक्तित्व को देखते हुए समाज में सम्मान की दृष्टि से सम्मानित करे, परन्तु वैसा होता नहीं था, जिन्हें देखकर लेखक मर्माहत हो जाते थे, उसका जीता-जागता चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से चित्रण किया है, जिन्हें पढ़कर पढ़े-लिखे युवा उस प्रथा का विरोध करें और समाज को बदले। कवि, लेखक, उपन्यासकार, कथाकार समाज के स्रष्टा और द्रष्टा होते हैं। रेणु जी महान समाज सुधारक थे। सुसंस्कृत व्यक्तियों के प्रति मान-सम्मान उनके हृदय में कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे एक प्रतिभा-सम्पन्न सुसंस्कृत समाज की स्थापना करना चाहते थे। रेणु जी, सम्पूर्ण मिथिला क्षेत्र में जो सामाजिक कुरीतियाँ थीं, उसका भरपूर विरोध किया है और चाहते थे कि आनेवाले दिन में ऐसा नहीं हो। समाज कुरीतियों से मुक्त हो जाय। एक साफ-सुथरा, सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की स्थापना उनका मुख्य उद्देश्य था।

रेणु की संस्कृति-दृष्टि 'ठेस' कहानी में व्यक्त हुई है। वे कलाकारों के स्वाभिमान की रक्षा के प्रबल पक्षधर थे।

■

रेणु के कथा साहित्य में नारी पात्रों का वैविध्य

डॉ. रमण कुमार
हिन्दी विभाग, अयाची मिथिला महिला महाविद्यालय, बहेड़ा, मो0 नं0- 9931397244

फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी के उन कथाकारों में परिगणित किये जा सकते हैं जो अपने जीवनकाल में उतने ही विख्यात, चर्चित रहे जितने आज भी हैं। रेणु ने कथा साहित्य में आँचलिक शब्द का प्रथम प्रयोग कर हिन्दी कथा साहित्य में एक नई धारा का भी सूत्रपात किया।

शहरी मध्यवर्ग पर केंद्रित नयी कहानी के दौर में ग्रामीण जीवन को कथा साहित्य के केन्द्र में लाकर रेणु ने हिन्दी साहित्य में एक नई धारा का प्रवर्तन किया, अपनी कथाओं के लिए ग्रामीण जमीन की तलाश की जिसमें न केवल वहाँ का जीवन, उसके मूल्य, बदल रहे मूल्य, संघर्ष, बल्कि उसके रसरंग को उकेरा भी है।

रेणु की कथा में नारी पात्रों की बहुतायत है, जिनमें कमली, लक्ष्मीदासी, रामपतिया, चुनमुन बाई, घंधी फूआ, गुणमंती मास्टरनी, गुलरी काकी, रामपियारी, बेला गुप्ता, ज्योत्सना आनंद, रामरति, नैना जोगिन की माँ, हीराबाई, आदि तो पाठकों के हृदय-पटल पर अपना स्थायी स्थान बना लेती है।

इन नारी पात्रों में 'विघटन के क्षण' की रत्ती-भर की चुरमुनिया भी है जो गंगापुर वाली दादी द्वारा पीटे जाने पर उसकी पोल खोलकर रख देती है तो 'परती परिकथा' की ताजमनी और नायक जित्तन की माँ भी जो ताजमनी और जित्तन के संबंध को स्वीकार तो करती है और बड़ी कुशलता से कि वह जित्तन की पत्नी की जगह न ले इसलिए उससे दो सत्त करा लेती है- एक यह कि वह जिद्दा से कभी एकांत में नहीं मिलेगी और दूसरा यह कि वह जिद्दा से आँखें चार नहीं करेंगी।

वहीं 'रसप्रिया' की रामपतिया भी है जो मिरदंगिया को अपना सबकुछ सौंप देती है पर जब वह उसके पेट में पलते बच्चे को स्वीकार करने से इंकार करता है और कमलपुर के नंदूबाबू से उसका रिश्ता जोड़ते हुए कहता है ''नंदूबाबू का घोड़ा बारह बजे रात को...'' तो सुनते ही रामपरिया चीखकर विरोध दर्ज करती है ''पाँचू....! चुप रहो'' फिर उसे जब लगता है कि पंचकौड़ी ने उसे छला

है तो वह उसके लौट जाने के बाद न उससे मिलने जाती है और अपने बेटे मोहना को भी उसके पास जाने से रोकती है।

ऐसी ही एक अन्य नारी पात्र 'नैना जोगिन' की नायिका रतनी है और उसकी माँ है जिसकी गालियों से समूचा गांव थर्राता है और वही उसका सुरक्षा कवच है। वहीं उसकी माँ की दबंगता तो इतनी है कि उसने अपने मुँह के जोर से पंद्रह एकड़ जमीन अरज ली।

कथा साहित्य के पाठकों के हृदय पर शाश्वत प्रेम की अमिट छाप छोड़ने वाली कमली और हीरा बाई जैसी पात्र अपना स्थायी स्थान बनाने में सफल रही है। वही स्थिति लक्ष्मी दासिन की भी है।

वहीं दूसरी ओर मलारी जैसी पात्र भी है जो विधवा होने के बाद भागकर अदालत जाकर शादी कर सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ती है। अपनी महत्वाकांक्षापूर्ति के निमित्त कुछ भी करने को आतुर 'दीर्घतपा' की ज्योत्सना आनंद जैसी नारी भी हैं जो तृप्ति के लिए मिसेज आनंद रहते हुए बांकेलाल से शारीरिक संबंध रखती है और जिसे हॉस्टल की लड़कियों से कालगर्ल का काम करवाने में भी गुरेज नहीं है और तो और अपने लाभ के लिए विभावरी का बलात्कार भी करवाती है। अन्य स्त्री पात्रों में विरजू की माँ प्रवासी होकर भी नवीनगर में आकर उस क्षेत्र के उत्थान के लिए सतत प्रयत्नशील ममता, फुलिया, सरस्वती देवी, गीता, बिजली आदि अनेकों नाम लिये जा सकते है।

रेणु की रचनाओं के नारी पात्रों के संबंध में उर्मिला शुक्ल के शब्दों में कहें तो ''रेणु अपने पात्र गांव की जमीन से उठाते हैं। .....उनका परिवेश अलग होता है। .....ये स्त्री पात्र कोई नारे नहीं लगातीं, अधिकांश विद्रोह भी नहीं करतीं।.....प्रतिरोध रचती हैं। यह प्रतिरोध इतना महीन होता है कि उपरी सतह पर कभी कोई हलचल भी नहीं होती और वे धीरे से अपने कदम आगे बढ़ा देती हैं।

■

आदिवासी जीवन का यथार्थ और 'मैला आँचल' में संथाल जीवन

डॉ. अभिषेक कुंदन

असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, जी.डी. कॉलेज, बेगूसराय

वर्तमान समय में हर एक तबका जो सदियों से साहित्य की परिधि से दूर रहा है, आज अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्य के दरवाजे पर निरन्तर दस्तक दे रहा है। इन्हीं समकालीन विमर्शों की उपज है 'आदिवासी विमर्श या आदिवासी साहित्य'। विशेष रूप से उस दौर में जब सामाजिक परिवर्तन में साहित्यिक भूमिका की बात की जाती है, वैसे समय में यह और भी प्रासंगिक हो जाता है। आज आदिवासी साहित्य के माध्यम से आदिवासी समाज के हर एक पहलू का चित्रण किया जा रहा है। मसलन आदिवासी जीवन पर कई उपन्यास लिखे गए हैं, जिनमें 'जहाँ बाँस फूलते हैं', 'धार', 'काला पादरी', अलमा कबूतरी, गमन, समर शेष है, पाँव तले की दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है आदि प्रमुख है। कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या आदिवासी जीवन का चित्रण हिन्दी साहित्य में बिल्कुल नया है या फिर इसकी थोड़ी-बहुत चर्चा पूर्ववर्ती साहित्य में भी दिखाई देती है? संभवतः फणीश्वरनाथ रेणु पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने 'मैला-आंचल' में संथाल आदिवासियों के जीवन-प्रसंगों का चित्रण किया है। लेखक ने इस उपन्यास में न सिर्फ उनके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन का वर्णन किया है, वरन् उनके जीवन संघर्षों का भी यथार्थ चित्रण किया है। 'मैला-आँचल' में संथालों का वर्णन रेणु ने अंचल के एक हिस्से के रूप में किया है, परंतु यह हिस्सा पूरे अंचल के सामाजिक, राजनीतिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ जाता है। संथालों द्वारा अपनी भूमि के लिए संघर्ष किया जाता है। संथालों द्वारा अपनी भूमि के लिए किया गया संघर्ष पूरे अंचल के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को झकझोर कर रख देता है।

वस्तुतः जिस अंचल की चर्चा रेणु करते हैं, वहाँ आज भी जनसंख्या का एक हिस्सा संथालों का है, ये मुख्य रूप से पूर्णिया, अररिया, किशनगंज, सुपौल आदि के इलाकों में रहते हैं। इन्हें 'सौतार' नाम से भी जाना जाता है और इनकी बस्ती को 'सौतारी' कहते हैं। आज से कई दशक पहले इनकी कर्मठता को देखकर वहाँ के जमींदार इन्हें कृषि कार्य के लिए संथाल परगना से लाए थे और इन संस्थालों ने जंगलों को काटकर कई सौ एकड़ धनहर खेत बनाए थे। अपने खून से इन मिट्टियों को सींचा था। धीरे-धीरे अपनी कर्मठता, सांस्कृतिक वैभव, रहन-सहन के कारण इन संथालों ने उन अंचलों में अपनी एक अलग पहचान बनाई, जिसका उल्लेख रेणु 'मैला-आंचल' में करते हैं।

■

'मैला आँचल' में चित्रित आदिवासी जीवन

सरोजनी गौतम
वरीय शोध प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

'मैला आँचल' में बिहार राज्य के पूर्णियाँ जिले के अति पिछड़े गाँव मेरीगंज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की कथा चित्रित है। फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' के माध्यम से भारत के समस्त ग्राम्य अंचल की दयनीय स्थितियों का यथार्थ दर्शन कराने का प्रयास किया है। इन्होंने मेरीगंज में निवास करने वाली उच्च, पिछड़ी, निम्न जातियों के साथ आदिवासी समाज की संथाल जनजाति के जीवन-संघर्ष को भी चित्रित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लिखे गए हिन्दी उपन्यासों में 'मैला आँचल' वह पहला उपन्यास है, जिसमें स्वयं के प्रति हो रहे शोषण व अन्याय के प्रतिरोध में आदिवासी समाज में उभरती चेतना के प्रसंग स्थापित हैं।

संथाल झारखण्ड राज्य की सबसे बड़ी आदिवासी जनजाति है, ये लोग संथाल परगना के सभी जिलों में निवास करते हैं। इनका मुख्य पेशा खेती करना है, इन्हीं संथाल जनजातियों ने मेरीगंज गाँव की हजारों बीघा बंजर जमीन तथा बड़े-बड़े जंगलों व कंटीली झाड़ियों को काटकर मोती जैसे दाने उगलने वाली कृषि योग्य भूमि में बदल दिया, किन्तु मजदूर के रूप में खटने वाला यह समाज उत्पादनकर्ता होने के बावजूद दाने-दाने को मोहताज है। इनके शोषण की कथा आज की नहीं बल्कि सदियों पुरानी है, नील की खेती होने के युग से लेकर भूमण्डलीकरण के इस दौर में भी वे असुरक्षित, शोषित व उपेक्षित हैं। भारत का मूल निवासी होने के बाद भी इन्हें बाहरी समझा जाता है। रेणु ने आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा के समाज की विकृत मानसिकता का भी चित्रण किया है। रेणु ने 'मैला आँचल' के कथानक में जातिवाद, अंधविश्वास, भ्रष्ट राजनीति, धार्मिक आडम्बर आदि समस्याओं के साथ जनचेतना और स्त्री-पुरुष के अनैतिक सम्बन्धों की भी अनेक कथाएँ दर्ज की हैं, जिनमें संथालों की बच्चियों, माँओं व औरतों के बलात्कार की घटनाएँ भी शामिल हैं। रेणु जी ने यह भी बतलाने का प्रयास किया है कि संवेदना व सहयोग का भाव रखनेवाला व्यक्ति भी किस तरह धनाढ्य जमींदारों के षड्यंत्र का शिकार हो जाता है। इसे अंग्रेज कलक्टर, कालीचरण, डॉक्टर की घटना में देखा जा सकता है। गरीब व सामान्य व्यक्ति को केवल जीने के लिए भी कितनी विषमताओं और अन्याय का सामना करना पड़ता है, 'मैला आँचल' में इसे देखा जा सकता है।

■

रेणु की कहानियों में राजनीतिक यथार्थ

कृष्णा अनुराग
कनीय शोधप्रज्ञ, हिन्दी-विभाग, ल. ना. मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, फोन- 8539028740

फणीश्वरनाथ रेणु प्रेमचन्द और यशपाल की परंपरा के कथाकार हैं। कारण यह कि चाहे वे किसी भी स्थिति- परिस्थिति का चित्रण कर रहे हों, येन केन प्रकारेण राजनीति उसमें समाहित हो ही जाती है। नवजात शिशु हो या युवक/युवती या कि बुजुर्ग हो उनके सामान्य जीवन का चित्रण करते हुए रेणुजी समकालीन राजनीति को वर्णनीय प्रकरणों से निश्चितरूप से जोड़ देते हैं। इतना ही नहीं वे पशुओं के जीवन को भी राजनीति से जोड़ने की कला में सिद्धहस्त दिखलाई पड़ते हैं। रेणु ने लोक-संस्कृति और लोक-चेतना को केंद्र में रखकर ही कहानियों का सृजन किया है, ऐसे में उनकी कहानियों में लोक-जीवन का शायद ही कोई पक्ष अछूता रहा हो। विचारणीय बिंदु यह है कि चाहे कहानी का केंद्रीय भाव कुछ भी क्यों न रहा हो, उनकी कहानियों में समकालीन राजनीति की एक सूक्ष्म अन्तर्धारा निरन्तर विद्यमान प्रतीत होती है। स्पष्ट है कि वे जनता और लोक के लेखक थे और जानते थे कि राजनीति से अलग कुछ भी नहीं है। हम चाहें न चाहें राजनीति हमें अपने साथ जोड़ ही लेती है। रेणु ने अंग्रेजों का शासन देखा और भारत को स्वतंत्र होते हुए तथा उसके बाद के युग को भी देखा। उनका प्रमुख लेखन-कार्य भारत की स्वतंत्रता के बाद ही दिखता है। इस संक्रमण-काल को बिल्कुल नजदीक से देखते हुए, खुद राजनीतिक आंदोलनों में शामिल होते हुए रेणु ने जब साहित्य सृजन किया तो उनके साहित्य में राजनीति के विभिन्न स्तर से लेकर राजनीतिक मोहभंग तक की रचनाएँ स्वाभाविक रूप

से मिलती हैं। अपने शोध-आलेख में मैंने रेणुजी की कहानियों के उन्हीं राजनीतिक द्वंदों-अंतर्द्वंदों को विश्लेषित करने की कोशिश की है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में चित्रित ग्राम्य समाज

अभिशेक कुमार सिन्हा
कनीय शोधप्रज्ञ, हिंदी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु अपने समय के महान साहित्यकारों में से एक थे। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा हिंदी साहित्य जगत को बहुत कुछ दिया है, जिसे हमेशा याद रखा जाएगा। खासकर उनकी महान आंचलिक कृति 'मैला आँचल' को, जिसमें उन्होंने बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के एक ऐसे क्षेत्र का वर्णन किया है, जो विभिन्न तरह की समस्याओं से घिरा हुआ है। वैसे इस उपन्यास में अंचल की सुंदरता और कुरूपता दोनों रूपों का चित्रण मिलता है और साथ ही जातिवाद, अफसरशाही, अवसरवादी राजनीति, मठों और आश्रमों में होने वाले पाखंड की भी भलीभाँति चित्रण देखने को मिलता है। रेणु जी इस उपन्यास की शुरुआत में ही लिखते हैं कि ''इसमें फूल भी है शूल भी धूल भी है, गुलाब भी कीचड़ भी है चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।'' रेणु जी की 'परती : परिकथा' उपन्यास को मैला आँचल की अगली कड़ी के रूप में देखा जाता है, जिसमें बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के ही परानपुर को अपना कथानक बनाकर उस क्षेत्र के जनजीवन की समस्याओं को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास देखने को मिलता है। इन उपन्यासों के अलावा रेणु के अन्य उपन्यासों जैसे 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे' और 'पल्टूबाबू रोड' में भी आँचलिकता की झलक देखने को मिलती है। किन्तु इन उपन्यासों में वह रंग नहीं दिखाई पड़ता ,जो रंग 'मैला आँचल' और 'परती : परिकथा' में बड़ी ही संजीदगी के साथ दिखाई पड़ता है। रेणु जी की रचनात्मक प्रक्रिया ही उनके व्यक्तित्व की विशेषता है। रेणु जी हिंदी साहित्य के ऐसे चितेरे रहे हैं जिनकी रचनाएँ अपने समय के विरुद्ध दिखाई देती हैं। फिर भी वे इन रचनाओं के माध्यम से समाज की उन समस्याओं को हल करने का प्रयास करते हुए दिखाई पड़ते हैं, जिन समस्याओं के कारण हमारे समाज की जड़े कमजोर होती हुई दिखाई पड़ती हैं।

■

रेणु के रिपोर्ताजों में सामाजिक यथार्थ

धर्मेन्द्र दास
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

रेणु हिन्दी के उन गिने-चुने रचनाकारों में से एक हैं, जिनका सीधा संबंध जनता और जन-आन्दोलनों से रहा है। रेणु जन-आन्दोलनों में न केवल सक्रिय रहे बल्कि उन्होंने इन जन-आन्दोलनों का नेतृत्व किया। इसलिए उनके लिखे गये रिपोर्ताज में एक तरफ पत्रकार के आँखों देखा सच और तथ्य है, तो दूसरी तरफ एक जन-आन्दोलन के नेता की पारखी दृष्टि और लेखक की भावुकता तथा संवेदना भी मौजूद है। उन्होंने इन तमाम रिपोर्ताजों में जनता की समस्याओं को उजागर किया है। उन्हीं में 'हडिड्यों का पुल' (1950), 'भूमिदर्शन की भूमिका' (1966), 'जै गंगा', 'डायन कोसी' आदि बिहार के बाढ़ और भूखमरी की दास्तान बयान करते हैं। इन रिपोर्ताजों में रेणु ने बाढ़ और अकाल की विभीषिका के चित्र तो खींचे ही हैं, साथ ही नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा देशसेवा और समाजसेवा के नाम पर लूट-खसोट करने की मनोवृत्ति पर तीखा व्यंग्य भी किया है।

रेणु के ये रिपोर्ताज न केवल उस दौर में मौजूद भ्रष्टाचार, घूसखोरी और सरकारी तंत्र पर प्रश्न उठाते हैं, बल्कि आज की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का भी पर्दाफाश करते हैं।

रेणु को देश की भौगोलिक बनावट और बुनावट, खास कर बिहार और उससे संलग्न इलाकों की, सही और सच्ची समझ थी। इसलिए वे यहाँ की समस्याओं से बखूबी परिचित थे। बाढ़ और अकाल जैसी भयावह प्राकृतिक आपदाएँ जहाँ किसान, खेतिहर मज़दूर के लिए जीने-मरने का सवाल बनकर खड़ी होती हैं, वहीं राजनेता, नौकरशाह, जमीन्दार बड़े पूँजीपतियों के लिए अवसर लेकर आता है। इन आपदाओं को लूट-खसोट, चोरी, घूसखोरी, पैसा कमाने का तरकीब बना लेते हैं। रेणु ने इस संबंध में लिखा है- ''इस भीषण अकाल के समय जमींदारों के यहाँ खीर-पूरी, मिठाई, हलवा व मांस आदि व्यंजनों की पार्टी उड़ायी जाती है, वहीं मजदूरों के यहाँ दाने-दाने के लाले पड़े हैं।'' इस तरह रेणु ने भारतीय समाज की विसंगतियों का उजागर कर उस पर करारा व्यंग्य किया है।

■

रेणु के कथा साहित्य में स्त्री-मनोविज्ञान

डॉ. स्वाती कुमारी
पूर्व-शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु ने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, मजबूरी और गरीबी को देखा था, इसलिए वह उसके साथ कोई सैद्वान्तिक खिलवाड़ नहीं कर पाते। ग्रामांचल की तह में घुसकर उसके शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श को समग्रता में चित्रित करने वाले वे अकेले और अद्वितीय कथाकार हैं। रेणु जी की प्रायः सभी कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की संस्कृति पर आधारित हैं। इनके नारी पात्रों में ग्रामीण नारी की अधिकता है। भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति, दशा, इच्छा, मानसिकता को रेणु जी ने कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। रेणु जी ने अपने कथा-साहित्य में स्त्री के स्वरूपों की विविधता को दर्शाया है। ग्रामीण और शहरी परिवेश में महिलाओं का चित्रण इनके कथा-साहित्य में हुआ है। कहीं ग्रामीण स्त्री की सीधी-साधी सोच, छोटी इच्छा तो कहीं शहर की आधुनिक स्त्री की सोच और इच्छा को दर्शाया है। इनके कहानी संग्रह हैं-ठुमरी, आदिम रात्रि की महक, अग्निखोर, एक श्रावणी दोपहरी की धूप और अच्छे आदमी। अपनी कहानियों के माध्यम से रेणु जी ने आँचलिक जीवन की छोटी-छोटी खुशियों को बहुत ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

■

रेणु साहित्य में शोषितों-पीड़ितों की समस्या

डॉ. कुमारी निश्चय
पूर्व-शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में शोषितों-पीड़ितों की समस्या का चित्रण साफ तौर पर दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य में दलित बहुजन विमर्श को केन्द्रीय विषय बनानेवाले रचनाकारों में फणीश्वरनाथ रेणु महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी रचनाओं के द्वारा आँचलिक साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। इसके बावजूद रेणु ने किसी की आलोचना की परवाह किए बिना कई विषयों को व्यापक तौर पर विस्तार से वर्णित किया है।

फणीश्वरनाथ रेणु शोषितों और दलितों के समाज की समस्या को आगे लेकर आए। इनकी रचनाओं में देश, समाज की असमानता, असंगतियाँ, सामाजिक- राजनीतिक चेतना, देश की माटी से जुड़े जन-सवाल, जन-आन्दोलन, जन-संस्कृति आदि जन-भाषा को लेकर जीवंत हुए हैं। कोसी अंचल के गहरे लगाव को जीवंत किया है। कई जन सवालों में विभक्त स्थानिक माटी की गंध को सांस्कृतिक आयाम के द्वारा जन-जीवन का आत्मीय संबंध स्थापित किया। रेणु ने जन-चेतना से भारत-भूमि में स्थित पूर्णियाँ अंचल की माटी से मानव जीवन के भावनात्मक संबंधों का ऐसा चित्रण किया कि कोसी की माटी में रेणु ने अपनी छाप छोड़ दी। रेणु का साहित्य गीतों की गोद में पले-बढ़े धूल-धूसरित और कीचड़-युक्त माटी में उपजी अनुभूतियों को साहित्य में लाकर

अंचल के जीवन और उसकी संस्कृति को जीवंत किया है। रेणु ने कर्म के द्वारा भावनात्मक संबंध को कोसी के किनारे बसे पूर्णियाँ की माटी का ऐसा चित्रण किया कि इस धरा पर बसे समाज, इतिहास, संस्कृति, राजनीति, संवेदना, बोली, भाषा तथा मुहावरा और देश के पात्रों के अलावा प्राकृतिक विपदा बाढ़, सुखाड़, अकाल आदि के दंश को झेलने वाले इंसान के बारे में रेणु ने अपने साहित्य में उतारा।

कोसी के दुःख-दर्द को रेणु ने भोगा और वहाँ भोगे हुए सत्य से उत्पन्न संवेदना को साहित्य में उतारा। 4 मार्च 1921 को पूर्णियाँ जिले के फारबिसगंज प्रखंड के औराही हिंगना गाँव (वर्तमान में अररिया जिला) के सम्पन्न किसान परिवार में जन्मे रेणु ने लेखन शुरू किया, पहली कहानी 'बटबाबा' 1945 में विश्वामित्र, साहित्यिक अखबार और पहला रिपोर्ताज 'विदापतनाच' (1945) से शुरू किया। रेणु का सृजनात्मक सफर 'मैला आंचल' (1954) और 'परती : परिकथा' (1957) तक जैसे ही पहुँचा, हिन्दी साहित्य लोक रंग में रंग गया। लोक जीवन के गीत से सजा हिन्दी साहित्य पहली बार जीवंत हुआ। हिन्दी में उपजे स्थानीय मुद्दों को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय नई पहचान मिली। रेणु सच्चे अर्थों में देहाती दुनिया के साहित्यकार हैं। लोकगीत के बारे में रेणु ने लिखा है- ''हर मौसम में मेरे मन के कोने में लोक गीत गूँजने लगते हैं।'' (रेणु रचनावली, राजकमल प्रकाशन)

रेणु के लेखन में ग्राम्य सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन : रेणु का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन अलग नहीं था। वे खेत, खलिहान, गाँव तथा समाज का वर्णन करते थकते नहीं हैं। गाँव पहुँचते ही गाँव में रम जाते हैं। समाज में व्याप्त गरीबी, भूख, अंधविश्वास का वर्णन करते हुए रेणु मानवीय संवेदना को उजागर करते हैं। उनकी रचनाओं में ग्रामीण परिवेश अच्छे से दिखाई देता है। विरहा, प्रभाती, समदाउन, फगुआ, बंगला गीत, बाउल के अलावा लोरिक, विजेभान, सदाबिज, विदापत नाच आदि के माध्यम से ग्रामीण समाज के रीति-रिवाज, रहन-सहन के साथ-साथ उसकी प्रवृत्ति और उसकी संस्कृति का वर्णन करते थकते नहीं हैं।

रेणु का राष्ट्र और रेणु का समाज : रेणु ने जीवंत कथा-अंचल के पात्रों को कर्मठ, स्वाभिमानी और संघर्षशील बताया है। गरीब, दलित, पिछड़े समाज के पात्रों का चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया है। कालीचरण, बावनदास, सिरीचन, हरगोबिन, लक्ष्मीदासिन सहित कई पात्र देश और समाज के सच्चे पात्र हैं। रेणु का प्रभाव इतना अधिक है कि अंचल की जीवंतता झलक पड़ती है। इसलिए रेणु के उपन्यासों का नायक कोई पात्र नहीं, बल्कि परिवेश या अंचल ही रहा है।

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश

डॉ. नेहा कुमारी

पूर्व-शोध-छात्रा, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

हिन्दी साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु एक ऐसा नाम है, जिन्होंने स्थानीयता और यथार्थवाद को स्थापित किया। लेखन-कार्य में पूर्णतया प्रवृत्त होने से पहले, रेणु एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता थे। रेणु एक आदर्शवादी स्वप्नद्रष्टा की निष्ठा और एक संवेदनशील व्यक्ति की आतुरता को लेकर राजनीति में शामिल हो गये थे। यही कारण है कि राजनीति के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म दाव-पेंचों का पूरा परिचय उनके उपन्यासों में मिलता है। फणीश्वरनाथ रेणु के अधिकांश उपन्यास स्वतंत्रता-पूर्व अथवा स्वतंत्र भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर रचित हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के पवित्र लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जिस ईमानदारी और निष्ठा से संघर्ष किया गया, स्वतंत्रता के पश्चात् उन सबका लोप हो गया। विदेशी दासता से मुक्त करवाकर भारत का उद्धार करने वालों ने ही उसे पतन के गर्त में धकेलना आरम्भ कर दिया। पदलिप्सु और सत्तालोभी लोगों के हाथ में शासनव्यवस्था आ गई। ग्रामीण परिवेश पर भी इस परिवर्तित राजनीतिक स्थिति का प्रभाव पड़ा है। स्थिर एवं जड़ ग्रामीण समाज को राजनीति ने हिलाकर रख दिया है। स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण परिवेश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही वस्तुतः वहाँ की राजनीतिक चेतना का मूल उत्स मानी जा सकती है। मूढ़ अशिक्षित गाँव की मानसिकता पार्टियों के मर्म को समझने में नितांत अक्षम होती है और इस प्रकार नवागत राजनीतिक परिवर्तन एक धक्के की भाँति गाँव को टक्कर मार उसे तोड़ते हैं। सरकार के जमींदार-उन्मूलन ने गाँववालों को एक ओर तो जमींदारों के आतंक से विमुक्त किया है किन्तु दूसरी ओर अपनी अधिकार-सत्ता बनाए रखने के आकांक्षी जमींदारों-सामन्तों ने ग्राम पंचायतों के मुखिया बन अपने आततायी रवैये को पूर्ववत्

जारी रखा है। इस समय गतिमान राजनीतिक स्थिति का कैसा प्रतिबिम्ब सामान्य ग्रामीण भारतीय जनता के मानस पर पड़ा है, इसका यथार्थ चित्र रेणु के आंचलिक उपन्यासों में मिल जाता है।

ग्रामीणों की स्थिति स्वतंत्रता के बाद अधिक जटिल हो गयी। 'रेणु' के उपन्यासों में इन स्थितियों का विस्तृत विवरण सप्रसंग मिलता है। ''वहाँ ग्रामीण जनता की वास्तविक तस्वीर एक 'त्रासद भाव' के रूप में विद्यमान है। इस स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन एक नयी जागरूकता से होता है। यह नयी जागरूकता ग्रामीण क्षेत्रीय इकाइयों में राजनैतिक दलों की छिटपुट गतिविधियों का ही परिणाम है जो हमें अत्यन्त अर्थपूर्ण रूप में रेणु के सभी उपन्यासों में मिल जाती है।''

रेणु ने अपने उपन्यासों में जगह-जगह यह दिखाया है कि ''स्वतंत्रता के बाद हमारे देश में प्रजातंत्र आया और गाँव झूठे आश्वासनों के रेशमी धागों में बँध गया। नेताओं की छलपूर्ण नीतियों ने गाँव को और ग्राम समाज को तोड़ा। ग्रामीण जनता को स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी न्याय नहीं मिला जिससे कि वे अपने अंचल के लोक-जीवन और वहाँ के नैसर्गिक जीवन का आनंद ले सकें। किसानों और सामान्य जनता के साथ होने वाला यह अन्याय रेणु के प्रत्येक उपन्यास में उपलब्ध है।''

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में स्वतन्त्रता के पूर्व और स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद की राजनीति से प्रभावित ग्रामीण समाज के यथार्थ चित्र खींचने का जोरदार प्रयास किया गया है। निश्चय ही रेणु ने उपन्यासों के माध्यम से राजनीतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में गीतात्मक प्रयोग

डॉ. शम्भू कुमार

यू.जी.सी.नेट, पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के प्रकरण तीन में हिन्दी-काव्य-धारा के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को स्थापित किया है। वह सिद्धांत साहित्य-भाषा और लोक-भाषा के आंतरिक सम्बन्धों पर जोर देता है। दूसरी बात यह है कि रामचन्द्र शुक्ल ग्रामगीतों के महत्त्व को समझते थे तथा उसे साहित्य की मुख्यधारा में जगह देने के हिमायती भी थे। रेणु की कहानियों में प्रयुक्त लोक-गीतों की महत्ता भी इससे प्रतिपादित होती है। सबसे पहले रामचन्द्र शुक्ल के विचारों को देखें- "पंडितों की बँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छंद और प्राकृतिक भाव धारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है-ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत काल से स्थिर चली आती हुई पंडितों की साहित्य-भाषा के साथ-साथ लोक-भाषा की स्वाभाविक धारा भी बराबर चलती रहती है। जब पंडितों की काव्य-भाषा स्थिर होकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ती हुई लोक भाषा से दूर पड़ जाती है और जनता के हृदय पर प्रभाव डालने की उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है, तब शिष्ट समुदाय लोक-भाषा का सहारा लेकर अपनी काव्य परंपरा में नया जीवन डालता है।"

■

'रेणु' के नाम बड़ी बहुरिया का पत्र

गायत्री कुमारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

मरी हुई मिट्टी पर पलने वाले जीव अपने संघर्ष और जुनून से जिंदा रहने की कोशिश करते हैं लेकिन हमेशा ही हार जाते हैं। यह हार किसी एक व्यक्ति की हार नहीं है, बल्कि यह पूर्वांचल की, मिथिला की, कोसी कछार की साथ ही हर उस गाँव की सामूहिक हार है जो वर्षों से छोटे-छोटे स्वप्न, जिज्ञासा को लेकर जी तोड़ परिश्रम करते आ रहे हैं। ऊपर से कालाजार, मलेरिया

टाइफाइड और न जाने सौ तरह के रोग इस क्षेत्र के लोगों का जीना दूभर करते रहे हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि रेणु मरी हुई मिट्टी पर पलने वाले आम अवाम के बड़े लेखक हैं। डायन कही जाने वाली 'कोसी' किस तरह की डायन है, इसका सबसे बड़ा उदाहरण है रेणु की कहानियाँ। हड्डियों का पुल (रिपोर्ताज) पर चढ़कर मेरीगंज, फारबिसगंज, सिमराही, औराही हिंगना, पूर्णियाँ, वीरपुर, भवटियाही, सहरसा इत्यादि जगहों के लोग अपना जीवन यापन करते रहे हैं। यह पुल आज के 'गाँधी सेतु' की तरह बिल्कुल नहीं है, जिसने दो भागों में बँटे बिहार और देश के पूर्वोत्तर राज्यों के लोगों को आपस में जोड़ दिया। 'मैरी' का बाद में गंज होकर रह जाना भी एक बड़ी घटना थी जो इस बात का प्रमाण है कि आदमी चाहे जितना भी संपन्न रहा हो इस क्षेत्र की भौगोलिक संरचना उनकी जिंदगी और मौत का फैसला करती रही है। मिस मैरी की मृत्यु एक अंग्रेज अफसर की पत्नी की मृत्यु मात्र नहीं थी, जिसे एक व्यक्ति समझकर दरकिनार किया जाए, बल्कि हजारों हजार माँ और बहनों का जिंदा सच है, जो कोसी के गाँवों में ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देती है, वे अस्पताल तक नहीं पहुँच पाती। वजह कालाजार, मलेरिया और टाइफाइड। इतिहास में जब नदी सूख गयी थी, तब दुनिया के सबसे प्राचीन सभ्यता का अंत हो गया। कोसी के टूटते तटबंध रातों-रात कई गांवों को नेस्तनाबूत करती रही। उस समय गाँव का सामूहिक विलाप सरकार के लिए किसी ग्राम गीत के सामूहिक प्रलाप जैसा ही रहा होगा! शायद। नाव डुबती नहीं, रेणु के यहाँ दहा जाती है। रात में जब लोग कमर भर पानी में गाँव खाली करके ऊँचे स्थान पर जा रहे होते हैं तब पानी छप-छप करता है। एक साथ सैकड़ों जिंदगी के खत्म हो जाने की सामूहिक पीड़ा भोगने वाले लेखक की रचनाएँ आजीवन ऐसे ही लोगों की वेदना से छटपटाती रहती हैं। रेणु की रचनाओं में आम-अवाम का जीवन दिखाई पड़ता है। रेणु की कहानियाँ हर समय गाँव की औरतों की सामूहिक पीड़ा को बड़ी जिम्मेदारी से रेखांकित करते आ रही हैं। ये समस्याएँ भले सत्तर साल पुरानी ही क्यों न हों, समाज आज भी इससे पार नहीं पाया है। 'रेणु' की कहानियों का जिंदा सच यह भी है कि समस्याएँ आज भी जस-की-तस बनी हुई हैं। जब तक समस्याएँ हैं, रेणु की कहानियाँ समाज को कोसती रहेंगी।

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' : चिन्तन एवं सृजन संसार

सियाराम मुखिया

शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिंदी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की प्रतिभा का प्रकाश हिन्दी कथा-साहित्य में फैला है। यह एक ऐसा अलौकिक प्रकाश है जो अपनी मिट्टी की सोंधी खुशबू लिए जनकल्याण हेतु समर्पित है। उन्होंने अपनी कला, कौशल, चिन्तन, प्रखर दृष्टि, सामाजिकता और मानवीय संवेदना को जिस प्रकार अपने सृजन-संसार में समावेश किया है, वह अपने-आप में अद्वितीय है।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में 'रेणु' उन थोड़े से कथाकारों में अग्रगण्य हैं जिन्होंने भारतीय ग्रामीण जीवन का उसके सम्पूर्ण आन्तरिक यथार्थ के साथ चित्रण किया है। स्वाधीनता के बाद भारतीय गाँव ने जिस शहरी रिश्ते को बनाया और निभाना चाहा है, रेणु की नजर उससे होनेवाले सांस्कृतिक विघटन पर भी है, जिसे उन्होंने गहरी तकलीफ के साथ उकेरा है। मूल्य-स्तर पर इससे उनकी आँचलिकता अतिक्रमित हुई है और उसका एक जातीय स्वरूप उभरा है।

वस्तुतः ग्रामीण जन-जीवन के संदर्भ में रेणु की रचनाएँ अकुंठ मानवीयता, गहन रागात्मकता और अनोखी रसमयता से परिपूर्ण है। यही कारण है कि उनमें एक सहज सम्मोहन और पाठकीय संवेदना को परितृप्त करने की अपूर्ण क्षमता है। मानव-जीवन की पीड़ा और अवसाद, आनन्द और उल्लास को एक कलात्मक लय-ताल में सौंपना किसी रचनाकार के लिए अपने प्राणों का रस उड़ेलकर ही सम्भव है और रेणु ऐसे ही रचनाकार हैं। रेणु की रचनाएँ हिन्दी कथा-साहित्य की संजीविनी साबित हुई है, जिसमें प्राण-तत्त्व मौजूद है।

■

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के साहित्य में ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति

सुश्री नन्दनी कुमारी
शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय-हिंदी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि रेणु की कहानियों के अधिकांश पात्र मैथिल अंचल के ग्रामीण भागों के रहने वाले हैं। उनके पात्रों के नाम सिरचन, गोधन, हीरामन आदि हैं। लेखक ने एक ही स्थान पर पात्रों के परिचय और रूप का वर्णन न करके कहानियों में बातचीत के बीच अपने पात्रों का इतिवृत्त और परिचय दिया है। रूप-रंग का वर्णन करने की विशेष प्रवृत्ति यहाँ नहीं दिखाई पड़ती है। जहाँ-तहाँ कुछ-एक बातों को वे रखते चले गये हैं। 'तीसरी कमस' की हीराबाई का रूप-वर्णन अंशों में जहाँ-तहाँ बिखरा हुआ है। उसका गुजुर-गुजुर हेरना, होठों की लालिमा आदि का वर्णन तो स्वभावतः अलग-अलग स्थानों पर हुआ है। हँसते समय हीराबाई की देह दुलकती है और हीरामन की देह दुहरी हो जाती है। इतना ही नहीं मूक बैलों तक के चित्र आँखों के सामने दिखने लगते हैं। बाघ-गाड़ी में जुतते समय हीरामन के एक बैल ने ढेर-सा पेशाब कर दिया था। वे ही बैल हीराबाई का एकान्त मार्ग पर से ले जाते समय महुआ घटवारिन के गीत के छिड़न पर दुलत्ती चाल छोड़कर कदम चाल पकड़ लेते हैं।

आँचलिक कहानियों के कथोपकथन ज्ञान की ऊहापोह से सर्वथा युक्त होते हैं। उनके संवादों में हास्य रस की चासनी के साथ-साथ व्यंग्य और कटाक्ष की फुहारें भी मिलती हैं। जहाँ ये संवाद आँचलिक चरित्रों की अशिक्षा और मूढ़ता को मूर्तिमान करते हैं। वहीं उनकी हास्य-प्रियता और मानवीयता को भी उभारते चलते हैं।

■

'मैला आँचल' का कथ्य एवं शिल्प

सावित्री कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

'मैला आँचल' रेणु जी का आँचलिक उपन्यास है। इसमें नेपाल की सीमा से सटे उत्तर-पूर्वी बिहार के एक पिछड़े गाँव के परिवेश का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में रेणु जी ने अपने जीवन से जुड़ी घटनाओं का विश्लेषण किया है। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति का जीवन्त वर्णन किया गया है। यह उपन्यास स्वतंत्रता के तुरंत बाद का उपन्यास है, इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है, कीचड़ भी है। इस उपन्यास में पूरे मेरीगंज का दृश्य दिखाई पड़ता है। यह उपन्यास किस्सागो शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा सृजनात्मक एवं प्रयोगशील है। जिस उपन्यास में किसी अंचल, प्रदेश का जीवन्त यथार्थ वर्णन होता है, वह आँचलिक उपन्यास कहा जाता है। इस उपन्यास में रेणु जी ने मेरीगंज गाँव की समस्या का यथार्थ चित्रण किया है। इसमें लोक गीत, लोककथाएँ, लोकसंगीत, ग्रामीण परिवेश सभी का चित्रण है।

1954 में प्रकाशित 'मैला आँचल' उपन्यास रेणुजी की प्रसिद्धि का कारण है। इसमें जातीय झगड़ा, छूआछूत का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा सरल है। यह व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। पूरी कथा का नायक अंचल ही है। रेणु जी की भाषा-शैली में एक चमत्कार है, जो पाठकों को बाँधकर रखता है। इसमें एक नये शिल्प में ग्रामीण-जीवन को दिखाया गया है। इसमें अंचल की सुन्दरता व कुरूपता दोनों का गहरा चित्रण किया गया है। इसमें जातिवाद, अफसरशाही, अवसरवादी, राजनीतिक मठों और आश्रमों का पाखण्ड वर्णन किया गया है। यह उपन्यास कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर सबसे अलग है। यह उपन्यास मिथिलांचल की पृष्ठभूमि पर रचा गया है। इसमें अंचल भाषा-विशेष का अधिक प्रयोग हुआ है। उपन्यास के मुख्य पात्र डॉ. प्रशान्त बनर्जी हैं, जो पटना के एक प्रतिष्ठित मेडिकल कॉलेज से पढ़ने के बाद अनेक आकर्षक प्रस्ताव ठुकराकर मेरीगंज में मलेरिया और कालाजार पर शोध करने के लिए आते हैं। मेरीगंज में मलेरिया केन्द्र खुलने से वहाँ के लोगों में हलचल उत्पन्न

होती है। यहाँ के लोगों की भूत-प्रेत, टोना-टोटका, झाड़-फूँक में विश्वास करनेवाली अंधविश्वासी परम्परा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसके साथ ही यहाँ जाति व्यवस्था भी अपने कट्टर रूप में दिखाई देती है। इस उपन्यास में मेरीगंज का सम्पूर्ण जीवन अंकित हुआ है, किन्तु जिस समस्या को उपन्यासकार ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है, वह है आर्थिक समस्या।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में व्यक्त संवेदना-संदेश

डॉ. पूजा सिन्हा

पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु के उपर्युक्त दो प्रारंभिक आँचलिक उपन्यासों में ही उनकी समस्त औपन्यासिक कथाओं की संवेदना निहित है। यों उनके इन दो उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य उपन्यास हैं-'कितने चौराहे', 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'पल्टू बाबू रोड' एवं 'ऋणजल धनजल'। लेकिन हमारे विवेचन के केंद्र में ऊपर लिखित 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' ही होंगे, जिनके संवेदना-संदेश की हम पड़ताल करेंगे। यहाँ इतना उल्लेख करना कदाचित् अप्रासंगिक नहीं होगा कि स्वतंत्रता-पूर्व भारत का प्रथम आँचलिक हिन्दी उपन्यास शिवपूजन सहाय कृत 'देहाती दुनिया' है और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास 'मैला आँचल' के दो वर्ष पूर्व सन् 1952 में प्रकाशित नागार्जुन के 'बलचनमा' को परिगणित किया जा सकता है। लेकिन ये दोनों उपन्यासकार अपनी इन औपन्यासिक कृतियों को 'आँचलिक उपन्यास' नाम नहीं दे पाए। वे बौराए कस्तूरी-मृग की भाँति अपने नाभि-नाल में निहित एवं प्रसरित सुगंध को महसूस और परख नहीं पाए। रेणु ने इसे महसूसा और परखा। उन्होंने अपने 'मैला आँचल' को 'आँचलिक उपन्यास' नाम दिया। फलतः उनके सिर आँचलिक उपन्यासकार होने का सेहरा सजा।

रेणुजी 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखते हैं- ''यह है मैला आँचल। एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र बनाया है।'' फिर तो उन्हें इसका एक ख्याति प्राप्त समालोचक भी मिल गया। वे थे आचार्य नलिन विलोचन शर्मा। उन्होंने इसकी आँचलिकता का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया। कहना नहीं होगा कि रिपोर्ताज शैली में लिखा यह उपन्यास अपने आंचलिक शिल्प तथा यथार्थ जीवन की तीक्ष्णता एवं जीवंतता के साथ हृदय की सच्ची अनुभूति एवं सरस अभिव्यक्ति के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य जगत में एक विशिष्ट स्थान एवं पहचान कायम कर चुका है।

'मैला आँचल' (जिसमें कोई क्रमबद्ध कथानक नहीं, मात्र घटनाएँ-परिघटनाएँ हैं) तथा 'परती परिकथा' (जिसे हम प्रतीकात्मक उपन्यास कह सकते हैं) इस बात के साक्षी हैं कि फणीश्वरनाथ रेणु में उत्सफोटी (एक्सप्लोसिव) प्रतिभा था; क्योंकि वे हिन्दी साहित्याकाश में एकबारगी प्रखर रवि-रश्मि के साथ उगे और साहित्य जगत में छा गए। लेकिन उनकी वह उत्सफोटी प्रतिभा जनन (जेनरेटिंग) प्रतिभा में नहीं बदल पायी। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त दोनों उपन्यासों के बाद की औपन्यासिक रचनाओं में उनकी वह प्रतिभा और प्रखरता रीत-सी गयी लगती है।

■

आँचलिक कथाकार रेणु

सरिता कुमारी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी गद्य साहित्य के ऐसे शिल्पकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से न सिर्फ हिंदी गद्य साहित्य को समृद्ध किया बल्कि एक नई धारा 'आँचलिकता' को भी जन्म दिया है। इन्हें आँचलिकता का चक्षु कहा जाता है। इनकी रचनाओं में विवशताओं एवं अभाव से जूझते हुए समाज को दिखाया गया है। ये शुष्क होती जा रही जिंदगी में रस तलाशने वाले रचनाकार हैं। रेणु जी लोककला मूल्यों के संरक्षक है। इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि काल्पनिक न होकर यथार्थ पर आधारित है। इनकी हरेक

रचना में एक गहरी संवदेनशीलता देखने को मिलती है। इनकी भाषा-शैली अत्यन्त सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। भाषा में भावों को स्पष्ट कर देने की क्षमता इनमें विद्यमान है। प्रेमचंद के बाद हिंदी कथा-साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु ही ऐसे कथाकार हैं जिनकी रचनाओं में जीवन की यथार्थता को सम्पूर्ण विश्वसनीयता के साथ देखा जा सकता है। इनकी हरेक रचना पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाने वाली है। इन्होंने गद्य की अनेक विधाओं में रचना की है। उपन्यास, कहानी, रिपोर्ताज, संस्मरण, निबंध, साक्षात्कार, रेखाचित्र, हास्य-व्यंग्य, पत्र-डायरी, नाटक, पटकथा, अनुवाद, गद्य-गीत आदि के माध्यम से हिंदी गद्य को समृद्ध किया है। पर सर्वाधिाक ख्याति इन्हें उपन्यासकार के रूप में ही मिली है। 'मैला आँचल' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। यह एक आँचलिक उपन्यास है। फणीश्वरनाथ रेणु एक यथार्थवादी कथाकार हैं। रचनाधर्मिता के क्षेत्र में इनकी दृष्टि बहुत ही पैनी एवं स्वच्छ है। इनकी रचनाओं में उस समय की सामाजिक-राजनीतिक चेतना को भी बखूबी देखा जा सकता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन की हर धुन, गंध, लय, सुर को शब्दों में बाँधने की सफल कोशिश की है। इनकी भाषा शैली में एक विशिष्ट चमत्कार है जो पाठक को बाँधकर रखना जानता है। यही कारण है कि इनकी किसी भी रचना को पाठक पूरा किये बगैर छोड़ नहीं सकता है। इनका जीवन और साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। इन्होंने भोगे हुए यथार्थ को अपनी रचना का माध्यम बनाया। इनकी रचनाओं में मूलतः गाँव है। ये मानव-चरित्रों के चितेरे थे। पात्रों का चरित्र-निर्माण काफी तेजी से करते थे। किसी भी पात्र को ज्यादा देर एक जगह टिकने नहीं देते हैं। घटनाएँ फिल्म के तरह घटती रहती हैं। रेणु प्रायः अपनी रचनाओं में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जो गँवई चरित्रों के अनुरूप ही दृष्टिगत होता है। इन्होंने हरेक विधा में एक नया प्रयोग किया है। पहले से चली आ रही लेखन परम्परा की शैली से हटकर इन्होंने कलम चलाए हैं। चाहे वह उपन्यास हो या कहानी, रेखाचित्र हो या डायरी सब में एक नयापन देखने को मिलता है। लोक-जीवन के राग-अनुरागों, उनकी समझ, उनकी संवेदना और विवेक को उन्होंने अपने अंदाज में पकड़ने की कोशिश की है। इनके आने से हिन्दी साहित्य लोक रंगों में रंग गया। इनकी भाषा शैली प्रसाद गुणों से युक्त-सरल एवं सहज है। वस्तुतः रेणु ने गद्य-साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। सभी रचनाओं में जीवन के स्पन्दन को सुरक्षित रखते हुए उसके ढ़ाँचे को एक नया रूप प्रदान किया है। इन्होंने गद्य को एक नई अर्थवत्ता और नवीन व्यंजना शक्ति प्रदान की है। जिस समग्रता और वैज्ञानिकता के साथ अपनी विचारधारा अपनी रचनाओं के माध्यम से पाठक के समक्ष रखते हैं, वह उन्हें एतदर्थ अप्रतिम रचनाकार घोषित करता है। वे एक यथार्थवादी कथाकार थे।

■

फणीश्वरनाथ रेणु और उनका 'मैला आँचल'

ममता कुमारी
शोध छात्रा, हिन्दी, नेट

फणीश्वरनाथ रेणु (1921-1977ई0) हिन्दी के श्रेष्ठतम आँचलिक कथाकार हैं। कहानी और उपन्यास दोनों ही कथा-विधाओं को उन्होंने नई शैली दी। 1945 ई. में उनकी पहली कहानी 'बटबाबा' प्रकाशित हुई। 1959 ई. में उनकी नौ कहानियों का संग्रह 'ठुमरी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। 1967 ई. में उनका दूसरा कहानी-संग्रह 'आदिम रात्रि की महक' छपा जिसमें तेरह कहानियाँ संकलित थीं। उनका तीसरा कहानी संग्रह 'अग्निखोर' 1973 ई. में प्रकाश में आया। इस संग्रह में बारह कहानियाँ थीं। 'रसप्रिया', 'ठेस', 'पंचलाइट', 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुलफाम', 'लालपान की बेगम', 'नैना जोगिन', 'अग्निखोर' और 'आत्मसाक्षी' जैसी कहानियाँ एक कालजयी कहानीकार के रूप में रेणु को प्रतिष्ठित करती हैं।

रेणु के निधन के बाद उनकी कहानियों का एक और संग्रह प्रकाशित हुआ-'एक श्रावणी दोपहरी की धूप' (1985 ई.)। उन्होंने संस्मरण और रेखाचित्र भी लिखे। 'नेपाली क्रान्ति कथा', 'ऋणजल धनजल' और 'वनतुलसी की गंध' उनकी प्रमुख गद्य पुस्तकें हैं। उन्होंने रिपोर्ताज विधा को जीवन्त बनाया। उनके छह उपन्यास प्रकाशित हैं- 'मैला आँचल' (1963 ई.), 'परती परिकथा'(1957 ई.), 'दीर्घतपा'(1963 ई.), 'जुलूस' (1965 ई.), 'कितने चौराहे' (1966 ई.) और 'पल्टु बाबू रोड' (1979 ई.)।

'मैला आँचल' रेणु का ही नहीं, हिन्दी का श्रेष्ठतम आँचलिक उपन्यास है। 1954 ई. में प्रकाशित उनके प्रथम उपन्यास

खासकर आँचलिक उपन्यास जगत का सबसे चमकता सितारा बना दिया। 33 वर्ष की उम्र में शायद कम ही रचनाकार इतनी ख्याति अर्जित कर पाते हैं। इस उपन्यास ने उन्हें आँचलिक उपन्यासकार की श्रेणी में सबसे आगे खड़ा कर दिया।

अपने इस प्रथम उपन्यास की संक्षिप्त भूमिका में उन्होंने लिखा है- यह 'मैला आँचल' एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णियाँ। पूर्णियाँ बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इनकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्षिण संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएँ खींच देते है। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी-मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।

यह संक्षिप्त भूमिका उपन्यास की मूल संवेदना और शिल्प-विधि का आभास करा देती है। 'आँचलिक' उपन्यास शब्द वस्तुतः पहली बार प्रयोग में आया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उपन्यास की यह धारा पहली बार रेणु के इस उपन्यास से निकली है। 1926 ई. में प्रकाशित 'देहाती दुनिया' भी मूलतः आँचलिक उपन्यास ही है। इसके संबंध में 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' के लेखक गोपाल राय ने बिलकुल ठीक लिखा है- ''शिवपूजन सहाय ने 'देहाती दुनिया' लिखकर उपन्यास की संरचना विषयक अवधारणा को एक चुनौती दी थी। यह उपन्यास उस समय उपन्यास के स्थापत्य के संबंध में प्रचलित धारणा का निषेध करता है। देहाती दुनिया वस्तुतः ग्रामीण जीवन के अनेक प्रसंगों का संकलन है। इसमें भोजपुर अंचल की अनेक झाँकियाँ, जो बिल्कुल वास्तविक हैं, बोलचाल की सजीव भाषा में ज्यों-की-त्यों रख दी गई हैं। 1952 ई. में प्रकाशित 'बहती गंगा' में भी आँचलिकता के कुछ सूत्र मिलते हैं, किन्तु उपन्यास की प्रबल धारा के रूप में प्रवाहित करने का वास्तविक श्रेय रेणु और उनके 'मैला आँचल' को ही है।

■

हिंदी साहित्य के अमूल्य धरोहर : फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज

कृष्ण कुमार
शोधार्थी, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

फणीश्वरनाथ रेणु के जन्मशती के अवसर पर उनकी रचनाओं को नये सिरे से खंगाला जा रहा है। ऐसा कोई पहली बार नहीं हो रहा है। इससे पहले भी अनेक विद्वानों और शोधार्थियों ने रेणु के साहित्य और उनके रचना-संसार पर अलग-अलग दृष्टिकोण से शोध किया है। इसके बावजूद आज भी उनके रचना-संसार में कई बिन्दु ऐसे हैं, जिन पर शोध किये जाने की संभावना बची हुई है। मेरा उद्देश्य रेणु के रचना-संसार पर किये जाने वाले शोध की संभावनाओं का जिक्र करना नहीं, बल्कि रेणु के रिपोर्ताजों की कुछ खास विशेषताओं का जिक्र करना है, क्योंकि उनके रिपोर्ताजों ने इस विधा को एक विकसित विधा के रूप मे स्थापित किया और हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया।

'विदापत नाच' रेणु जी का पहला रिपोर्ताज है, जो साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में अगस्त, 1945 में प्रकाशित हुआ था। 'विदापत नाच' के बाद रेणु जी ने कई रिपोर्ताज लिखे। उनके लिखे रिपोर्ताजों में प्रमुख हैं- 'सरहद के उस पार', 'जै गंगा', 'डायन कोसी', 'रामराज्य', 'हड्डियों का पुल', 'हिल रहा हिमालय', 'नेपाली क्रांति कथा' आदि। रेणु जी के रिपोर्ताजों के प्रकाशन के बाद हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज को एक अलग मान्यता मिली। उसे पत्रकारिता और साहित्य-दोनों ही विधाओं में एक समान महत्वपूर्ण स्थान मिला।

रेणु जी ने अपने रिपोर्ताजों में अपने आस-पास होने वाली घटनाओं को विषय-वस्तु बनाया है। 'विदापत नाच' में उन्होंने एक लोक-परंपरा के बहाने ग्रामीण इलाके में बसने वाले आर्थिक रूप से कमजोर लोगों की जीवन-शैली को चित्रित किया है। इसी तरह 'डायन कोसी' में कोसी के किनारे बसने वाले लोगों की कठिन जीवन-शैली को चित्रित किया है। 'सरहद के उस पार' और नेपाली क्रांति कथा' में नेपाल में राजशाही के खिलाफ होने वाली क्रांति का सजीव वर्णन किया है। अपने तमाम रिपोर्ताजों में रेणु जी ने अपने आस-पास की घटनाओं को उठाया और उसे पूरी संजीदगी और बारीकी से शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

रेणुजी के रिपोर्ताज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी भाषा है। उन्होंने इन रिपोर्ताजों में अपनी अभिव्यक्ति की वही भाषा रखी है, जो भाषा उनकी कहानियों या फिर उपन्यासों की भाषा है। इस भाषा के साथ उन्होंने जिस तरह रिपोर्ताजों में मौजूद पात्रों के मुँह से उनकी बातों को उनकी ही बोली में कहलाया है, वह पूरे रिपोर्ताज की भाषा पर अपना खास प्रभाव छोड़ती है। सहजता रेणु की शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी यह विशेषता उनके रिपोर्ताज में भी परिलक्षित होती है। वह किसी भी बात को अनगढ़ और सहज तरीके से कहते हैं, वह पूरे रिपोर्ताज को काफी प्रभावशाली बना देता है। अपनी बातों को कहने का सहज अंदाज रेणु जी की शैली को एक अलग पहचान देता है। उनकी यह शैली उनकी शुरुआती रिपोर्ताजों से ही दिखने लगती है।

निष्कर्ष के तौर पर हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि रेणु जी ने अपने रिपोर्ताजों के जरिए न सिर्फ अपने समय की घटनाओं को कलमबद्ध किया, बल्कि उन्होंने इस विधा को एक नया आयाम और नयी ऊँचाई दी है।

■

'मैला आँचल' की भाषिक विशिष्टता

दुर्गानन्द ठाकुर

शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

हिंदी कथा साहित्य में जिन कथाकारों ने युगांतर उपस्थित किया है, फणीश्वरनाथ रेणु उनमें से एक हैं। उन्होंने कथा साहित्य के अतिरिक्त संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि विधाओं को नई ऊँचाई दी। रेणु ग्रामीण जीवन के जन-सरोकारों से जुड़े साहित्यकार, कथाकार ही नहीं थे, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उनका सक्रिय हस्तक्षेप रहता था। उन्होनें अपनी रचनाओं में ग्रामीण जीवन के जिन-जिन पहलुओं को उजागर किया है वह आज भी समाज में व्याप्त है, चाहे वह जातिवादी व्यवस्था, अफसरशाही, अवसरवादी राजनीति, मठों और आश्रमों का पाखंड हो या फिर महिला छात्रावास के भीतर के भ्रष्टाचार और स्त्रियों के दैहिक शोषण की पीड़ा हो। उनकी भाषा-शैली ऐसी है जो पाठकों को अपने साथ बाँधकर रखता है।

आंचलिक उपन्यास के रूप में 'मैला आँचल' की सफलता का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण उसकी भाषा-शैली को ही माना जाता है। रेणु ने भाषा के स्तर पर अद्‌भुत प्रयोगशीलता का परिचय देते हुए नई सृजनात्मक उपलब्धि हासिल की है। मैला आँचल में सामान्यतः देशज भाषा का प्रयोग किया गया है क्योंकि आंचलिक संस्कृति में देशज शब्दावली केन्द्र में होती है। इसके अतिरिक्त, तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग भी देखने को मिलता है। अंग्रेजी के बहुत से शब्दों का प्रयोग भी इस उपन्यास में किया गया है, परंतु रेणु ने उन शब्दों को भी आँचलिक तेवर में ढाल दिया है। ये शब्द भी आंचलिकता को प्रमाणित करते हैं। उपन्यास में कहीं-कहीं मानक भाषा का भी प्रयोग हुआ है, जिसमें न सिर्फ तत्सम शब्दावली, बल्कि संस्कृत के परिनिष्ठित शब्द भी आये हैं। ऐसे प्रसंग वहाँ हैं जहाँ डॉ. प्रशांत जैसे व्यक्ति कुछ सोचते हैं या बोलते हैं। रेणु जी ने आंचलिक शैली का निर्वाह करते हुए लोकगीत तथा लोक संगीत के तत्वों को अपने उपन्यासों में काफी अधिक स्थान दिया है। भउजिया के गीत, विदापत के नृत्य और जाट-जटिन के खेल जैसे प्रसंगों में बहुत-से लोकगीत आए हैं। इन्होंने हास्य-व्यंग्य का बहुत अधिक प्रयोग किया है, विशेष रूप से वहाँ जहाँ वे खुद किसी पात्र की कड़वी सच्चाई उभारना चाहते हैं।

आँचलिक भाषा-शैली की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है-मुहावरेदार भाषा का प्रयोग। भाषा जितनी मुहावरेदार होती है, उसमें लोक-जीवन की अनुभूतियाँ उतनी ही प्रामाणिकता से अभिव्यक्त होती हैं। 'मैला आँचल' में जगह-जगह पर ऐसी भाषा देखने को मिलती है। रेणु जी ने भाषा-शैली के स्तर पर एक विशेष प्रयोग 'चेतना प्रवाह शैली' का किया है। इन्होंने कमली की मनःस्थिति दिखाने के लिए इस शैली का प्रयोग किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'मैला आँचल' की भाषा-शैली आँचलिकता के तत्व को पूरी तन्मयता से धारण करती है। यदि 'मैला आँचल' आज तक सर्वश्रेष्ठ आँचलिक उपन्यास माना जाता है तो उसका एक बड़ा कारण इसकी भाषा-शैली ही है।

■

रेणु-साहित्य में स्त्री-विमर्श

सुजाता सिंह
शोधार्थी, हिंदी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

फणीश्वरनाथ रेणु प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में नया आयाम प्रस्तुत करनेवाले रचनाकार हैं। साहित्य मानव जीवन से पृथक् होकर अपने अस्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता और स्त्री मानव-जीवन की प्रमुख अंग है। इसलिए कहा जा सकता है कि स्त्री और साहित्य का शाश्वत संबंध है। स्त्रियाँ किसी भी वर्ग की हों, उनकी समस्याएँ उन्हें एक ही बिंदु पर लाकर जोड़ देती हैं। स्त्री-समाज एक ऐसा समाज है जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि की संकुचित सीमाओं के पार जाता है और जहाँ कहीं दमन है, चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल की स्त्री त्रस्त है वह उसे अपने परचम के नीचे लेता है। (स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, पृष्ठ संख्या-15, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, सं.1999) जिस दौर में हिंदी साहित्य के क्षितिज पर फणीश्वरनाथ रेणु का उदय हुआ, उस दौर में कहानियों पर व्यक्ति स्वतंत्रता की अवधारणा पूरी तरह हावी थी। स्त्री एक व्यक्ति के रूप में पहचानी जाने लगी थी। इस दौर में जिन स्त्रियों को व्यक्ति मानकर व्यक्ति स्वतंत्रता की बात की जा रही थी, वे स्त्रियाँ रेणु की स्त्रियों से भिन्न थीं। रेणु की कहानियों में स्त्री को जो स्थान प्राप्त है, वह अपने समाज की विचारधारा को रेखांकित करता है। स्त्री का महत्व, उसकी भंगिमा को रेणु जी बड़ी रोचकता से अपनी कहानियों में प्रस्तुत करते हैं। हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श की अपनी विचारधारा है। यह धारा अचानक से हमारे समाज में विकसित नहीं हुई है। बल्कि यह विचारधारा लंबे संघर्ष का परिणाम है। स्त्री-विमर्श के परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में हमारे समाज और संस्कृति की रूढ़िवादी प्रवृत्ति को रेखांकित कर उसे तोड़ने का प्रयास किया गया है।

■

रेणु-साहित्य का स्त्री-संदर्भ

रागिणी रौशन
शोधार्थी, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर- 812007

फणीश्वरनाथ 'रेणु' कथा साहित्य में नया आयाम प्रस्तुत करनेवाले रचनाकार रहे हैं। साहित्य मानव जीवन से अलग होकर अपने अस्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता और स्त्री मानव-जीवन का प्रमुख अंग है। इसलिए कहा जा सकता है कि स्त्री और साहित्य का शाश्वत संबंध है। स्त्री किसी भी वर्ग की हो, उनकी समस्याएँ उन्हें एक ही बिन्दु पर लाकर जोड़ देती है। रेणु की विशिष्टता यह रही कि उन्होंने अपने युग में चली आ रही परम्परा को एक नए ढंग से पुनर्जीवित किया।

जिस समय रेणु अपनी रचनाओं का सृजन कर रहे थे, उस समय स्त्री समस्याएँ और जटिल थीं। ग्रामीण-स्त्री अपनी स्थिति को नियति मानकर जी रही थी। मध्यमवर्गीय स्त्रियाँ तो स्वतंत्रता की ओर अग्रसर हो रही थीं, लेकिन ग्रामीण स्त्री अब भी अपने-आप में सिमटी हुई थी। इसका प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव रहा था। रेणु ने इस दौर के स्त्री-विषयक मतों से अलग अपनी स्वतंत्र स्त्री-दृष्टि का परिचय दिया। इनके एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'कितने चौराहे' की प्रमुख महिला पात्र का जिक्र करना आवश्यक है। 'शरबतिया' एक शहीद की विधवा है। उसके पिता उसका विवाह किसी ऐसे पुरुष से कर देना चाहते हैं, जो उसे कमाकर खिला सके। भले ही उसकी उम्र उसके बाप के उम्र की क्यों न हो, लेकिन शरबतिया की माँ इस बात पर अडिग है कि वह किसी भी कीमत पर शरबतिया के साथ यह अन्याय नहीं होने देगी। वह अपने पति को धमकी देते हुए कहती है कि वह नदी में कूदकर अपनी जान दे देगी, लेकिन अपने जीते-जी यह नहीं होने देगी। एक महिला द्वारा अपने पति के खिलाफ खड़ा होना उसकी स्वतंत्र दृष्टि को दिखाता है।

स्त्री-दृष्टि के संदर्भ से देखा जाय तो रेणु जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि ग्रामीण स्त्री किस प्रकार विकास की इस प्रक्रिया से बाहर है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सामने स्त्री की भूमिका नगण्य होती है और यदि कोई स्त्री इस पुरुष समाज द्वारा बनाये गये बंधनों से निकलना चाहती है तो उसे इस कदर तोड़ा जाता है कि फिर कोई दूसरी स्त्री उसके खिलाफ न जा सके। 'रेणु जी' की एक कहानी 'जलवा' के प्रमुख पात्र 'फातिमा' के साथ घटनेवाली घटना हमें ऐसी स्थिति से अवगत कराती है। फातिमा

पॉलिटिक्स में रुचि रखती है। जब वह 'नेशनल मुस्लिम कांग्रेस' के जलसे के मौके पर कुछ कहना और करना चाहती है, तो प्रदर्शनकारियों ने उसे बुरी तरह जलील किया और उसके चेहरे पर एसिड उड़ेल दिया। आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करनेवाली 'फातिमा' को पितृसत्तात्मक और पुरुषवादी सोच ने न उसे स्वीकार किया, वरन् उसे इस स्थिति में पहुँचा दिया कि भविष्य में शायद ही कोई महिला राजनीति में आने की सोचे। जिस प्रकार से हमारे समाज में 'मौब लिंचिंग' की घटनाएँ बढ़ी हैं, यह कोई आज की बात नहीं है, बल्कि पूर्व में खासकर महिलाओं को सबक सिखाने के उद्देश्य से इस तरह की घटनाओं को अंजाम दिया जाता रहा है। आज भी 'एसिड अटैक' की घटनाओं से महिलाओं को मुक्ति नहीं मिल पायी है। यूँ तो रेणु जी की ढेरों रचनाएँ हैं, जिसमें न सिर्फ 'महिला-विमर्श', बल्कि अन्य विमर्श भी भरे पड़े हैं। जरूरत है उस पर गहनतापूर्वक विश्लेषण की।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन आंचलिक संदर्भ

हेमलता

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

बीसवीं शताब्दी के पाँचवें-छठे दशक में हिन्दी उपन्यास का एक नया रूप हमारे सामने आता है, जिसे 'आँचलिक उपन्यास' कहा गया है। हिंदी उपन्यासों में आँचलिकता का तत्त्व पर्याप्त पुराना है- प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, नागार्जुन आदि की रचनाओं में ये आँचलिकता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। परंतु इस संदर्भ में सबका ध्यान आकर्षित करने का श्रेय फणीश्वरनाथ 'रेणु' और उनके 'मैला आंचल' उपन्यास को है। इसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है- ''यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास कथानक है पूर्णियाँ। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव का-पिछड़े गाँवों को प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है।''

आँचलिक उपन्यास को दो भागों में बाँटा गया- ग्रामीण अँचल से संबद्ध तथा नागरिक जीवन से संबद्ध। नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' (1953) तथा 'वरुण के बेटे' में आंचलिक उपन्यास के तत्त्व प्रधान हैं। चरित्र-चित्रण, कथा की अन्विति, कथानक का आँचलिक आधार, वातावरण की सजीवता, जन-जीवन, भाषा सभी दृष्टियों से 'बलचनमा' (1953) में सफल आँचलिक उपन्यास के गुण विद्यमान हैं। नागार्जुन का दूसरा उपन्यास 'वरुण के बेटे', जिसमें मलाहीगोढ़ियारी ग्राम के अंचल से संबद्ध आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का भौगोलिक चित्रण है। इसी प्रकार देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र' (1956) उपन्यास है जिसमें नदी के तटवर्ती लोगों का चित्रण है। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ (1958) में करनटों के दैनिक जीवन, आजीविका, नट-कौशल आदि का सफल आँचलिक चित्रण है। ग्रामीण अंचलों से संबद्ध अन्य उल्लेखनीय उपन्यास हैं- रामदरश मिश्र का 'पानी का प्राचीर' और शैलेश माटियानी का 'होल्दार'।

नागरिक जीवन से संबद्ध आंचलिक उपन्यासों में रांगेय राघव का 'काका' उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य' और शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' का 'बहती गंगा' है। अन्य उल्लेखनीय आंचलिक उपन्यास हैं- शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरण (1968) आदि। देश-विभाजन पूर्व संबंधी आँचलिक उपन्यासों में कृष्णा सोबती कृत 'जिन्दगीनामा' आदि में पंजाब का रोमांटिक चित्रण हुआ है। बावजूद इसके आंचलिक उपन्यासों के वास्तविक जन्मदाता 'रेणु' जी हैं जिन्होंने बिहार के जनजीवन से संबंधित दो उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' लिखकर आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में क्रांति उपस्थित कर दी। जहाँ मैला आंचल में तस्कर-व्यापार, जमींदार-तहसीलदार के अत्याचार, अनैतिक संबंध, राजनीतिक नेताओं की धांधली आदि बुराइयों से बचने का संदेश दिया, वहीं 'परती परिकथा' में पूर्णियाँ जिले के 'परानपुर' गाँव और उसके आस-पास के प्रेम-व्यापारों के प्रसंगों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। इस तरह 'रेणु' तथा उनके समकालीन साहित्य में आंचलिकता का विकास संभव हुआ।

■

कथाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु'

सावित्री कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण आँचलिक कथाकार हैं। हिन्दी साहित्य में ऐसा आँचलिक कथाकार कोई दूसरा नहीं है। उन्होंने अंचल-विशेष को अपनी रचनाओं को आधार बनाकर वहाँ के जीवन और वातावरण का सजीव अंकन किया है। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों और उपन्यासों में आँचलिक जीवन का उल्लेख किया गया है। इनकी लेखन-शैली वर्णनात्मक थी। रेणु जी एक अद्‌भुत किस्सागो थे, उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो कोई कहानी सुन रहा हो। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है। इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाता है और इन्हें आजादी के बाद के प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है। इनका जन्म 4 मार्च 1921 में पूर्णिया जिले के फारबिसगंज प्रखंड में औराही हिंगना गाँव के संपन्न परिवार मे हुआ था। रेणु जी को जितनी ख्याति हिन्दी साहित्य में अपने उपन्यास 'मैला आँचल' से मिली, उसकी मिसाल मिलना दुर्लभ है। इस उपन्यास के प्रकाशन से उन्हें रातो-रात हिन्दी के एक बड़े कथाकार के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। कुछ आलोचकों ने 'गोदान' के बाद इसे हिन्दी का दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित कर दिया। 'मैला आँचल' का प्रकाशन 1954 में हुआ। यह उनका प्रतिनिधि उपन्यास है।

यह हिन्दी का श्रेष्ठ सशक्त आंचलिक उपन्यास है। 'मैला आँचल' की कथावस्तु बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज की ग्रामीण जिदंगी से संबद्ध है। यह उपन्यास स्वतंत्रता के तुरंत बाद के भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिवेश का ग्रामीण संस्करण है। 'मैला आँचल' में फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है, और कीचड़ भी है। इसमें गरीबी, रोग, भूखमरी, जहालत, धर्म की आड़ में हो रहे व्यभिचार, शोषण, बाह्याडंबरों, अंधविश्वासों आदि का चित्रण है । शिल्प की दृष्टि से इसमें फिल्म की तरह घटनाएँ घटती हैं और दूसरी प्रारंभ हो जाती हैं। इसमें नाटकीयता और किस्सागोई शैली का प्रयोग किया गया है। इस उपन्यास के लिए रेणु जी को पद्‌म श्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

■

रेणु-साहित्य में लोक-संस्कृति के विविध आयाम

अनिग्धा श्रीवास्तव
शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

'मैला आँचल' से हिन्दी-साहित्य-जगत में धूम मचाने वाले फणीश्वरनाथ रेणु किसी परिचय के मोहताज नहीं। अंचल और आँचलिक भाषा उनकी पर्याय बन चुकी है। जब भी आँचलिक कथाकारों की चर्चा होती है, रेणु जी का नाम सर्वप्रथम आता है, परन्तु उनका रचना-संसार कहानी और उपन्यास तक ही सीमित नहीं रहा, उन्होंने कविता, निबंध, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि साहित्य की लगभग हर विधा में अपनी लेखनी बखूबी चलायी। यह कितने आश्चर्य की बात है कि एक कथाकार के रूप में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले लेखक की लेखन-कला का आगाज एक कवि के रूप में हुआ था। वैसे तो वे जीवनभर कविताएँ लिखते रहे, परन्तु उनके कथाकार व्यक्तित्व ने उनके कवि को हमेशा गौण ही बनाये रखा।

रेणुजी एक किस्सागो थे, उन्हें कहानियाँ गढ़ने में बहुत आनन्द आता था। कहते हैं, 'पूत के पाँव पालने में ही नजर आ जाते हैं।' रेणु के अंदर के कथाकार की पहली झलक भी महज छह-सात साल की उम्र में ही नजर आ गयी थी, जब अपने माता-पिता को अपनी पहली कहानी (जो उनके खुद के सम्बन्ध में थी) सुनायी- ''तुम मेरी माँ नहीं हो ! मेरी माँ ने मुझे एक मिट्टी की हंडी में बंद कर के नदी में डाल दिया था। बहते-बहते हंडी एक घाट पर जा लगी, जहाँ से तुम मुझे ले आयी।'' 1939 से 1941 तक वाराणसी में पढ़ने के दौरान रेणुजी की कई कविता-कहानियाँ वहाँ के दैनिक व साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित हुईं परन्तु वे अपने प्रौढ़ कहानी लेखन की शुरुआत 1944 से मानते हैं, जब 1942 क्रांति के बाद जेल से छूटकर गाँव आने पर गाँव की उत्तरी सड़क

पर स्थित वट-वृक्ष को न देख उससे जुड़ी स्मृतियों को एकत्रित कर 'बटबाबा' लिखते हैं। 1959 में प्रकाशित उनका पहला कहानी-संग्रह उन्हें एक कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है। इससे पूर्व रेणु की ख्याति एक आँचलिक उपन्यासकार के रूप में थी। 1953 में प्रकाशित 'मैला आंचल' ने उन्हें एक आँचलिक उपन्यासकार के रूप में स्थापित किया, जिसे उन्होंने स्वयं एक आँचलिक उपन्यास के तौर पर प्रस्तुत किया था। इसकी भूमिका में वे लिखते हैं - ''यह है मैला आँचल एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है- पूर्णिया। ... मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को, पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर, इस उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया है। ... इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी, मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया।''

रेणुजी जिस प्रकार स्वयं लोक से जुड़े थे, उसी प्रकार उनका साहित्य भी लोक व अंचल की विशेषताओं से ओत-प्रोत है। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा ग्रामीण भारत के हर राग-रंग को साहित्य के केंद्र में बड़ी खूबसूरती के साथ स्थापित किया है। उनकी रचनाओं में लोक-जीवन, लोक संस्कृति के हर फूल विद्यमान हैं, जो उनकी साहित्यिक फूलवारी की सौंधी खुशबू चहूँ ओर बिखरा रहे हैं।

■

गद्य शिल्पकार : फणीश्वरनाथ रेणु

सरिता कुमारी

शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

ग्रामीण जीवन के टूटते-बिखरते और नए जीवंत संदर्भ को चित्रित करनेवाले फणीश्वरनाथ रेणु अप्रतिम गद्य-शिल्पकार के रूप में विख्यात हैं। इनके कथा-साहित्य में अंचल विशेष की जहालत और भोलापन देखने को मिलता है। इन्होंने माटी की महक लोक संस्कृति में और गाँव की बोली-वाणी को जिस सहजता से अपने साहित्य में रखा है, वह अद्वितीय है। इनकी लेखन-शैली वर्णनात्मक थी। इनकी रचनाओं में सहजता, सुबोधता, सरलता और स्पष्टता के गुण विद्यमान है। अपनी रचनाओं में इन्होंने आंचलिकता को प्रमुखता दी है। आंचलिकता की अवधारणा ने ही इनके कथा-साहित्य में गाँव की भाषा-संस्कृति और वहाँ के लोक जीवन को केन्द्र में लाकर खड़ा किया है। इनकी रचनाओं में अंचल कच्चे एवं अनगढ़ रूप में आते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब सारा विकास शहर केंद्रित होता जा रहा था, ऐसे में रेणु जी ने अपनी रचनाओं से अंचल की समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान खींचा है। इनका जन्म 4 मार्च 1921 को फारबिसगंज के औराही हिंगना नामक ग्राम में हुआ। हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु का जीवन उतार-चढ़ावों एवं संघर्षों से भरा हुआ था। साहित्य के अलावा विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक आंदोलनों में भी उन्होंने सक्रिय भूमिका निभायी है। उनकी यह भूमिका एक ओर देश के निर्माण में सक्रिय रही तो दूसरी ओर रचनात्मक साहित्य को नया तेवर देने में सहायक रही है। इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाता है। उन्होंने गद्य की अनेक विधाओं में रचना की है। उपन्यास, कहानी, रिपोर्ताज, संस्मरण, निबंध, साक्षात्कार, रेखाचित्र, हास्य व्यंग्य, पत्र, डायरी, नाटक, पटकथा अनुवाद, टिप्पणी गद्यगीत आदि के माध्यम से हिन्दी गद्य को समृद्ध किया है, पर सर्वाधिक ख्याति इन्हें उपन्यासकार के रूप में ही मिली है।

उपन्यासकार के रूप में उनकी ख्याति का आधार 'मैला आँचल' है। इस उपन्यास के प्रकाश से इन्हें रातों-रात हिन्दी के एक बड़े कथाकार के रूप में प्रसिद्धि मिली। इन्हें वे आंचलिक उपन्यास कहते हैं। 'मैला आँचल के संबंध में उनका कहना है- ''यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास, कथानक है पूर्णियाँ.....। पर आँचलिक कहने से इसकी सीमा संकुचित हो जाती है। अतः इसे ग्रामांचल का उपन्यास कहना अधिक औचित्यपूर्ण है। इस तरह के उपन्यास की शुरुआत फणीश्वरनाथ रेणु ने ही की है-ऐसे उपन्यास जिसके नायक ग्रामांचल हो। ये नायक अपनी सीमाओं में बँधे रहकर भी उनके पार तक जाते हैं। 'मैला आँचल' का प्रकाशन 1954 में हुआ। यह हिंदी का प्रतिनिधि उपन्यास है। इसमें उन्होंने अपनी गहरी ग्रामीण संवेदना के आधार पर मेरीगंज

गाँव को उसकी अंगड़ाई लेती हुई चेतना को उपन्यास का रूप दिया है। देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं का ध्यान ग्रामोत्थान की ओर गया था। इनका गाँव प्रेमचंद के गाँव से अलग है। यहाँ पुरातन जड़ता और नवीन गत्यात्मकता की टकराहट है। इसमें विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों का अन्तर्विरोध है। यह उपन्यास स्वतंत्रता के तुरंत बाद के भारत के ग्रामीण परिवेश का सजीव चित्रण करता है। इसकी भूमिका में इन्होंने खुद कहा है-इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया हूँ। अर्थात् इसमें इन्होंने वहाँ की सारी घटनाओं का यथार्थ वर्णन किया है। यह ग्रामीण उपन्यासों की परंपरा को तोड़ता हुआ एक कोलाज का निर्माण करता है। इसमें आरकेस्ट्रा का बिंब उभरता है, जो बिंब अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलेगा। यहाँ तक कि इनके गुरु सतीनाथ भादुड़ी के ढोढाय चरित्र मानस में भी नहीं। शिल्प की दृष्टि से इसमें घटनाएँ फिल्म की तरह घट रही हैं, एक के साथ दूसरी प्रारंभ हो जाती है। इस उपन्यास में बिरादरीवाद की कड़वाहट होने के बावजूद इनके बीच बजती हुई लोक-संस्कृति की शहनाई है। रूपात्मक विन्यास की दृष्टि से भी यह उपन्यास सबसे अलग प्रतीत होता है।

■

कितने चौराहे : फणीश्वरनाथ रेणु

कुमारी सोनी

शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'कितने चौराहे' का प्रकाशन वर्ष भले ही 1966 हो, लेकिन इसमें वर्णित अधिकांश घटनाक्रम एवं प्रसंग स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े हैं। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास देखें तो 'गाँधी' इस आन्दोलन के केन्द्र में थे। गाँधी और उस समय के स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े व्यक्तित्व ने सभी भारतीयों, खासकर नौजवानों को खूब प्रभावित किया था। 'कितने चौराहे' उपन्यास में फणीश्वरनाथ रेणु ने उन किशोरों की मनःस्थिति का चित्रण किया है, जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपना बलिदान दिया है। यह उपन्यास उन्होंने पूर्णियाँ के 'किशोर शहीद ध्रुव' को समर्पित किया है, जिसने अपने देश का झंडा सरकारी कचहरी पर फहराते समय गोली खायी थी। रेणु ने इस उपन्यास में भारत की आजादी के लिए संघर्ष ध ार्मी राष्ट्र की प्राणवती गाथा को निवेदित किया है। विकास यात्रा में भारत ने न जाने 'कितने चौराहों' को पार किया है; उपन्यास में प्रमुख पात्र किशोरावस्था के हैं। किशोरावस्था जीवन का महत्त्वपूर्ण चौराहा होता है। इस अवस्था में किसी के भटकने की संभावनाएँ बहुत अधिक होती हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र देहात का होनहार बालक मनमोहन है। जीवन के इस चौराहे पर पहुँचे मनमोहन को सौभाग्य से जागरूक अभिभावक मिले हैं। इसलिए मनमोहन कहीं और नहीं देखता है, न दाहिने न बाएँ। ऐसा करते हुए उसने एक वर्ष में न जाने कितने चौराहों को पार कर लिया। 'रेणु' ने बड़ी आत्मीयता से ऐसे ही कुछ किशोरों की बलिदानी गाथा को उपन्यास का रूप दे दिया। रेणु ने कितने चौराहे उपन्यास में 'अररिया कोर्ट' शहर के स्कूल का अति स्वाभाविक और रोचक चित्रण किया है। विद्वान बंगाली हेडमास्टर की औचित्यभरी छात्र-वत्सलता, हिस्ट्री के हफीज साहब पढ़ाने से ज्यादा फुटबॉल का किस्सा सुनते-सुनाते हैं। 'शोभना' पंडित जी और खोखना मौलवी साहब तथा 'देखना' प्रमोद बाबू की विचित्रताएँ मनमोहन के बाल-मन को आकृष्ट करती हैं। उसने पढ़ाई के साथ प्रियोदा के सम्पर्क में रह कर दस और देश का काम करना सीखा। वह प्रियोदा और उसके किशोर क्लब से जुड़ता है। 'प्रियोदा' स्कूल के सकेन्ड हेडमास्टर का आदर्शवादी लड़का है, जो स्थानीय रामकृष्ण मिशन के बड़े महाराज के पावन संपर्क से प्राप्त देशभक्ति और सेवाभावी संगठन की प्रेरणा को सक्रिय रूप देता है।

संम्पूर्ण उपन्यास स्वाधीनता आन्दोलन का औपन्यासिक दस्तावेज जैसा है। मनमोहन के बहाने राष्ट्रीय बोध के विकासक्रम का उपन्यास है। इस विकासक्रम में अनेक चौराहे आते हैं। उस चौराहे पर कभी हम चूक जाते हैं, तो कभी निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं।

■

'मैला आँचल' में स्त्री-अस्मिता

प्रियंका कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' उपन्यास में स्त्री-जीवन के विविध आयामों का कटु यथार्थ पाठकों के समक्ष रखा है। रेणु जी इसकी भूमिका में लिखते हैं- 'इसमें फूल भी है, शूल भी; धूल भी है, गुलाब भी; कीचड़ भी है, चन्दन भी; सुन्दरता भी है, कुरूपता भी- मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।'

'मैला आँचल' में जो कुरूपता है, वह स्त्री-पात्रों के जीवन में साफ झलकती है। स्त्री के अस्तित्व, स्वाभिमान, स्वतंत्रता पर समाज में सदियों से उठ रहे सवालों और समस्याओं को रेणु ने बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा है। वस्तुतः 'मैला आँचल' स्त्री की सामाजिक नियति का प्रामाणिक दस्तावेज है। यह नियति समाज द्वारा निर्मित परंपरागत नियति है। इसमें नारी के जीवन की विवशताओं पर खुलकर चर्चा की गई है। जैसा कि पुरुष आश्रय की अभिलाषा, कुजात स्त्री-जीवन, स्त्री की अस्तित्वहीनता, आर्थिक निर्भरता आदि सवाल को रेणु ने जीवंतता के साथ रेखांकित किया है। मेरीगंज गाँव में स्थित मठ के महंत द्वारा लक्ष्मी दासिन को खेलने-कूदने की उम्र में ही महंत की रखैल बना दिया गया। लक्ष्मी को भोग्या की नजर से देखनेवाले साधुओं की जमात उसे अस्तित्व रक्षण की भी सजा देती है।

लक्ष्मी ने आचारज गुरु को 'गुरुभाई' कहकर संबोधित किया था, जो पुरुषवादी विचारकों को असह्य है। लक्ष्मी भी स्वयं को दासी मानकर ही सारा जीवन व्यतीत करने को बाध्य है। नारी के जीवन को पुरुषों के नाम के आगे स्वतः ही प्रभु, प्राणनाथ, मालिक, स्वामी आदि संबोधन आ जाते हैं। ये संस्कार उन्हें जन्मोपरांत ही विरासत में मिल जाते हैं।

बीजक पाठ में निपुण लक्ष्मी की दृष्टि मानवीय और वैचारिक रूप से जनवादी है। धर्मसत्ता से शोषित लक्ष्मी पुरुषवादी सामंती सत्ता से लड़ती है। संघर्षशील नारी की मिसाल लक्ष्मी के संबंध में 'मैला आँचल' के समाजवादी पात्र चिनगारी जी ने मुक्तछंद में लिखा है-

''ओ महान सतगुरु की सेविका
गायिका पवित्र धर्मग्रंथ की
ओ महान मार्क्स के दर्शन की दर्शिका
सुदर्शने, प्रियदर्शिनी,
तुम स्वयं द्वंद्वयुक्त भौतिकवाद
सिनथिसिस हो।''

■

फणीश्वरनाथ रेणु और उनके रिपोर्ताज में अभिव्यक्त आँचलिकता का आशय

रणधीर कुमार
शोधार्थी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु (4 मार्च, 1921 ई.) का जन्म बिहार के अररिया जिले में फारबिसगंज के पास औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ था। उस समय ये पूर्णियाँ के अन्तर्गत आता था। 'रेणु' जी की शिक्षा भारत और नेपाल में हुई थी। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद इन्होंने नेपाल से मैट्रिक की शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 ई. में किया। जिसके बाद वे नेपाली क्रांति में कूद पड़े। फणीश्वरनाथ 'रेणु' मूलतः बिहार के रहने वाले थे जिनका असर इन्होंने अपनी रचनाओं में दिखाया है और जिसमें आँचलिकता विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। वस्तुतः इन्हीं की रचनाओं से आँचलिकता की शुरुआत मानी जाती है। साथ ही ये अपने रिपोर्ताज के लिए भी प्रसिद्ध माने जाते हैं, जिसमें

(1) ऋणजल-धनजल (2) नेपाली क्रान्तिकथा (3) वनतुलसी की गंध (4) श्रुत अश्रुत पूर्व।

'ऋणजल धनजल' मुख्य रूप से एक ऐतिहासिक रिपोर्ताज है जिसमें पहली और मुख्य बात यह है कि बाढ़ और सूखे की दो अभूतपूर्व दुर्घटनाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज है और दूसरी यह कि इसके बाद प्रकाशन की रूपरेखा तय करने के साथ-साथ इसका नामकरण तक उन्होंने स्वयं किया था और इसके लिए पन्द्रह-बीस पृष्ठों की एक भूमिका लिख चुकने की सूचना भी दी थी।

'ऋणजल-धनजल' सूखा और अकाल के लिए गढ़ा गया है, यह उनका अपना शब्द है। जल का अभाव ही सूखा का कारण है, इसलिए 'ऋणजल' और जल का बहुतायत में होना ही 'धनजल' है, जो बाढ़ का द्योतक है। गणित में माइनस को ऋण और प्लस को धन कहते है। इस तरह सूखे और बाढ़ के लिए यह रेणु द्वारा रचित नवीन शब्द बेहद अर्थव्यापक है। ऋणजल-धनजल की मुख्य रूप से अगर बात करें तो यह एक ऐसा दस्तावेज है, जो बिहार के तत्कालीन और तकरीबन हर साल होनेवाली दो घटनाओं का एक लेखा-जोखा है या फिर उनका आँखों देखा हाल है। रेणु अपने समय के एक बेहतरीन लेखक थे और इस रिपोर्ताज में उन्होंने दो घटनाओं 1966 ई. तथा 1975 में आई बिहार में बाढ़ का एक बेहद सही लेखा-जोखा दिया है। बाढ़ और सूखा अभी भी बिहार की बहुत विकराल समस्या है और इस समस्या का सार्थक समाधान कोई नहीं निकाल सका है। मगर बीते दिनों जलशक्ति मंत्रालय को बनाने की घोषणा इस दिशा में कितनी सफलताएँ प्राप्त करती हैं, ये तो आगे दिखाई पड़ेगा। 'ऋणजल-धनजल' मुख्य रूप से बाढ़ की समस्याओं तथा इसमें आँचलिकता के तौर पर यथार्थवादी चित्रण किया गया है। 'रेणु' जी की मृत्यु के बाद यह कई भागों में प्रकाशित किया गया, जिसमें गाँव के, औराही के अन्तर्गत पूरे भारत की समस्याओं को दिखाने का प्रयास किया गया है। साहित्यिक भाषा के माध्यम से यह रिपोर्ताज आज की 21वीं शताब्दी में प्रासंगिक नजर आता है।

इसके बाद फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपना दूसरा रिपार्ताज 'नेपाली क्रांतिकथा' 1950 ई. के आसपास लिखा जिसमें नेपाल के राजशाही के विरुद्ध धराशायी हुई नेपाली क्रांति का आखों देखा विवरण किया गया है। इसमें भारतीयों के प्रति नेपाली जनता के मन में जो आशंका घर कर गई थी, वस्तुतः उन्हीं के बारे में 'रेणु' जी ने लिखा है। इसमें मुख्य रूप से मार्क्सवादी विचारधारा के फलस्वरूप शोषक एवं शोषित की स्थितियों को दिखाया गया है। इनका तीसरा रिपोर्ताज 'वनतुलसी की गंध' है, जिसमें इन्होंने तुलसी की मनमोहक एवं पूजनीय अर्थों में चित्रण किया है। इनका आखिरी रिपोर्ताज 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' है। इनके अतिरिक्त और भी रिपोर्ताज हैं।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में समकालीन विमर्शों की अभिव्यक्ति

पवन कुमार शर्मा

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

अप्रतिम गद्य-शिल्पी के रूप में विख्यात रेणु जी ने 1945 ई. के आस-पास से ही लेखन आरम्भ कर दिया था, परन्तु ख्याति उन्हें 1954 ई. में 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद ही प्राप्त हुई। 'मैला आँचल' के प्रकाशन से हिन्दी उपन्यास के इतिहास में एक नई परम्परा की शुरुआत हुई। इसे आँचलिक उपन्यास कहा गया। निश्चय ही यह उपन्यास अपनी रचना-दृष्टि एवं शिल्प की मौलिकता में अनुपम है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने हिन्दी-गद्य की अनेक विधाओं को समृद्ध किया है। 'उपन्यास' और 'कहानी' के अतिरिक्त 'रिपोर्ताज', 'संस्मरण', 'निबन्ध', 'साक्षात्कार', 'स्केच', 'हास्य-व्यंग्य', 'पत्र', 'डायरी', 'नाटक', 'पटकथा', 'अनुवाद', गद्यगीत', 'टिप्पणी' आदि अनेक विधाओं में उनकी मौलिकता का साक्षात्कार करके हम चकित रह जाते हैं।

'रेणु' के परिवर्तन की लहर की छाप गाँवों में देखने को नहीं मिल रही है। ग्रामीणों की भाग्यवादिता और दोगली राजनीति की निहित स्वार्थपरकता ने यथास्थिति को तोड़ने में खतरे महसूस किए। इन क्षेत्रों में औद्योगिक पिछड़ेपन के पीछे भी इन्हीं शक्तियों का हाथ है। इन शक्तियों को डर था कि गाँवों में रोशनी के आलोकित होते ही बागडोर उनके हाथ से निकल न जाए। रेणु ने सामाजिक व्यवस्था और सामंतवादी संरचना की इस गहरी साजिश की पड़ताल बहुत ही पहले कर ली थी। लेकिन, वे 'मैला आँचल'

में निहित स्वार्थो की इस टकराव पर गहरी चोट करते हैं। इसीलिए 'मैला आँचल' में वर्णित पूर्णियाँ अंचल की ही चादर मैली है? और रोग का जो निदान डॉ. प्रशान्त ने इस पूर्णियाँ अंचल के संदर्भ में किया था क्या यह रोग महज पूर्णियाँ अंचल का ही है? क्या इसका संबंध महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा आदि राज्यों के अंचल से नहीं है? उन्होंने अपने प्रायः उपन्यासों में राजनीति के हर पहलू पर बड़ा रोचक और सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया है।

■

रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ

डॉ. नीतू कुमारी
पूर्व शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के साहित्य का अवलोकन करने के उपरान्त इनके समकालीन संदर्भ के वैशिष्ट्य पर ध्यान बरबस चला जाता है और अपने साहित्यिक विशेषताओं के कारण ये हिन्दी साहित्य संसार के मूर्द्धन्य हस्ताक्षर प्रतीत होते हैं। इन्होंने पूर्णियाँ अंचल के राजनीतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक बातों का सूक्ष्म और स्थूल विशद् विश्लेषण अपनी रचनाओं में किया है। आजादी के समय का समाज, आजादी के उपरान्त का समाज और विभाजन की त्रासदी तथा दंश झेलता हुआ समाज, इन्होंने बारीकी से इसका न केवल अवलोकन किया बल्कि कुशल प्रणेता होने का परिचय भी दिया है।

इन्होंने अपने साहित्य में जातीय समस्या और इसकी विद्रूपता पर विहंगम दृष्टि डाली है। कथा सूत्रों का समायोजन और इसका दूरगामी प्रभाव, सामाजिक परिवर्तन, दबंगता आदि के दर्शन होते हैं।

तत्कालीन सामाजिक परिवर्तन भले ही वह धीमी गति से हो रहा हो, भले ही उसका अस्तित्व दृष्टिगोचर न हो रहा हो, लेकिन ढोलक की थाप, भजन-कीर्तन के दिव्य स्वर जयघोष, सामाजिक, क्रान्तिकारी नारा 'बाँ' आदि का उल्लास और उत्साह देखते ही बनता है। स्त्री-शिक्षा चेतना, नारी स्वातंत्र्य और सामाजिक ताना-बाना का नया रूप देखने को मिलता है।

आँचलिक कथाकार और उपन्यासकार के रूप में इनकी विशिष्ट पहचान है और इनके स्त्री-पात्र दब्बू नहीं, बल्कि दबंग हैं। रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, बोली-वाणी, हाव-भाव सबों में विशेषज्ञता, विविधता और रंगीनता दृष्टिगोचर होती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि इनके साहित्य में स्त्री-पात्र विद्रोह नहीं, बल्कि प्रतिरोध रचती नजर आती हैं। भले ही ऊपरी सतह पर कोई हलचल ना हो लेकिन सामाजिक क्रान्ति और बदलाव का श्रीगणेश तो हो ही गया है।

परिणामतः रेणु जी अद्भुत कुशल कथाशिल्पी हैं। इनके शब्द ही नहीं, अक्षर भी बोलते हैं और पाठकों के मन-मस्तिष्क में एक साहित्यिक चित्र खिंच जाता है, जो इनकी सबसे बड़ी विशेषता और सफलता है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में आँचलिकता की धारा

सुशील कुमार मंडल
जे.आर.एफ., मधुबनी

कुछ ऐसे चरित्र होते हैं जो प्राण-प्रतिष्ठा पाते ही अपने सिरजनहार के बँधे-बँधाए नियम-कानून, नीति अथवा फार्मूले को तोड़कर बाहर निकल आते हैं और अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक गढ़ने लगते हैं, फणीश्वरनाथ रेणु उनमें से एक हैं। हिन्दी साहित्य में आँचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु का जीवन उतार-चढ़ावों एवं संघर्षों से भरा हुआ था। साहित्य के अलावा विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों में भी उन्होंने सक्रिय भागीदारी की। उनकी यह भागीदारी एक ओर देश के निर्माण में सक्रिय रही तो दूसरी ओर रचनात्मक साहित्य को नया तेवर देने में भी सहायक रही।

सन् 1954 में उनका बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ, जिसने हिंदी उपन्यास को एक नयी दिशा एवं दशा प्रदान की। हिन्दी जगत में आँचलिक उपन्यासों पर विमर्श 'मैला आँचल' से ही प्रारंभ हुआ है। आँचलिकता की अवधारणा ने कथा-साहित्य में गाँव की भाषा एवं संस्कृति और वहाँ के लोक जीवन को केन्द्र में लाकर खड़ा किया। लोकगीत, लोकोक्ति, लोकसंस्कृति, लोकभाषा एवं लोकनायक की इस अवधारणा ने भारी-भरकम चीज़ एवं नायक की जगह अंचल को ही नायक बना डाला। उनकी रचनाओं में अंचल कच्चे और अनगढ़ रूप में ही आता है। इसीलिए उनका यह अंचल एक तरफ शस्य-श्यामल है तो दूसरी तरफ धूल भरा और मैला भी। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब सारा विकास शहर-केन्द्रित होता जा रहा था, ऐसे में रेणु ने अपनी रचनाओं से अंचल की समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान खींचा। उनकी रचनाएँ इस अवधारणा को भी पुष्ट करती हैं कि भाषा की सार्थकता बोली के साहचर्य में ही है।

फणीश्वरनाथ रेणु के आँचलिक उपन्यासों की शक्ति महान् है। वे अंचल विशेष के जनसमाज की विशेषताओं का चित्रण कर उसकी मुक्ति का संदेश दे सकते हैं, जागरण की भावना फैला सकते हैं, सांस्कृतिक एकीकरण का अभियान आरंभ कर सकते हैं। वह वास्तव में नई दिशाएँ और नये क्षितिजों के उद्घाटन का सबल सम्बल बनता जा रहा है और इसे हम समूचे हिन्दी-उपन्यास-साहित्य के लिए एक परम शुभ लक्षण मान सकते हैं।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में आंचलिक संदर्भ

राजनन्दनी कुमारी

(शोधार्थी) यूनिवर्सिटी डिपार्टमेंट ऑफ हिन्दी, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखित 'मैला आँचल' (1954) हिन्दी साहित्य का प्रथम और श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है। रेणु ने बिहार के मिथिला अंचल को आधार बनाकर इस अंचल के जन सामान्य के सुख-दुख, रहन-सहन, संस्कृति, संघर्ष और लोकजीवन को अत्यंत कुशलता व कलात्मकता से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का प्रकाशन उस समय हिन्दी साहित्य में एक प्रमुख घटना मानी गयी थी। अपने प्रथम उपन्यास के प्रकाशन से ही इसके लेखक ने प्रसिद्धि के शिखर को सहज ही छू लिया।

मैला आंचल के प्रकाशन से हिन्दी में आंचलिक उपन्यास की धारा का प्रारंभ माना जाता है। हालांकि इससे पूर्व भी अंचल विशेष को आधार बनाकर हिन्दी में उपन्यास की रचना होती रही है, लेकिन आंचलिक उपन्यास प्रारंभ करने का श्रेय हिन्दी में 'मैला आंचल' को ही जाता है। 'गोदान' के बाद हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में एक 'मैला आँचल' को माना जाता है।

आंचलिक शब्द अंग्रेजी के रिजन (Region) शब्द के पर्याय के रूप में हिन्दी में प्रयुक्त हुआ है। अंग्रेजी में रिजनल नॉवेल की सुदीर्घ परंपरा रही है। भारतीय साहित्य में भी आंचलिकता का चित्रण लगभग सभी भाषाओं में मिलता है। 'अंचल' शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखण्ड प्रांत या क्षेत्र विशेष से है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लोकजीवन, भाषा व समस्याएँ हैं। ऐसे किसी अंचल विशेष को आधार बनाकर रची जाने वाली औपन्यासिक कृति सहज ही आंचलिक उपन्यास मान ली जाएगी। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य कोश' में कहा है कि ''लेखक द्वारा अपनी रचना में आंचलिकता की सिद्धि के लिए स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, त्योहार, लोकगीत, बातचीत का विशिष्ट ढंग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, भाषा के उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभावगत व व्यवहारगत विशेषताएँ, उनका अपना रोमांस, नैतिक मान्यताओं आदि का समावेश, बड़ी सर्तकता और सावधानी से किया जाता है।''

इससे पहले कि आलोचक इसकी आंचलिक उपन्यास के रूप में व्याख्या या विश्लेषण करते, स्वंय लेखक ने ही उपन्यास के प्रथम संस्करण की संक्षिप्त भूमिका में पहला वाक्य लिखा है- ''यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास। पूणिया के विशाल क्षेत्र को उन्होंने अपने कथानक का आधार न बनाकर इस क्षेत्र के केवल एक ही गाँव मेरीगंज को केन्द्र में रखा है।'' अपनी बात को रेणु ने काव्यात्मक रूप में इस प्रकार कहा है- ''इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है चंदन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी मैं किसी से भी दामन बचाकर नहीं निकल पाया।''

'मैला आंचल' की आँचलिकता का संदर्भ समझने के लिए सबसे पहली व मुख्य जरुरत है आंचलिक चित्रण के पीछे उनकी मनोभावना को समझना। यहाँ अत्यंत गहरा देशप्रेम है और यह देशप्रेम पत्थर की इमारतों से न होकर देश की मेहनतकश एवं मेरीगंज गाँव की संघर्षशील जनता से है। मेरीगंज 'ग्रामवासिनी भारत माता' के धूल भरे 'मैले से आंचल' का सम्पूर्ण चित्र है। 'मैला आंचल' की आँचलिकता का यही व्यापक संदर्भ है जिससे इसमें शूल-फूल, धूल-गुलाल आदि को संवेदना से समझा जा सकता है।

इस उपन्यास में आँचलिकता का पहला रंग उघड़ता है ग्रामवासियों के पिछड़ेपन के चित्रण के रूप में, जहाँ अभी शिक्षा और जागृति के चिह्न नहीं हैं और सरकार बहादुर की मानसिक गुलामी से लोग बँधे हैं। इस गाँव का नाम पहले कुछ और था लेकिन डब्लू. जी. मार्टिन ने इस गाँव में अपनी कोठी बनवाई और अपनी पत्नी के नाम पर इस गाँव का नाम मेरीगंज रखा। गाँव का नाम तो मेरीगंज हो ही गया लेकिन इलाज के अभाव में उसकी पत्नी जडैया बुखार के कारण चल बसी। उस घटना के पैंतीस वर्ष बाद अब गाँव में मलेरिया सेंटर और डिस्पेंसरी खुलने जा रही थी।

रेणु ने अपने कथानक को इस प्रकार बुना है कि आंचलिकता के चित्रण के रुप में मेरीगंज का भौगोलिक चित्र ही नहीं, वहाँ का सामाजिक-सांस्कृतिक चित्र भी उद्घाटित होता है। 'मैला आँचल' में आंचलिक पहलू उभारने के लिए लेखक ने बोली-बानी की भिन्नता तथा गीतों, रीति-रिवाजों आदि के सूक्ष्म चित्रण द्वारा मिथिला अंचल की लोक संस्कृति की सांस्कृतिक व्याख्या के साथ-साथ बदलते हुए यथार्थ के परिप्रेक्ष्य का भी वर्णन किया है। सचमुच यह उपन्यास हिन्दी में आंचलिक औपन्यासिक परंपरा की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

■

रेणु-साहित्य का सामाजिक संदर्भ

ओमप्रकाश वत्स
शोधार्थी, ति.माँ.भागालपुर विश्वविद्यालय, मो.न.- 9113389681

हिन्दी साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु एक ऐसा नाम है, जिन्होंने स्थानीयता और यथार्थवाद को स्थापित किया। रेणुजी ने कभी भी समाज में व्याप्त जातिवाद, और वर्णव्यवस्था को ढँकने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उन्होंने इन सभी आडंबरों एवं कुरीतियों को समाज के समक्ष बेपर्दा कर दिया। इन्होंने सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय, लैंगिक न्याय तथा जातीय वर्गीय एवं क्षेत्रीय अस्मिता के प्रश्न अपनी रचनाओं में उठाये हैं।

रेणुजी ने अपने 'मैला आँचल' उपन्यास में खुलकर सामाजिक सवाल किया है। रेणु के साहित्य सृजन की परिधि से कोई भी बहिष्कृत नहीं है। उन्होंने संथाल आदिवासियों की समस्या को भी अपनी रचना में प्रमुखता से उठाया है। नयी चेतना से भरपूर बिरसा माँझी का बेटा मंगला माँझी कहता है- ''जोहिरे जोतिबै, सो हिरे बोयवै।'' इस जनगीत से जनक्रान्ति की आत्मा के जीवित होने का संकेत मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं, खासकर अपने उपन्यासों में उस जातिविहिन समाज का सपना देखा था जिसे न रच पाने का खामियाजा हम आज तक देख और भुगत रहे हैं।

मैला आँचल के बाद कुछ लोग कहने लगे थे कि कभी-कभार संयोग से ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं लेकिन इन्होंने अपना दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' लिखकर इन विरोधियों की आलोचनाओं का करारा जबाब दिया।

रेणुजी ने पूर्णिया अंचल की माटी से मानव जीवन के भावनात्मक संबंधों का ऐसा शब्द चित्र उकेरा कि कोसी की माटी रेणु माटी का पर्याय बन गयी। रेणुजी सच्चे मायने में देहाती दुनिया के गाते हुए कलमकार हैं। रेणुजी ने लोकगीत के बारे में लिखा है- ''हर मौसम में मेरे मन के कोने में उस ऋतु के लोक गीत गूँजने लगते हैं।'' रेणुजी ने अपनी रचना में गाँव, किसान, खेत-खलिहान का खूबसूरत वर्णन किया है। प्रेमचंद और कन्हैयालाल वर्मा जैसे रचनाकारों की रचना का केन्द्र भी गाँव ही था। ग्राम्य जीवन की कथा लिखकर ही प्रेमचन्द कथा-सम्राट बने थे, लेकिन रेणुजी ने प्रेमचंदीय ढाँचे को विस्तारित कर अपना विशिष्ट आंचलिक धरातल तैयार कर इसको वैश्विक स्तर पर स्थापित किया।

■

रेणु की कहानी 'तॅबे एकला चलो रे' का एक पाठ!

डॉ. पार्वती कुमारी
पूर्व शोधप्रज्ञा, हिन्दी विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

नयी कहानी आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर रचनाकार फणीश्वरनाथ रेणु की प्रसिद्धि यद्यपि आंचलिक कथाकार के रूप में सर्वाधिक है, पर इनके रचनात्मक सरोकार के दायरे में युग-जीवन का विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित हो जाता है। मानवीय संवेदना और रागानुभूति के अलावा भी रेणु की सृजनशीलता उपेक्षित समुदाय और उसके जीवन- मूल्यों को अपनी रचना का विषय बनाती है। इस परिप्रेक्ष्य में रेणु की एक चर्चित कहानी 'तॅबे एकला चलो रे' का पुनर्पाठ किया जा सकता है।

'तॅबे एकला चलो रे' 1962 की जनवरी में लिखी गयी ऐसी कहानी है, जो प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' की परंपरा में नये प्रयोग के साथ उपस्थित मिलती है। यहाँ लेखक बड़ी लगन से कई सवालों के साथ उपस्थित होता है, जिसमें नस्लीय चेतना सर्वोपरि है। नस्लीय चेतना के वैश्विक विमर्श में यद्यपि इस कहानी का पाठ एक अलग विषय लग सकता है, परंतु किसन महराज, जो कि एक पाड़ा है, उसकी मौजूदगी और संपूर्ण जीवन-वृत्त नस्लभेद पर गहरी टिप्पणी जैसी ही लगती है। किंतु इससे बढ़कर भी रेणु कहानी के कथावाचक के सहारे कई प्रश्नों को विमर्श के लिए छोड़ते नजर आते हैं। मसलन, सामाजिक जीवन की बनावट में घुले-मिले अंतर्विरोध और व्यवस्था से उसके लगातार पोषण में पलते और समृद्ध होते वर्ग की स्थिति और इसके विपरीत किसान-खेतिहर लोगों के जीवन का प्रश्न! यह प्रश्न उनके अस्तित्व का प्रश्न है! उनके जीवन में बदलाव लाने का प्रश्न है! रेणु कथावाचक के बयान के सहारे बताना चाहते हैं कि सार्थक परिवर्तन के लिए किया जाने वाला प्रयास व्यवस्था को नहीं पच पाता है, इसीलिए लालबाबू में आये 'लाल' शब्द का मजाक हो या किसन महराज की समाधि पर लगे लाल झंडे में 'लाल' रंग का प्रतीक बन जाना, व्यवस्था के कर्मवीरों के कान खड़े करता है और क्रांति के पक्ष में बढ़ने वाली स्थितियों को समाप्त करने की कोशिश करता है।

रेणु अपनी इस कहानी में कोई व्यवस्थित समाधान नहीं लाते, पर यथार्थ की गहरी दृष्टि से उनकी रचना एक प्रतिबद्ध स्वर उत्पन्न करती है, जो निरंतर अकेले होते जाने पर भी विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उस भावना से बल पाती है जिसमें वे कहते हैं कि 'जब तुम्हारे बुलाने से कोई न आये तब तुम अकेले ही चलो'। किंतु रेणु यहाँ अकेलेपन की मानसिकता से ऊपर उठकर नया मार्ग बनाने की कोशिश करते दीखते हैं।

■

'ठेस' में अभिव्यक्त कलाकार का अंतर्मन

अमितेश कुमार
शोधार्थी, ल0 ना0 मि0 वि0 वि0, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-शिल्प की यह विशेषता रही है कि वे अपने पात्र की मनोदशा को इतने सहज ढंग से व्यक्त करते हैं कि पाठक उन पात्रों में अपने आस-पास के व्यक्ति की परिकल्पना करने लगता है। 'ठेस' कहानी में ऐसे ही एक ग्रामीण शिल्पी सिरचन, जो शीतलपाटी एवं चिक बनाने में माहिर है, के आत्मसम्मान एवं जनसंवेदना के बीच के द्वंद्व को दर्शाया गया है। कलाकार का हृदय अपनी कला के लिए सम्मान तो चाहता ही है लेकिन जगत की अपनी आँखें हैं कला को परखने की। वह किसी को महान तो किसी को तुच्छ मानती है। जब सिरचन की बेजोड़ शिल्प कला मात्र पेट भर खाना पर उपलब्ध है तो उसके लिए किसके मन में आन्तरिक आदर हो सकता है! तो क्या सिरचन बेगार है! नहीं। रेणु जी कहते है कि लोग ऐसा सोचते हैं। वो तो अपनी कला का पूरा मोल लेना जानता है। मजाल है कि कोई उसे खाने में ऐसा-वैसा व्यंजन दे दे। उसे भोजन चाहिए सुस्वादु चटपटा- जहाँ भी उसे इसमें कमी आयी वहाँ उसे तत्क्षण अधकपारी पकड़ लेता है और फिर जो काम कल के लिए टलता है वह कल कभी नही आता है। वैसे सिरचन इतना भी भोला नहीं है कि उसे आदमी की परख नहीं हो। लेकिन जब जाँचा-परखा

आदमी भी उसकी भावना की कद्र नहीं करे तो मन में ठेस लगती ही है। सिरचन के अंतर्मन की थाह लेखक भी नहीं ले पाते जब वो समझने लगते हैं कि सिरचन जरूर ही चटोर है जो अच्छा खाना नहीं मिलने पर उनकी बहन मानू के ससुराल वाले की माँग के मुताबिक शीतलपाटी का निर्माण-कार्य बीच में ही छोड़कर भाग जाता है। परंतु जब स्टेशन पर सुंदर शीतलपाटी और अन्य कलाकृतियों को ले हाँफता हुआ सिरचन आता है और अपने अनमोल प्रेम का कुछ भी प्रतिदान नही चाहता है तो उसके अंतर्मन की गहराइओं में सहज मानवीय बुद्धि की क्षुद्रता तिरोहित हो जाती और जगत के सामने प्रकट होता है आत्मसम्मान से भरा कलाकार का उदात्त मन, अपरिग्राही विद्यार्थी की तपस्या का समस्त पुण्यफल जिसे अर्घ्य देने हेतु मानू के अश्रु नयन कोर से निकल पड़ते हैं।

■

परती परिकथा : स्त्री-विमर्श की दृष्टि से

उपासना झा

शोधार्थी- हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

रेणु मनुष्य की मुक्ति के रचनाकार हैं, वे संकीर्णता, जातीयता एवं शोषण का मुखर प्रतिरोध करते हैं। मुक्ति के संघर्ष में स्त्रियों की भागीदारी को वे अपने कथा-साहित्य में रेखांकित करते हैं। देश ने 1947 में विदेशी दासता से मुक्ति तो हासिल कर ली लेकिन दासता के अनेक त्रासकारी भेद समाज में व्याप्त रह गए । रेणु इन स्थितियों और शोषण के विभिन्न चक्रों को उजागर करते हैं। दलितों और स्त्रियों के असहमति के स्वर, विपथन तथा प्रतिरोध को खासकर प्रभावी ढंग से वे सामने लाते हैं।

'परती परिकथा' रेणु का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। 1957 में प्रकाशित हुए इस उपन्यास को कई आलोचक 'मैला-आँचल' से भी अच्छी कृति मानते हैं 'परती-परिकथा' में परती भूमि की धुरी पर समस्याएँ घूमती रहती हैं, और रेणु ने इसीलिए भूमि को अपनी दृष्टि का अवलम्बन माना है। परानपुर गाँव में निवास करने वाली सभी जातियों की समस्याएँ, सभी वर्गों की समस्याएँ चाहे वह सामाजिक हो या आर्थिक, नैतिक हो या भौगोलिक, सभी को उपन्यास में कुशलता से उद्घाटित किया गया है। निर्मल वर्मा के अनुसार-'यह अजीब विरोधाभास था कि जिस 'परती' को रेणु ने अपनी 'परती-परिकथा' के लिए चुना था वह अपनी अनुभव-संपदा में सबसे अधिक उर्वरा थी, क्योंकि अब तक किसी कथाकार ने अपनी कलम से उसे नहीं कुरेदा था।

इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री-पात्रों- मलारी, ताजमनी, मिसेजरोजवुड, इरावती एवं परानपुरइस्टेट की मालिकन सशक्त, विचारवान एवं साहसी महिलाएं हैं। ये संस्कृति और परम्पराओं का पालन तो करती हैं लेकिन जातिगत विभेदों, मनुष्य के आंतरिक संघर्षों का सम्मान करते हुए अपने लिए समाज में नई जगह बनाती हैं। रेणु ने इन स्त्रियों के माध्यम से एक जीवित और सभ्य समाज की परिकल्पना को साकार किया है।

■

रेणु के साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

दीपक कुमार

शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ति0मां0भा0 वि0वि0, भागलपुर

हिन्दी के प्रख्यात कथा-शिल्पी एवं लोकधर्मी कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु भारतीय लोक-संस्कृति के संवाहक कथाकार हैं। उनके कथा-साहित्य की अन्यतम विशेषता है-लोक-संस्कृति का जीवंत व सजीव चित्रण। उनके समस्त कथा साहित्य में लोक-संस्कृति लोक-जीवन की प्राण धारा बनकर बहती है। चाहे वह उपन्यास 'मैला आंचल' हो या 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा' आदि या कहानी 'लाल पान की बेगम', 'तीसरी कसम' या अन्य कोई, सब में लोक संस्कृति का विहंगावलोकन हुआ है। यानी एक लोकधर्मी कथाकार होने के नाते, लोक संस्कृति की सुगंध उनके कथा-साहित्य में सर्वत्र विद्यमान है।

रेणु ने अपने कथा-साहित्य में सांस्कृतिक चित्रण कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया है। समाज में सरसता लाने के

साथ-साथ उन्होंने जन-जीवन में चेतना का संचार करने के लिए संस्कृति का सहारा लिया है। 'मैला आंचल' में महंत साहब अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए उनके अज्ञान-अंधकार को दूर करने की बात करते हैं, वहीं ग्रामीण जनता का मनोरंजन कराने और अज्ञानता मिटाने के लिए कीर्तन का सहारा लेते हैं।

रेणु का लोक-संस्कृति में अटूट विश्वास था। लोक-संस्कृति की जितनी सूक्ष्म परख और मजबूत पकड़ रेणु को थी, उतनी प्रेमचंद को नहीं। रेणु होली के गीत के माध्यम से उस समय के राजनेताओं तथा उनकी राजनीतिक प्रासंगिकता का परिचय यों देते हैं-''आई रे होरिया आई फिर से। आई रे। गावत गांधी राज मनोहर। चरखा चलाने बाबू राजेन्दर। गूँजल भारत अमहाई रे। होरिया आई फिर से। वीर जवाहर शान हमारी। जयप्रकाश जैसे भाई रे। होरिया आई फिर से।''

समग्रतः, लोकतत्व तथा लोक-संस्कृति के विविध पहलू रेणु के कथा-साहित्य में भरे पड़े हैं। उन्होंने लोक-कथाओं तथा लोक संस्कृतियों के माध्यम से लुप्तप्राय भारतीय संस्कृति को पुनःजीवन प्रदान किया है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश

डॉ0 विनीता कुमारी

ग्राम-पो0-चौड़ामहरैल, थाना-झंझारपुर, मधुबनी, बिहार

फणीश्वरनाथ 'रेणु' को ग्रामीण परिवेश से ज्यादा ही लगाव था। 'रेणु' ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने कई ऐसे उपन्यासों की रचना की है जिसमें ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया गया है। 'डॉ. नगेन्द्र ने कहा है कि फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यास ही सही अर्थों में आँचलिक हैं।'1

'रेणु' ने 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचलों का सचित्र वर्णन प्रस्तुत किया है। 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' दोनों उपन्यासों में ग्रामांचल की छोटी-छोटी घटनाओं, कथाओं, आचार-विचार, रीति-नीति, राजनीतिक व नैतिक अवधारणाओं, पारस्परिक संबंधों आदि के विशिष्ट चित्र मिलते हैं।''2. 'रेणु' ने बिहार के ग्रामीण जन-जीवन के आध ाार पर दो उपन्यास लिखे हैं- 'मैला आँचल' और 'परती- परिकथा'।

'मैला आंचल' का कथा क्षेत्र मेरीगंज नामक गाँव है। 'रेणु' ने इस उपन्यास के माध्यम से मेरीगंज में व्याप्त गरीबी, रोग भुखमरी, धर्म की आड़ में हो रहे व्यभिचार, शोषण, अंधविश्वासों आदि का चित्रण किया है। ''मेरीगंज एक बड़ा गाँव है, बारहो बरन के लोग रहते हैं। गाँव के पूरब एक धारा है जिसे कमला नदी कहते हैं। बरसात में कमला नदी भर जाती है, बाकी मौसम में बड़े गढ़ों में पानी जमा रहता है - मछलियों और कमल फूलों से भरे हुए गड्ढे। पौष पूर्णिमा के दिन इन्हीं गड्ढों में कोशी स्नान के लिए सुबह से शाम तक भीड़ लगी रहती है।''3

'मैला आंचल' का नायक एक युवा डॉक्टर है जो अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद मेरीगंज जैसे गाँव को चुनता है। मेरीगंज गाँव का ग्रामीण जीवन के पिछड़ेपन, दुःख-दैन्य, अंधविश्वास के साथ-साथ तरह-तरह के सामाजिक शोषण में फंसी हुई जनता की पीड़ाओं से साक्षात्कार होता है। ''कपड़े के बिना सारे गाँव के लोग अर्धनग्न हैं। मर्दों ने पेंट पहनना शुरू कर दिया है और औरत आंगन में काम करते समय एक कपड़ा कमर में लपेटकर काम चला लेती है, बारह वर्ष तक के बच्चे नग्न ही रहते हैं।''4 'मैला आंचल' में जाति के आधार पर भी पृथक किया गया है जिसमें तीन जाति की प्रमुखता है - कायस्थ, राजपूत और यादव है। उच्च जाति वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों का शोषण करते हैं। 'मैला आंचल' में किसान-जमींदार की आर्थिक असमानता के कारण समाज में उच्च और निम्न वर्गों का जन्म हुआ है।

'मैला आंचल' की तरह 'परती परिकथा' में भी जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता का चित्रण किया गया है। 'मैला आँचल' की तरह 'परती परिकथा' में भी उच्च एवं निम्न वर्गों में बाँटा गया है। 'परती परिकथा' में 'रेणु' ने परानपुर गाँव के बारे में लिखा है कि किस प्रकार इस गाँव में भी जातियों और उपजातियों की स्थिति बहुत ही खराब है। ''गाँव में दलित वर्ग को हर तरह से मर्दित करके रखा गया था, अब तक नाटक मंडली के लिए प्रत्येक वर्ष खलिहान पर ही चन्दे का धान लेते थे।''5

'परती परिकथा' में भी जमींदारी प्रथा का अन्त, नये बन्दोबस्त, भूमिदान, ग्रामीण नेताओं का अभ्युदय, नेताओं की स्वार्थ-परायणता, घूस, राजनीतिक पार्टियों की धाँधली आदि का चित्रण करते हुए स्वतंत्र भारत की प्रगति एवं दुर्गति का दिग्दर्शन करवाया है। 'रेणु' ने 'दीर्घतपा' में भी ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है। ''आधुनिकतावादी उपकरणों के सन्निवेश से गाँव का वातावरण

अपने-आप बदलने लगता है। इस बदलाव में ही अवसरवादी कांग्रेसियों के नकाब उतारकर युवा पीढी के संघर्षों को जिस ढंग से चित्रित किया गया है वह 'रेणु' की ऐतिहासिक धारा की पहचान का सूचक है।''6

संदर्भ सूचीः-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ - 697
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ - 697
3. मैला आँचल - फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृष्ठ - 14
4. मैला आँचल - फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृष्ठ - 117
5. परती परिकथा - फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृष्ठ - 314
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ - 697

■

रेणु का राजनीतिक दृष्टिकोण और 'मैला आँचल'

राजेश कुमार यादव
शोधार्थी, ति0 माँ0 भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

फणीश्वरनाथ रेणु स्वतंत्रता सेनानी तथा राजनीतिक कार्यकर्ता पहले और लेखक बाद में थे। वे देश में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था चाहते थे, जो समाज को मानवीय और व्यक्ति को सामाजिक बनाए। यही दृष्टि लेकर 1942 से राजनीति में सक्रिय रहे, जो उनके साहित्य में परिलक्षित है। इसी वर्ष संघर्ष के दौरान गिरफ्तारी हुई और भागलपुर के केन्द्रीय जेल में तीन वर्षों तक कैदी बने रहे। रिहाई के बाद भी राजनीतिक संघर्ष चलता रहा। 1947 में जूट-मिल मजूदरों के आंदोलन में सक्रिय हिस्सेदारी दी, जिसमें दुबारा जेल जाना पड़ा। 1948 में डालमियानगर में मजदूरों के साथ हड़ताल की। 1950 में राणाशाही के विरुद्ध संघर्ष किया। 1952 तक समाजवादी पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता बने रहे। 1972 में निर्दलीय बिहार विधानसभा का चुनाव लड़े, परन्तु विजयी नहीं हो पाए।

लोकधर्मी कथाकार रेणु की विहंगम दृष्टि से कोई भी सामाजिक पहलू बच नहीं सका। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और संस्कृति के प्रत्येक पहलु को स्वयं जीया-भोगा है। इसकी स्पष्ट छाप उनके उपन्यास 'मैला आँचल' से लेकर 'पल्टू बाबू रोड' और कहानी 'बट बाबा' से लेकर अंतिम कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' में दिखती है। 'मैला आँचल' जब लिखा था, तब भारतीय समाज लोकतंत्र की ओर कदम बढ़ा रहा था। मैनेजर पाण्डे ने लिखा है- ''मैला आँचल एक सशक्त राजनीतिक उपन्यास है।'' इसमें भारतीय लोकतंत्र के सामने खड़ी समस्याओं और विडम्बनाओं की जटिलता का विशद् चित्रण है। उपन्यास का प्रारंभ 1942 के जन-आंदोलन से होता है। उपन्यास के छठे अध्याय में रेणु की विशिष्ट राजनीतिक दृष्टि दिखती है। उपन्यास में राजनीति के कई स्वर हैं- ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था, स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न राजनीतिक दल, ग्रामीण, शहरी, स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक व्यवस्था इत्यादि का चित्रण हुआ है। आज जिस पूँजीवाद के चंगुल में देश फँस रहा है, उसका संकेत उन्होंने 'मैला आँचल' में दे दिया था। अतः समाजवादी सोच ही उनका और उनके साहित्य का आदर्श है।

■

रेणु एवं मधुकर गंगाधर के उपन्यासों में कोशी का आँचलिक जीवन

सजन कुमार
शोधार्थी, ति0 माँ0 भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

विश्व में किसी भी स्थान का नाम वहाँ के व्यक्ति-विशेष, भाषा, संस्कृति, पर्वत, पठार आदि के नाम पर होता है। जिस प्रकार सिन्धु नदी के नाम पर 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' कहलाई, उसी प्रकार कोशी नदी के नाम पर वहाँ का निकटवर्ती क्षेत्र

'कोशी-अंचल' कहलाया। भारत के विशाल नक्शे पर कोशी-अंचल एक छोटी-सी स्याही बिन्दु के समान है, किन्तु यहाँ का भूभाग, मौसम और मानव इकाई हिमालय से कन्याकुमारी और अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक सर्वथा भिन्न है। इस भिन्नता को दर्शाते हुए कोशी-अंचल को वैश्विक पहचान दिलाने वाला कोई और नहीं, बल्कि 'नई कहानी' धारा (1950-1960) के शीर्षस्थ व मौलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु हैं। इस काल में और भी कथाकार हुए, परन्तु उनके जैसा सामाजिक ध्वनि तरंगों को अमरता प्रदान करने वाले कम हुए।

कोशी-अंचल के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक-जीवन के विविध परिप्रेक्ष्यों को अपने कथा-साहित्य का मुख्य विषय बनाया। वहाँ की बाढ़, बीमारियाँ, गरीबी, भूखमरी, खून-पसीना, आँसू-कीचड़, रूढ़ि-परंपरा, विश्वास-अंधविश्वास, अशिक्षा, किसान-मजदूर, पशु-पक्षी इत्यादि के साथ वहाँ की भाषा उनके कथा-साहित्य को आज भी स्पंदित करती है। 'मैला आँचल' की भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है - ''इसमें फूल भी हैं शूल भी है, गुलाब भी है, कीचड़ भी है, चन्दन भी है, कुरूपता भी - मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।'' उनके समकालीन ऐसे ही एक और कथाकार हुए मधुकर गंगाधर। दोनों के उपन्यासों में समरूपता अधिक और भिन्नता कम है। उपन्यासों में अंचल विशेष की समस्याओं को अवश्य उठाया है, परन्तु वह समस्या पूरे देश की है। उनके साहित्य को सिर्फ आँचलिकता के दायरे में संकुचित करना अनुचित होगा। उनकी विहंगम दृष्टि से सामाजिक-जीवन के कोई पहलू अनछुआ नहीं है।

■

हिंदी साहित्य के अमूल्य धरोहर हैं फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज

कृष्ण कुमार
शोधार्थी, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय

फणीश्वरनाथ रेणु के जन्मशती के अवसर पर उनकी रचनाओं को नये सिरे से खंगाला जा रहा है। ऐसा कोई पहली बार नहीं हो रहा है। इससे पहले भी अनेक विद्वानों और शोधार्थियों ने रेणु के साहित्य और उनके रचना-संसार पर अलग-अलग .ष्टिकोण से शोध किया है। शोधार्थियों ने उनके रचना-संसार के आधार, उनमें बसे पात्रों, उन पात्रों की गतिविधियाँ, उन पात्रों की सोच, उन पात्रों की बातचीत और उनसे जुड़ी हर एक बात को नये सिरे से समझने की कोशिश की है। इसके बावजूद आज भी उनके रचना-संसार में कई बिन्दु ऐसे हैं, जिन पर शोध किये जाने की संभावना बची हुई है। यह बात उनकी हर विधा की रचनाओं के लिए लागू होती है। 1954 में उनका पहला उपन्यास 'मैला आंचल' प्रकाशित हुआ, जिसने रेणु के साथ पूर्णिया और बिहार को भी खास पहचान दी। 'रेणु' को जितनी प्रसिद्धि उपन्यासों से मिली, उतनी ही प्रसिद्धि उनको उनकी कहानियों से भी मिली। 'ठुमरी', 'अग्निखोर', 'आदिम रात्रि की महक', 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप', 'अच्छे आदमी' आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। हिंदी सिनेमा में मील का पत्थर मानी जाने वाली फिल्म 'तीसरी कसम' उनकी कहानी 'मारे गए गुलफ़ाम' पर आधारित है। कथा-साहित्य के अलावा उन्होंने संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि विधाओं में भी लिखा। इन सभी विधाओं में अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से शोध किये हैं, लेकिन उनके तमाम साहित्य में आज भी वही ताजगी बनी हुई है, जो उसके लिखे जाने के समय में थी। यहाँ मेरा उद्देश्य रेणु के रचना-संसार पर किये जाने वाले शोध की संभावनाओं का जिक्र करना नहीं, बल्कि रेणु के रिपोर्ताजों की कुछ खास विशेषताओं का जिक्र करना है, क्योंकि उनके रिपोर्ताजों ने इस विधा को एक विकसित विधा के रूप मे स्थापित किया और हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया।

वैसे तो हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज की शुरुआत शिवदान सिंह चौहान के 'लक्ष्मीपुरा' से माना जाता है। कई दूसरे लेखकों ने भी छिटपुट रिपोर्ताज लिखे, लेकिन उसे व्यापक मान्यता रेणु जी ने ही दिलायी। 'बिदापत नाच' रेणु जी का पहला रिपोर्ताज है, जो साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में अगस्त 1945 में प्रकाशित हुआ था। इस रिपोर्ताज के संबंध में रेणु जी की रचनाओं का संपादन करने वाले भारत यायावर ने लिखा है कि ''साप्ताहिक 'विश्वमित्र' के संपादक ने 'बिदापत नाच' को रिपोर्ताज नहीं कह कर इसे लेख कहा है। इससे स्पष्ट है कि तब तक रिपोर्ताज विधा से अधिकांश हिंदी साहित्यकार अनभिज्ञ थे।'' 'बिदापत नाच' के बाद रेणु जी ने कई रिपोर्ताज लिखे। उनके लिखे रिपोर्ताजों में प्रमुख हैं- 'सरहद के उस पार', 'जै गंगा', 'डायन कोसी', 'रामराज्य',

'हड्डियों का पुल', 'हिल रहा हिमालय', 'नेपाली क्रांति कथा' आदि। 'पटना-जलप्रलय' उनका अंतिम रिपोर्ताज है, जिसका प्रकाशन 'दिनमान' में 1975 ई. में हुआ था। रेणु जी के रिपोर्ताजों के प्रकाशन के बाद हिदी साहित्य में रिपोर्ताज को एक अलग मान्यता मिली। उसे पत्रकारिता और साहित्य दोनों ही विधाओं में एक समान महत्वपूर्ण स्थान मिला। उनके रिपोर्ताजों के संग्रह को पत्रकारिता की दुनिया से जुड़े लोग 'पत्रकारिता की गीता' मानते हैं तो साहित्य से जुड़े लोग एक कालजयी साहित्यिक कृति मानते हैं। अगर अनुभूति और प्रभावोत्पादकता के स्तर पर देखा जाए तो इस स्तर पर रेणु जी के रिपोर्ताज उनकी दूसरी रचनाओं से काफी आगे हैं। मेरा मानना है कि अगर रेणु जी ने रिपोर्ताज-लेखन के अतिरिक्त दूसरे साहित्यों का सृजन नहीं किया होता, तब भी हिन्दी साहित्य में उनका यही आदर होता।

रेणु जी ने अपने रिपोर्ताजों में अपने आस-पास होने वाली घटनाओं को विषय-वस्तु बनाया है। 'विदापत नाच' में उन्होंने ग्रामीण लोगों द्वारा विद्यापति की पंक्तियों को आधार बनाकर लोकनृत्य और लोकगायन प्रस्तुत करने की परंपरा पर लिखे गये रिपोर्ताज में उन्होंने एक लोक-परंपरा के बहाने ग्रामीण इलाके में बसने वाले आर्थिक रूप से कमजोर लोगों की जीवन-शैली को चित्रित किया है। इसी तरह 'जै गंगा' में गंगा में आने वाली बाढ़ से प्रभावित होने वाले लोगों की परेशानी की बात कही है तो 'डायन कोसी' में कोसी के किनारे बसने वाले लोगों की कठिन जीवन-शैली को चित्रित किया है। 'सरहद के उस पार' और 'नेपाली क्रांति कथा' में नेपाल में राजशाही के खिलाफ होने वाली क्रांति का सजीव वर्णन किया है। उनका लिखा 'पटना जलप्रलय' सोन और गंगा के उफनने के बाद पटना में आयी भीषण बाढ़ और इस दौरान यहाँ के जन-जीवन की स्थिति का सजीव चित्रण है।

अपने तमाम रिपोर्ताज में रेणु जी ने अपने आस-पास की घटनाओं को उठाया और उसे पूरी संजीदगी और बारीकी से शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सबसे खास बात यह है कि इन सभी रिपोर्ताज में रेणु जी ने घटनाओं को खुद ही महसूस किया है। 'डायन कोसी' में उन्होंने कोसी किनारे बसे लोगों की परेशानी को जिस तरह चित्रित किया है, वह दूसरे इलाके के लोगों को भले ही अतिशयोक्ति लगे, लेकिन कोसी के किनारे बसे लोग जानते हैं कि इसमें लिखी हुई एक-एक बात सच है और रिपोर्ताज में लिखी हुई बातें बार-बार दुहराती रहती हैं। इसी तरह 'नेपाली क्रांति कथा' में वह खुद भी एक पात्र हैं और उन्होंने क्रांति के दौरान होने वाली एक-एक घटना को खुद ही महसूस किया है और फिर उसे शब्दों में बयां किया है। यह किसी एक या दो रिपोर्ताज की बात नहीं है, रेणु जी के सभी रिपोर्ताज की एक ही खासियत है कि उन्होंने अपने आस-पास की घटनाओं को पहले भोगा और महसूस किया फिर उसे शब्दों के माध्यम से दूसरे लोगों को दिखाया।

साहित्य के क्षेत्र में एक सामान्य धारणा और अटल सत्य यह है कि साहित्यकार अपनी रचनाओं के पात्रों, घटनाओं और परिवेश का चयन अपने आस-पास से ही करते हैं। रेणु जी भी इसके अपवाद नहीं थे। उनके पात्र और परिवेश भी उनके आस-पास के पात्र और परिवेश से निकलकर कागज के पन्नों तक पहुँचे थे। उनकी रचनाएँ 'रचना-आधार' के चयन के सामान्य नियम के अनुरूप होते हुए भी इस मायने में अलग रही हैं कि रेणु जी ने खुद अपने पात्रों और उनके परिवेश को जीया है। उनकी रचनाओं में उनकी अनुभूति भी जुड़ी हुई है, इसलिए ये रचनाएँ पाठकों को भी उन पलों और परिस्थितियों की अनुभूति कराती है, जिसे वह पढ़ता रहता है।

रेणुजी के रिपोर्ताज की दूसरी सबसे बड़ी विशेषता उसकी भाषा है। अपने रिपोर्ताज में रेणु जी ने जिस सहज और सरल लोकभाषा का प्रयोग किया है, वह उनके रिपोर्ताज में न सिर्फ भाषा को प्रवाह देता है, बल्कि रिपोर्ताज में व्यक्त भाव को भी काफी प्रभावशाली और प्रवाहमयी बना देता है। उन्होंने इन रिपोर्ताजों में अपनी अभिव्यक्ति की वही भाषा रखी है, जो भाषा उनकी कहानियों या फिर उपन्यासों की भाषा है। इस भाषा के साथ उन्होंने जिस तरह रिपोर्ताजों में मौजूद पात्रों के मुँह से उनकी बातों को उनकी ही बोली में कहलाया है, वह पूरे रिपोर्ताज की भाषा पर अपना खास प्रभाव छोड़ती है। उनके रिपोर्ताज 'डायन कोसी' की कुछ पंक्तियाँ इस बात का बेहतरीन नमूना है कि उनके रिपोर्ताज की भाषा कैसी है- '''कोसी मैया' का मन मैला हो गया। कोसी के किनारे रहने वाले इंसान 'मैया' के मन की बात नहीं समझते, लेकिन कोसी के किनारे चरने वाले जानवर पानी पीने के समय सब कुछ सूँघ लेते हैं। नथुने फुला कर वे सूँघते, 'फों-फों' करते और मानो किसी डरावनी छाया को देख कर पूंछ उठाकर भाग खड़े होते।'' इसी तरह 'पटना-जलप्रलय' में उन्होंने तेजी से बढ़ते बाढ़ के पानी का हाल एक रिक्शावाले के मुँह से कुछ इस तरह कहलवाया है- ''पाँच बजे जब कॉफी हाउस जाने के लिए (तथा शहर का हाल मालूम करने) निकला तो रिक्शेवाले ने हँसकर कहा -''अब कहाँ जाइएगा ? कॉफी हाउस में तो 'अबले' पानी आ गया होगा !''..... ''

सहजता रेणु की शैली की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी यह विशेषता उनके रिपोर्ताज में भी परिलक्षित होती है। वह किसी भी बात को अनगढ़ और सहज तरीके से कहते हैं, वह पूरे रिपोर्ताज को काफी प्रभावशाली बना देता है। अपनी बातों को

कहने का सहज अंदाज रेणु जी की शैली को एक अलग पहचान देता है। उनकी यह शैली उनकी शुरुआती रिपोर्ताज से ही दीखने लगती है। उन्होंने 'बिदापत नाच' में पूरे माहौल और घटनाक्रम का चित्रण जिस तरह सहज शैली में किया है, वह यह बताने के लिए काफी है कि उन्होंने शुरुआत से ही अपनी एक विशिष्ट शैली का विकास कर लिया था। द्रष्टव्य है 'विदापत नाच' की कुछ पंक्तियाँ- ''सात-आठ कलाकार, दो वाद्य-यंत्र- मृदंग और मजीरा, एक विदूषक और दो तीन सहायक गवैये के साथ लाल घाँघरी और पीतल-काँसे के गहनों के साथ चलने वाला यह 'विदापत नाच' अपने समय और विद्रूप स्थितियों पर खुलकर कटाक्ष करता है। मृदंग की ताल पर जब नर्तक चारों ओर भाँवरी यानी चक्कर देना शुरू करता है तो दर्शक निहाल हो जाते हैं।''

निष्कर्ष के तौर पर हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि रेणु जी ने अपने रिपोर्ताजों के जरिए न सिर्फ अपने समय की घटनाओं को कलमबद्ध किया, बल्कि उन्होंने इस विद्या को एक नया आयाम और नयी ऊँचाई दी। ये रिपोर्ताज न सिर्फ किसी कालखंड की किसी घटना के दस्तावेज हैं, अपितु ये हिन्दी साहित्य के अनमोल धरोहर हैं जिसमें युगों-युगों तक ताजगी बनी रहेगी।

■

रेणु की कहानियों में ग्रामीण संवेदना

रामरतन कुमार
शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय,गया

रेणु की कहानियों में ग्रामीण संवेदना की विविध चित्र-छवियों की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी कहानियों में आजादी के बाद व्यवस्था से मोहभंग एवं उससे उत्पन्न अंतर्द्वंद्व का चित्रण हुआ है। तत्कालीन परिस्थिति एवं परिवेश के अनुसारव्यक्ति के सुख-दुख, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम व श्रद्धा आदि मानवीय संवेदनाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। रेणु की पहली कहानी की बात की जाय तो 'बट बाबा' नाम से कलकत्ता से निकलने वाली साप्ताहिक 'विश्वमित्र' 1944 ई. में प्रकाशित हुई थी। उनका पहला कहानी-संग्रह 'ठुमरी'1957 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह ने उन्हें खासी लोकप्रियता दिलाई। इस तरह उनकी कथा रचना का वास्तविक विकास 'नयी कहानी' के दौर से आरंभ हुआ और हिन्दी कहानी के अनेक पड़ावों से गुजरती हुई उनकी जीवन-यात्रा के साथ समाप्त हुई। इस तरह कहा जा सकता है कि रेणु के कथा साहित्य पर आजादी के बाद की समकालीन परिस्थिति एवं परिवेश का व्यापक प्रभाव रहा है।

छठे दशक में जहाँ प्रायः कथाकार यथा-निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव आदि नगरीय संवेदना को कहानी का विषय बनाकर सृजन कर्म में लगे हुए थे तो वहीं रेणु नगरीय खेमे से अलग ग्रामीण संवेदना को, जिसमें वे ग्रामीण परिस्थिति एवं परिवेश के अनुकूल यथा-अशिक्षा, बेरोजगारी, धार्मिक-आडंबर, जातीय-असमानता, परंपरागत रूढ़ियाँ एवं व्यवस्थागत-मोहभंग से उत्पन्न अंतर्द्वंद एवं सामाजिक विषमता को कहानी का विषय बनाते हैं। इनकी कहानियों में जहाँ आजादी के बाद जनप्रतिनिधियों, यथा- नेता, ऑफिसर, पुलिस, धर्मगुरु आदि की भ्रष्टता का सजीव चित्रण हैं तो वहीं तत्कालीन व्यवस्था-परिवर्तन एवं स्थानांतरण के कारण मानवीय संवेदना में उत्पन्न अंतर्द्वंद्व का भी। आर्थिक-अभाव की पूर्ति के लिए गाँव से पलायन करना और अपने देश, समाज, लोक आदि के प्रति आसक्ति व अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति 'विघटन के क्षण','उच्चाटन' आदि कहानियों में हुई है। इसके साथ ही इनकी कहानियों में ग्रामीण अंचल या लोक-जीवन में विकसित मानवीय संवेदना के अंतर्गत, यथा -ईर्ष्या-द्वेष, लोभ-मोह, प्रेम व श्रद्धा आदि का सजीव चित्रण हुआ है। इस प्रकार रेणु ने नगरीय जीवन की अपेक्षा आवश्यक संसाधनों से वंचित ग्रामीण अंचल की परिस्थिति एवं परिवेश में व्याप्त अव्यवस्था, सामाजिक विषमता, बदहाली आदि का चित्रण कर मानवीय संवेदना के विविध रूपों का सृजन किया है।

■

रेणु-साहित्य का समकालीन संदर्भ

पिंकी कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद (झारखंड)

हिंदी साहित्य जगत में फणीश्वरनाथ 'रेणु' एक ऐसा नाम है जो आंचलिक साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं, इनकी सभी रचनाएँ भारतीय ग्रामीण संस्कृति का स्पष्ट दर्पण है। रेणु जी के साहित्य में व्याप्त आंचलिकता समाज, राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन देती है, जो मानवता को सबसे ऊपर रखती है। रेणु की सभी रचनाओं के पात्र काल्पनिक नहीं होते हैं, बल्कि इसके सभी पात्र रचे बसे होते हैं। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आँचल' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। 'तीसरी कसम' कहानी एक ऐसी कहानी है ,जो ग्रामीण परिवेश को दर्शाती हुई वहाँ के यथार्थ से हमें अवगत कराती है, जिसमें हीरामन एक सरल हृदय वाला व्यक्ति है जो समस्त गाँव के पुरुषों का प्रतिनिधित्व करता है।

रेणु-साहित्य में व्याप्त आंचलिकता, मानवता की खोज, ग्रामीण परिवेश और राष्ट्रीयता,लोक जीवन का समावेश, भारतीय संस्कृति, महिला सशक्तिकरण, बाल शिक्षा, अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति लोगों में जागरूकता आदि इनकी कथ्य शैली की विशेषता रही है।

रेणु के संबंध में उठाए गए सवाल वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं अथवा नहीं तो यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अति आवश्यक है कि फणीश्वर नाथ रेणु वर्तमान समय में प्रासंगिक हैं। उनकी रचनाएँ आज भी लोगों को नयी चेतना, नयी दिशा और दशा प्रदान करने में सक्षम है।

■

रेणु एवं चन्द्रकिशोर जायसवाल के कथा-साहित्य में सामाजिक जीवन

चन्द्रनाथ झा
शोधार्थी, ति0 माँ0 भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी साहित्य के प्रमुख आँचलिक उपन्यासकारों में अग्रणी माने जाते हैं। रेणु ने अपने कथा साहित्य में मानवीय संबंधों को केन्द्र में रखकर साहित्य की रचना की है। अपनी रचना में अंचल-विशेष की समग्र विशेषताओं, विविधताओं, ग्रामीण जीवन के बदलते परिवेश, आकुलता, आक्रोश, घृणा, जीवन की आपाधापी, असंतोष, सामाजिक संपूर्णता, व्यापक यथार्थ, संक्रमण की वस्तुस्थिति आदि को सामाजिक परिवेश के द्वारा सार्थक जीवन-संदर्भों के गवेषण का हरसंभव प्रयास किया है।

रेणु ने अपने कथा-साहित्य में वातावरण और देशकाल का सूक्ष्मतम निरूपण किया है। उन्होंने सामाजिक परिवेश का अंकन बहुत ही सजगता के साथ किया है। 'पहलवान की ढोलक' कहानी में परिवेश का चित्रण इस प्रकार है- ''मलेरिया और हैजे से पीड़ित गाँव मयार्त्त की तरह घर-घर काँप रहा था। पुरानी और उजड़ी बाँस-फूस की झोपड़ियाँ में अंधकार और सन्नाटे का सम्मिलित साम्राज्य। अंधेरा और निस्तब्धता।'' देशकाल और वातावरण का ऐसा चित्रांकन करना रेणु की खासियत थी, जो अन्य साहित्यकारों में बहुत ही कम देखने को मिलता है। रेणु जी अपने कथा साहित्य की कथावस्तु अधिकतर समकालीन घटनाओं को ध्यान में रखते हुए लेते थे।

रेणु के समकालीन ही एक और कथाकार हुए चन्द्रकिशोर जायसवाल। इनकी भी रचना क्षेत्र विशेष रूप से कोशी अंचल रहा है। इनके कथा-साहित्य का वही यथार्थ चित्रण है, जो रेणु में है।

जायसवाल जी ने अपने कथा-साहित्य में उन प्रवृत्तियों, दिशाओं और संभावनाओं पर संक्षेप में दृष्टिपात किया है, जो परंपरागत सामाजिक एवं पारिवारिक उपन्यासों/कहानियों से भिन्न आधारभूमि पर रचित हैं। इसलिए एक और समकालीन कथा-साहित्य में कृषि संबंधी संघर्ष, स्त्री समाज, दलित विमर्श, गरीब-निर्धन एवं हाशिए पर पहुँचे अन्य समाज, साम्प्रदायिकता अल्पसंख्यक समाज, भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद के बीच से उभरते नए भारतीय समाज जैसे विषयों के कई बिन्दु पर चन्द्रकिशोर

जायसवाल जी अपनी लेखनी की अमिट छाप छोडते हैं, दूसरी ओर वस्तुगत इन्हीं बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में शिल्प-शैलीगत विशेषताओं के साथ लेखन में उनके कथा-साहित्य की सघन पड़ताल की है। जायसवाल जी अपनी रचना के माध्यम से सामाजिक जीवन मूल्यों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

■

रेणु की पत्रकारिता में मानवीय संवेदना

अमित कुमार मिश्रा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु का नाम हिंदी कथा साहित्य में जितने सम्मान से लिया जाता है उतने ही सम्मान से उनका नाम पत्रकारिता के क्षेत्र में भी लिया जाता है। उन्होंने कथा साहित्य में भी नवीन शैली (आंचलिकता) का प्रतिपादन किया और पत्रकारिता में भी नवीन शैली के रूप में रिपोर्ताज के महत्त्व की स्थापना की। हिंदी पत्रकारिता में रेणु ने रिपोर्ताज के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। वैसे हिंदी रिपोर्ताज रेणु के लिखने से पहले ही विकसित हो चुका था लेकिन रेणु ने इस विधा को एक अलग पहचान दिलायी। रेणु के रिपोर्ताज की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. अमरनाथ ने लिखा है-

'रेणु के रिपोर्ताज में भाव जगत का एक नया संदर्भ है, जिसमें अनेक क्रांतिकथाएँ उभर कर आई हैं।'

सच्चे अर्थों में रेणु ने पत्रकारिता की ही नहीं, हिंदी जगत की वास्तविक पत्रकारिता से परिचय भी करवाया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जब कहा कि 'आरंभ में साहित्य और पत्रकारिता एक-दूसरे से घुले-मिले थे।' तब शायद पत्रकारिता और साहित्य विलग हो चुके थे लेकिन रेणु ने पुनः यह प्रमाणित कर दिया कि साहित्य और पत्रकारिता अब भी घुले-मिले हैं। रेणु के रिपोर्ताज मुख्य रूप से पटना से प्रकाशित 'जनता' में प्रकाशित होते थे । जै गंगा, डायन कोशी, हिल रहा हिमालय आदि रिपोर्ताज अपने समय में काफी चर्चित हुए थे। 'विदापत नाच' रेणु का पहला रिपोर्ताज है । उसके बाद 1947 के मार्च में (जनता में) 'सरहद के उस पार' छपा। उनके रिपोर्ताज की बानगी 1949 में किसान आंदोलन की रिपोर्ताज में देखी जा सकती है -

'गांधी जी का नाम लो, क्या सुबह-सुबह रोटी की रट लगा रखी है तुमने । नेहरू जी की बात सुनो, टबों में खेती करो, गमलों में अन्न ऊपजाओ, शकरकंद खाओ ।'

आज भी पूरे भारतवर्ष में किसान आंदोलन पर हैं। सरकार और किसानों के बीच ठनी पड़ी है। लेकिन रेणु जैसे किसी पत्रकार का होना मुश्किल है जो किसानों के बीच जाकर उनकी समस्या को, उनके बीच में रहकर महसूस करें। उस पर रिपोर्ट तैयार करे, लिखे।

■

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में समकालीनता

शिखा
पी-एच0डी0, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

महान लेखकों की विशेषता होती है कि वह हर युग में समकालीन बना रहता है। समकालीन रचनाकार वह नहीं होता, जो समकालीन की तरह लगता है। कभी-कभी समकालीन लगने वाला भी गैर समकालीन होता है और गैर समकालीन भी नितान्त समकालीन होता है। फणीश्वरनाथ रेणु (1921ई0) इसी परिभाषा को परिभाषित करते हैं, जो अपनी रचनाओं से समकालीन बने हुये हैं। फणीश्वरनाथ की कहानियों में समकालीनता स्वयम् सिद्ध है।

फणीश्वरनाथ रेणु कहते थे, ''अपनी कहानियों में मैं अपने-आप को ही ढूँढ़ता फिरता हूँ। अपने को अर्थात् आदमी को''1

निर्मल वर्मा ने रेणु की 'समग्र मानवीय दृष्टि' का उल्लेख करते हुए अपने समकालीनों के बीच उन्हें 'संत' की तरह उपस्थित बताते हुए लिखा है कि ''बिहार के छोटे भूखण्ड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तरी भारत के किसान की नियति रेखा को उजागर किया।''2

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कहानियों मे ऐसे पात्रों को गढ़ा जिनमें एक दुर्दम्य जिजीविषा देखने को मिलती है, जो गरीबी, अभाव, भूखमरी, प्राकृतिक आपदाओं से जूझते हुए मरते भी हैं पर हार नहीं मानते।

रेणु की कहानियाँ नादों और स्वरों के माध्यम से नीरस भावभूमि में संगीत से झंकृत होने लगती हैं। रेणु अपनी कथा-रचनाओं में एक साधारण मनुष्य, (पार्टी, धर्म, झंडा रहित होकर) नजर आते हैं। वे कहते हैं कि ''मैंने जमीन, भूमिहीनों और खेतीहर मजदूरों की समस्याओं को लेकर बातें की। जातिवाद, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार की पनपती हुई बेल की ओर मात्र इशारा नहीं किया था, इसके समूल नष्ट करने की आवश्यकता पर भी बल दिया था।''3

रेणु के इस आत्म-वक्तव्य से स्पष्ट है कि जीवन और समाज के प्रति उनका सरोकार प्रेमचंद की तरह ही है।

रेणु की कथा-रचनाएँ आंचलिक कही जाती रही हैं। यद्यपि रेणु की कथा-रचनाओं को सिर्फ आँचलिक नहीं कहा जा सकता अपितु राष्ट्रीय भी है। रेणु की पहली कहानी 'बट बाबा' 1944 ई. में 'विश्वमित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। बहुत ही मार्मिक कहानी, बरगद के प्राचीन पेड़ के इर्द- गिर्द घूमती है। इस कहानी में रेणु ने भारतवर्ष और हिमालय के संबंध को दर्शाया है। इसी वर्ष रेणु की एक और कहानी 'पहलवान का ढोलक' में पहलवान मर जाता है पर चित्त नहीं होता अर्थात् पराजित नहीं होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के काल का भयावह चित्र बनाने में सफल हुए हैं। रेणु की हरेक कहानी में जीवन के हर पहलू को प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष के रूप में यह बात कही जा सकती है कि फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ अपने समय और समाज से गहरे स्तरों पर जुड़ी होती हैं। आज के इस दौर में रेणु जी की कहानियाँ प्रासंगिक हैं जो उन्हें समकालीन बनाये हुए हैं। इनकी कहानियाँ अपने समय से जितने गहरे स्तरों पर जुड़ी हैं, उतनी ही सर्वकालिक भी हैं।

संदर्भ सूची :

1) रेणु रचनावली-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-7
2) रेणु रचनावली-1, पृ0- 435
3) वहीं, पृ0- 388

■

'मैला आँचल' में संवाद योजना

डॉ. अनामिका कुमारी
पूर्व शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

'रेणु' के संवादों में अपनापन है। रेणु ने संवादों में पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार कई तरह की भाषा और कथन-कौशल का प्रयोग किया है। यहाँ संवाद की अन्य विशेषताओं पर दृष्टिपात किया जा सकता है। 'रेणु' के संवादों के कथन-कौशल पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने पात्रों की मानसिकता और परिस्थितियों के अनुसार कथन को सरल, लघु, दीर्घ, त्वरित, मंथर, रसात्मक, व्यंग्यात्मक बनाया है। जैसे बालदेव जी जब कोई बात कहते हैं तो उसमें एक सरलता होती है। इसलिए कथन की पद्धति, वाक्य-योजना, शब्द-विन्यास सभी में सरलता दिखती है, लेकिन ज्योतिषी काका के कुछ भी कहने का ढंग टेढ़ा होता है। वे बात को कभी सीधे नहीं कहते और जो कहते भी हैं तो सदा उसमें एक व्यंग्य या मखौल छिपा होता है। निम्नवर्ग की तेज औरतों के कथन में एक और तरह की भंगिमा होती है, जिसमें गाली-गलौच के साथ-ही-साथ कटाक्ष का भी स्वर निहित होता है। कालीचरन जैसे समाजवादी नेताओं के कथन में सीधापन तो होता है, लेकिन उसमें ताप है। दूसरी ओर लुत्तो जैसे नेताओं के कथन में ताप भी है, और छल छद्म की वक्रता भी। लक्ष्मी, डॉक्टर, पवित्रा, कमली, जितेन्द्र, ताजमनी के संवादों में प्रेम की या मानवता की एक सरल तरलता है। इस प्रकार रेणु के संवाद विभिन्न पात्रों की मानसिकता के प्रभाव से अनेक रूप और रंग ग्रहण करते हैं। वे निरपेक्ष तात्त्विक संवाद नहीं हैं, बल्कि वस्तुजगत से जुड़े हुए व्यावहारिक संवाद हैं। रेणु

की चरित्र-योजना के संदर्भ में यह बात देखी गई कि कोई या कुछ पात्र स्थिर रूप से एक साथ बहुत दूर तक नहीं चलते, बल्कि अनेक पात्र एक-दूसरे को त्वरित गति से काटते हुए आते हैं और अनेक पात्रों की एक भीड़-सी बनती चलती है। इसलिए दो पात्रों में बहुत देर तक संवाद भी नहीं चलते बल्कि कई-कई पात्रों के संवाद एक साथ चलते हैं, और कभी-कभी यह उल्लेख नहीं किया जाता कि कौन बोल रहा है। सावधानी से देखने पर ही यह मालूम पड़ता है कि यह किसका कथन है। और ऐसी स्थिति में यह भी स्वाभाविक है कि संवाद छोटे-छोटे हों। ये छोटे-छोटे संवाद एक-दूसरे में से गुजरते हुए एक जटिल वातावरण बुन देते हैं। कई बार तो बिना किसी पात्र के संवाद दिखायी पड़ता है। यानी यह तो लगता है कि किसी ने बोला है, लेकिन कौन बोला है यह निश्चित नहीं है। ऐसा लगता है कि बिना नाम दिए भीड़ में खड़े अनेक लोगों की बातचीत करायी जा रही है। जैसे एक प्रसंग है कुश्ती का। चंपापुर मेले का दंगल है, पंजाबी पहलवान चाँद आया हुआ है और वह अकेले दहाड़ रहा है। उस समय भीड़ के आपसी संवाद को लेखक ने बिना किसी का नाम लिए हुए प्रस्तुत किया है ''ऐं? आज भी चाँद का जोड़ा नहीं मिला?...जै-जै दुर्गा मायी की जै। जोड़ा नहीं मिला ! जै!!''

मेंपों-मेंपों। में-में...! पों-पों-पों।।

चटाक-चट-घा...! चट-घा-गिड़-घा!!

''अ-ज-ज-जा! आ-आली''

हाफ कमीज और पाजामा फाड़कर चित्थी-चित्थी करते हुए कालीचरन मैदान में उतर पड़ता है। ''ऐं! ऐं!! पागल है.. .मारो...मारो।'' नहीं जी!...जांघिया है अंदर में। "...अरे.! वाह ! यह तो असल जोड़ा है। कौन है?...अखाड़े में उतरने का ढंग ही कछ ऐसा है कि सबों की आँखें चमक उठती हैं। सभी कुमारों की निगाहें आपस में मिलती हैं-हाँ यही है चाँद की जोड़ी।

इस तरह हम देखते हैं कि इस संवाद में न केवल भीड़ की बातचीत है, बल्कि बाजे भी इसमें भाग ले रहे हैं।

संवाद का एक और रूप दिखाई पड़ता है। वह है आत्मसंवाद। इन संवादों में पात्र जैसे अपने को ही संबोधित करते हुए अपने से बात करते हैं। इन संवादों को स्वगत चिंतन नहीं कह सकते। स्वगत चिंतन में बात सोची जाती है, किंतु इन संवादों में बात बोली गयी होती है। जैसे निम्नलिखित संवाद में कोई एक व्यक्ति है, वह कोई भी हो सकता है और वह अपने से ही कह रहा है। वर्षा का दृश्य है-गड़ गड़ाम्, गड़ गड़ बादल घुमड़ा, बिजली चमकी और हरहराकर वर्षा होने लगी। इस समय वह व्यक्ति अपने से बात कह रहा है ''हाँ अब कल से धान रोपनी शुरू होगी। जै! इंद्र महाराज! बरसो...बरसो। लेकिन बीचड़ के लिए धान कहाँ से मिलेगा? आज तो पंचायत में सभी बड़े मालिक लोग बड़ी-बड़ी बात बोलते थे। कल ही देखना कैसी बात करते हैं। अपने खर्चा के जोग धान नहीं हैं, बीहन नहीं है, अथवा पहले हमको बोने दो।'' इस तरह के संवाद विशेषतया प्रेम प्रसंगों में अधिक दिखायी पड़ते हैं। अतएव रेणु जी की संवाद योजना में जीवंतता और प्रभावोत्पादकता है। यही उन्हें विशिष्ट बनाता है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु का भाषागत वैशिष्ट्य

डॉ. रोहिणी कुमारी

पूर्व शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

'रेणु' ने उपन्यास के अन्य तत्वों की तरह भाषा के क्षेत्र में भी एक नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने टकसाली खड़ी बोली के साथ आँचलिक बोली का मेल करके एक ऐसी भाषा निर्मित की है जो विशिष्ट तो है ही, सृजनात्मक क्षमता से भरपूर भी है। 'रेणु' की भाषा का सौंदर्य इस बात में तो है कि उन्होंने भाषा में स्थित सारे सौंदर्य और शक्ति का दोहन किया है। साथ ही आँचलिक बोली के संस्पर्श से एक नये प्रकार की भाषा और उसकी संभावना को जन्म दिया। 'रेणु' ने आंचलिक जीवन के विभिन्न प्रसंगों, विविध प्रकार के पात्रों, विविध मनःस्थितियों को रूपायित करने के लिए भाषा की विविध शक्तियों का उपयोग किया है। कहीं उसे वर्णन की सादगी दी है, कहीं काव्यात्मक रूप दिया है, कहीं नाटकीय वक्रता दी है, कहीं तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, कहीं तद्भव और देशज शब्दों का। कहीं विभिन्न ध्वनियों का प्रयोग किया है, कहीं कविताओं और लोकगीतों का, कहीं लोकनृत्यों और लोक-व्यापारों को भाषा में बाँधने का प्रयास किया है। कहने का अर्थ यह है कि शब्द-प्रयोग, वाक्य-विन्यास, मुहावरों, ध्वनियों,

बिंबों प्रतीकों, अलंकारों, शब्द उच्चारण आदि सभी दृष्टियों से रेणु ने भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में एक नया प्रतिमान उपस्थित किया है। रेणु की भाषा उनकी अपनी विशिष्ट भाषा है। उनके उपन्यासों की शक्ति के और अनेक आधार तो हैं ही, किंतु भाषा भी एक प्रमुख आधार है, उसकी लोक-भाषा से संपृक्ति।

''मैला आँचल में बोलचाल के शब्दों का उत्कृष्ट रूप में प्रयोग हुआ है। 'रेणु' का उपन्यास शिष्ट सामाजिक भाषा में नहीं लिखा जा सका होता, पिछले दशक की शिष्ट हिंदी में तो नहीं ही।''

अनेक आलोचकों ने 'मैला आँचल', 'परती : परिकथा' की भाषा-वैशिष्ट्य पर विचार किया है और इस भाषा की शक्ति को रेखांकित करते हुए यह भी देखने का प्रयत्न किया है कि इस भाषा का आँचलिक रूप उपन्यास के कथ्य के संप्रेषण में कितना बाधक होता है। वह सृजनात्मक अनिवार्यता से कहाँ तक जुड़ा है और कहाँ मात्र चमत्कार बनकर रह जाता है। डॉ. रामदरश मिश्र ने 'मैला आँचल' की भाषा की सृजनात्मक शक्ति में पूरी आस्था रखते हुए भी यह कहा है कि 'रेणु' संतुलन बनाए रखने में समर्थ नहीं हुए हैं। सृजनात्मक क्षति से बच सकते थे। उनके नये उपन्यास 'जुलूस' में तो उन्होंने धड़ल्ले से बंगला संवादों का प्रयोग किया है। इससे उपन्यास का प्रवाह काफी प्रभावित हो उठा है।''

डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने भी प्रकारांतर से यही बात कही है। लोक-भाषा के परिचय से स्थानीय रंग उभरता है और उपन्यास में अधिक आत्मीयता आती है पर एक विशेष सीमा के बाद इसका अतिशय प्रयोग खटकने लगता है।

ध्वनि-गति रंग रस सभी कुछ तो भाषा की रवानगी के लिए महत्त्वपूर्ण है। भाषा तो बहता नीर है। रेणु जी ने इस पहचान-यात्रा का प्रारंभ किया है। वे पहले यात्री हैं, अतः कभी-कभी दिग्भ्रमित भी हो जाते हैं, अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न करने के लोभ-संवरण में फँस चमत्कारी सीमा तक पहुँच जाते हैं।''

'रेणु' ने अपने उपन्यासों में पात्रों के अनुकूल भाषा के प्रयोग के क्रम में हिंदी की आँचलिक बोली का तो प्रयोग किया ही है, बंगला का भी प्रयोग किया है। 'जुलूस' की और 'कितने चौराहे' में तो बंगला का धुआँधार प्रयोग किया है। पात्रानुकूल भाषा की आँचलिकता का यदि यह अर्थ लिया जाएगा तो पता नहीं हिंदी भाषा की कितनी खिचड़ी बन जाएगी। यह प्रवृत्ति घातक है। शब्दों के प्रयोग तक तो छूट ली जा सकती है, किंतु वाक्य बंगला से या किसी अन्य भाषा से ले लिए जाएँ, यह ठीक नहीं है। भाषा के स्तर पर लेखक का इतना अनियंत्रित होना रचना को दुरूह करना है। 'कितने चौराहे' से कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

नाम का खूब भालो नाम। ''एखाने केनोरे? देखा काता तक तो छूट ली जा लिए जाएँ, यह ठीक रचना को दुरूह करना-

'सांवाय बोले आमाय पागोल, आमि सवाय के पागल बोली।'

'जवा होए फूटने, माँगे, तोमार चरण तले।' 'सकल देशो सेरा सेजे आमार जन्मभूमि।'

समग्रतः फणीश्वरनाथ रेणु की कथा भाषा प्रयोगात्मक और विशिष्ट है। उनकी भाषा सृजनात्मक और कलात्मक है। उनके उपन्यास तथा उनकी कहानियाँ भाषिक वैशिष्ट्य के कारण एक अलग पहचान बनाती हैं।

■

फणीश्वरनाथ रेणु का रिपोर्ताज-साहित्य : एक समीक्षा

रश्मि कुमारी

पूर्व छात्रा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

'रेणु' मूलतः कथाकार थे। उन्होंने अपने लेखन में जिस भूभाग के जीवन को लिया है, उसके वे द्रष्टा ही नहीं, भोक्ता भी थे। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में पूर्णिया जिले के जीवन यथार्थ को अनुभव के स्तर पर उभारा है। इसीलिए उनमें बड़ी प्राणवत्ता है। 'ऋणजल-धनजल' के रिपोर्ताज भी लेखक के अनुभवों से बने हैं। पटना में आई बाढ़ की विभीषिका को लेखक ने स्वयं भी भोगा था और बिहार में पड़े सूखे को उन्होंने भोगा तो नहीं था, किंतु सूखा-ग्रस्त इलाकों के बीच घूम-घूमकर मानव-यातना का साक्षात्कार किया था। वैसे गरीबी की यातना का अनुभव लेखक की कहानियों और उपन्यासों में भी उभरा है। सूखा-ग्रस्त इलाकों को देखते हुए लेखक की गरीबी के पूर्व अनुभव जैसे मूर्त हो उठे। इसलिए सूखे के प्रभाव से सीधे प्रभावित न होने के बावजूद सूखा-ग्रस्त क्षेत्र के मनुष्यों की यातना के अनुभव को मूर्त करने में लेखक सफल रहे हैं।

बाढ़ से संबंधित पाँच और सूखे से संबंधित छह रिपोर्ताज इस पुस्तक में संगृहीत हैं। इनके अलग-अलग नाम दिए गए हैं। बाढ़ से संबंधित रिपोर्ताजों के नाम हैं- 'कुत्ते की आवाज', 'जो बोले सो निहाल', 'पंछी की लाश', 'कलाकारों की रिलीफ पार्टी', 'मानुष बने रहो' और सूखे से संबंधित रिपोर्ताज हैं- 'भूमि-दर्शन की भूमिका' (1) 'भूमि-दर्शन की भूमिका', (2) 'भूमि-दर्शन की भूमिका' (3) 'भूमि-दर्शन की भूमिका' (4) 'भूमि-दर्शन की भूमिका' (5) 'भूमि-दर्शन की भूमिका' (6)।

बाढ़ हो या सूखा- ये ऐसी विभीषिकाएँ हैं जो मनुष्य को अपने आघात से अभाव-ग्रस्त ही नहीं बनातीं, बल्कि उसे कभी-कभी अमानवीय भी बना देती हैं। कहीं तो मनुष्य इन परिस्थितियों में पड़कर उभरता है और कहीं अपनी निरीहता, स्वार्थपरता, अशक्ति, मूल्यहीनता आदि का परिचय देता है। 'रेणु' ने बाढ़-संबंधी अपने रिपोर्ताजों में बाढ़ से संबंधित स्थितियों और मनः स्थितियों के अनेक पहलुओं का बड़ा जीवंत चित्रण किया है। शुरू में लोग बाढ़ की दहशत महसूस नहीं करते। जब स्वयं बाढ़ में फँस जाते हैं, तब उनका संत्रास शुरू होता है। लेखक ने प्रथम अध्याय में बाढ़ के आने के समाचार, उस समाचार के प्रति तरह-तरह की क्रियाओं बाढ़ में घिर जाने की हालत में जीवन-यापन के आवश्यक साधनों की चिंता, फिर बाढ़ के आने की गति और बाढ़ के आ जाने का चित्रण किया है। दूसरे अध्याय में बाढ़ में फँसे लोगों की स्थितियों, मनःस्थितियों, तमाशबीनों के दृश्यों और सरकारी मशीनरी की सक्रियता और निष्क्रियता आदि की तस्वीर तो खींची ही है, कुछ सरदारों द्वारा किए गए सहायता कार्य के अत्यंत मानवीय रूप को उभारा है। इसी प्रकार उन्होंने अन्य अध्यायों में भी बाढ़ के कुछ मानवीय और अमानवीय पक्षों का उद्घाटन किया है। तीसरे अध्याय में स्मृतियों के सहारे कुछ मार्मिक प्रसंगों को बाढ़ की विभीषिका के बीच मूर्त कर दिया है और चौथे में कलाकार मित्रों के आने और उनके द्वारा प्रदर्शित होने वाले प्रेम और सहकार्य का चित्रण किया गया है। इस प्रकार लेखक ने अपने अनुभवों को माध्यम बनाकर बाढ़ के एक वर्तुल बिंब का विधान किया है।

इसी प्रकार सूखे से संबंधित रिपोर्ताजों में उन्होंने सूखे से ग्रस्त क्षेत्रों की भौगोलिक स्थितियों का विधान कर उसमें फँसे हुए अभावग्रस्त, त्रस्त और जीवन के लिए संघर्ष करते हुए लोगों के तन-मन के यथार्थ का उद्घाटन किया है। सूखे के प्रभाव की विभीषिका को संपन्न और सुविधाजीवी लोगों के सुख और भोगवृत्ति के सामने खड़ा कर उसे गहरा किया है। इस संदर्भ में उसने सरकारी हाकिमों के व्यवहारों का भी पर्दाफाश किया है।

चाहे बाढ़ से संबंधित विभीषिका हो, चाहे सूखे से संबंधित, लेखक की मूल्यवादी दृष्टि उसका साथ नहीं छोड़ती। उसकी लेखकीय तटस्थता और विनोदवृत्ति के बावजूद मनुष्य के प्रति उसका दर्द, उनकी चिंता झाँक-झाँक पड़ती है। वह संकट के समय अत्यंत मानवीय व्यवहार करने वाले लोगों को रेखांकित कर देता है। इस विभीषिका में कभी-कभी वह स्मृतियों के सहारे अत्यंत मानवीय संदर्भों को उपस्थित कर देता है। अपने खाने-पीने के समय उसे भूखे लोग याद पड़ जाते हैं और इस प्रकार उसके ये रिपोर्ताज केवल घटनाओं के या दृश्यों से कथात्मक विधान बनकर नहीं रह जाते, बल्कि उसके अपने अनुभवों, मूल्यबोधों और रचनात्मक वृत्ति के कारण मानवीय स्पंदनों के दस्तावेज बन जाते हैं।

यही प्रवृत्ति 'नेपाली क्रांति-कथा' में भी दिखाई पड़ती है। इस पुस्तक में सात रिपोर्ताज संगृहीत हैं। इनमें नेपाल की राणाशाही के अत्याचारों और दमन के विरुद्ध होने वाले जनता के सशस्त्र संग्राम की कथा है। इस संग्राम के अनेक शक्तिशाली और कमजोर पहलुओं को रेणु ने चित्रित किया है। एक ओर लेखक ने संग्राम से संदर्भित अनेक घटनाओं, दृश्यों का विधान किया है, दूसरी ओर क्रांतिकारियों की विविध मनःस्थितियों और गतिविधियों का जीवंत चित्र अंकित किया है। उसने राणाशाही के अनेक प्रकार के अत्याचारों का विधान क्रांतिकारियों के संघर्ष को उनसे ताना है और तानकर के क्रांतिकारी के भावात्मक, वैचारिक और क्रियात्मक सभी पहलुओं को अत्यंत सघन बनाया है और उन्हें मानव-मूल्यवत्ता प्रदान की है।

रेणु इस क्रांति में स्वयं सम्मिलित रहे हैं अर्थात् वे लेखक के साथ-साथ क्रांति के योद्धा भी रहे हैं, इसलिए इन रिपोर्ताजों में अनुभव की प्रामाणिकता है, ये दूर से देखे हुए या कल्पना द्वारा निर्मित किये गये दृश्य-व्यापार नहीं हैं, बल्कि लेखक स्वयं इन घटना-व्यापारों के भीतर से गुजरा है। उसने स्वयं क्रांति की आग, बेचैनी और पीड़ा को अपने भीतर भोगा है। इस प्रकार इन रिपोर्ताजों का जन्म एक ठोस और मूर्त वस्तु-जगत् के बीच बनने वाले विविध आयामी मानवीय अनुभवों, मूल्यों और क्रिया-व्यापारों से हुआ है, इसलिए ये इतने प्रभावशाली हैं।

रिपोर्ताज की जो विशेषताएँ 'ऋणजल-धनजल' में दिखाई पड़ीं, वे यहाँ भी हैं अर्थात् रेणु ने रिपोर्ताज की प्रचलित शैली में न बँधकर अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के स्पर्श से उसे एक नया रूप दिया है। इसमें वर्णन भी है, चित्रण भी है, नाटकीयता का विधान भी है, कथा भी है और कविता भी है।

■

रेणु की कहानियों में बिंब, प्रतीक और अलंकार

रंजीत कुमार
शोध-प्रज्ञ, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

'रेणु' के उपन्यासों और कहानियों में काव्यात्मकता का गहरा स्पर्श दिखाई पड़ता है। इसलिए रेणु की भाषा सपाट वर्णनात्मक न होकर बिंबात्मक और प्रतीकात्मक हो उठती है और नए प्रभावशाली अलंकार भी लक्षित होते हैं, लेकिन एक बात ध्यान देने की है कि ये बिंब, प्रतीक, अप्रस्तुत परिवेश के बीच के होते हैं, इसीलिए इतने निकट के लगते हैं और इतना गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। बिंब, प्रतीक या अलंकार अन्य कहानीकारों की भाषा में भी दिखाई पड़ते हैं, लेकिन उनका परिवेश से अत्यंत गहरा लगाव ही रेणु की भाषा को एक गहरा वैशिष्ट्य प्रदान करता है। 'तीसरी कसम' कहानी को लेकर इसकी परख की जा सकती है। 'तीसरी कसम' में बैलगाड़ी की यात्रा के क्रम में अनेक बिंब उभरते हैं। कुछ बिंब अतीत के हैं, कुछ वर्तमान के। हिरामन गाड़ी हाँक रहा है और पीछे हीराबाई बैठी हुई है। हिरामन न उसे जानता है, न उसे ठीक से देख सका है, केवल एक महक का स्पर्श अनुभव कर रहा है। लेखक ने हीराबाई के रूप तथा हिरामन पर उसके प्रभाव को एक संश्लिष्ट बिंब के माध्यम से व्यक्त किया है। इतना ही नहीं, वर्तमान के बिंब में अतीत का बिंब-भी जुड़ता चला जाता है। बिंब उभरते हैं। इसके अतिरिक्त गीतात्मक लोक कथा के माध्यम से भी एक बड़ा संश्लिष्ट बिंब उभरता है और ध्यान देने की बात है कि यह बिंब अनेक स्तरों पर प्रतीकात्मक भी है, जैसे महुआ घटवारिन की कथा कहीं हीराबाई और हिरामन की कथा का प्रतीक भी बन जाती है। इनके उपन्यासों में तो बिंबों और प्रतीकों की छवि का क्या कहना, हिरामन हीराबाई की आवाज को फेनुगिलास कहता है। ''हूबहू फेनुगिलास?...हिरामन के रोम-रोम बज उठे।'' ''सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा है।'' इस पंक्ति में हीराबाई की नाक की कील की उपमा जुगनू से दी गई है। ''रह-रह कर चंपा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में।'' इस पंक्ति में हीराबाई की उपस्थिति से उत्पन्न अनुभव को चंपा के फूल के माध्यम से व्यक्त किया गया है। हीराबाई के शरीर से आती हुई महक और प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए उसने चंपा के फूल के अतिरिक्त एक अन्य अप्रस्तुत का सहारा लिया है ''नदी के किनारे धान खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पबनिया गंध आती है। पर्व पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है।'' ''उसकी सवारी मुस्कुराती है। मुस्कुराहट में खुशबू है।'' ''मस्तान बाबा का चेहरा बरगद के पेड़ की तरह बड़ा होता गया।'' ('एक आदिम रात्रि की महक')।

काव्यात्मकता की उपस्थिति विशेषणों के प्रयोग और मानवीकरण में भी दिखाई देती है। ''चूना और वार्निश की गंध के मारे उसकी कनपटी के पास हमेशा चवन्नी भर दर्द चिनचिनाता रहता है।'' ''यह पैटमान लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है।'' ''बूढ़े ने कहा-जरा देखो इस किल्लाढोंग जवान को।'' (एक आदिम रात्रि की महक)।

'रेणु' ने अंचल की प्रकृति को निर्जीव वस्तुओं के रूप में नहीं, बल्कि जीवंत मानवीय व्यक्तित्व से संपन्न रूप में देखा है, अर्थात् उसका मानवीकरण किया है। प्रकृति मनुष्य की तरह ही हँसती, गाती, नाचती तथा अनेकानेक क्रियाएँ करती हुई प्रतीत होती है ''सदा आँख-कान खोल कर रहो। धरती बोलती है। गाछ-वृक्ष भी अपने लोगों को पहचानते हैं। फसल को नाचते-गाते देखा है कभी? रोते सुना है कभी अमावस्या की रात को।'' (एक आदिम रात्रि की महक) 'पहली वर्षा में भीगी हई धरती के हरे-भरे पेड़ों से एक खास किस्म की गंध निकलती है। तपती हुई दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी-रस की डाली।...रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चाँचर और लगनी...।'' (रसप्रिया)।

कुल मिलकार यह कहा जा सकता है कि रेणु जी की कहानियों की भाषा में बिंब, प्रतीक एवं अलंकारों की भरमार है। यही उन्हें दूसरों से अलग और विशिष्ट बनाता है।

■

रेणुजी की कहानियों में वर्णित कलाकार की मानवीय संवेदना

विमला कृपाकर
शोधार्थी, ल0ना0मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी के अप्रतिम कथा शिल्पी और लेखक हैं। हिन्दी के आँचलिक कथाकार के रूप में उनकी ख्याति राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय तक है। उपन्यास और कहानी दोनों कथा रूपों की अपनी मनोरम कलाकृतियों से उन्होंने पूर्णियाँ के ग्रामीण अंचल तथा वहाँ के जीते-जागते चरित्रों की पाठकों के मानस में अमिट छाप छोड़ दी है। रेणुजी में बाह्य परिवेश और सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के चित्रण की प्रभावशाली प्रतिभा तो थी ही, पर उससे कहीं अधिक उनमें अपने पात्रों-चरित्रों के अन्तर्मन में बैठने तथा उनका तद्वत चित्रण कर देने की सम्मोहक कला थी। उनकी अगाध संवेदना, सहानुभूति और शब्दों के द्वारा बाँध लेने वाली भावना की भंगिमा उन्हें एक महान कलाकार बनाती है।

रेणु जी ने कथा साहित्य के अतिरिक्त संस्मरण और रिपोर्ताज विधाओं में भी दुर्लभ प्रतिभा दिखलाई है। रेणुजी संस्मरण और रिपोर्ताज में दृश्य, घटना, परिवेश और पात्रों को यथानुरूप बल देते हुए जीवन्त कर देते हैं। उन्होंने कहानियों और उपन्यासों में आँचलिक जीवन के हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुन्दरता और हर कुरूपता को शब्दों में बाँधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा शैली में एक जादुई-सा असर है जो पाठकों को अपने साथ बाँधकर रखता है। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों को उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़े ही सर्जनात्मक ढंग से प्रयोग किया है। रेणु जी ने अपनी गहरी संवेदना का परिचय देते हुए गाँवों के सम्पूर्ण अन्तर्विरोधों और अँगराई लेती हुई चेतना को जीवन्त कथारूप दिया है।

जब-जब नयी पीढ़ियों के लोग इन उपन्यासों और कहानियाँ को पढ़ेंगे, उन्हें गाँव की मिट्टी की सुगंध, रीति-रिवाज और संस्कृति से पहचान कराकर उन्हें राह दिखाएगी, याद दिलाएगी हमारी गाँव के पहचान को। सचमुच ही फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी के अप्रतिम कथा शिल्पी और लेखक भी है।

■

रेणु के उपन्यासों में सामाजिक संदर्भ

बबीता कुमारी
शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

रेणु के उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत ही सूक्ष्म तरीके से दृष्टिगोचर होती है। जहाँ तक काल-खंड की बात है, रेणु के उपन्यासों में आजादी के बाद की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशाओं का वर्णन मिलता है किन्तु कुछ उपन्यासों में आजादी के पहले की स्थितियों का भी चित्रण मिलता है। जैसे, 'कितने चौराहे', 'मैला आँचल' और 'पल्टूबाबूरोड'। 'कितने चौराहे' तो पूरा-का-पूरा स्वतंत्रता संग्राम के दिनों की याद दिलाता है। इस उपन्यास में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश सजीव हो उठे हैं। 'कितने चौराहे' के मनमोहन, कालू, हफीज, हरेन्द्र, शरबतिया आदि पात्र किसी-न-किसी प्रकार एक दूसरे सामाजिक डोरे के बंधन में भी बंधे थे।

रेणु के उपन्यासों के प्रायः सभी पात्र इस परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। चाहे वह 'मैला आँचल' के बावनदास हों, कालीचरण, बालदेव, डॉ. प्रशांत या कमला हों। यहाँ तक कि लक्ष्मी दासिन भी महंथ सेवादास की रखैल होने के बाद भी रामदास के महंथ होने पर उसकी दासी बनने से इन्कार कर देती है। यह सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का ही अंग है और सिद्धांतवादी बालदेव जो हमेशा से सौम्य स्वभाव का प्रतीत होता है और गले में कंठी बाँधता है, लक्ष्मी दासी को अलग लेकर रहने लगता है। कमली भी हिस्टीरिया की रोगी है, सुखद स्पर्श पाते ही भली-चंगी हो जाती है। कहने का मतलब यह कि सामाजिक यथार्थ रेणु ने उठाया तो है बड़े सहज भाव से किन्तु ये सारा कुछ एक प्रक्रिया के अंतर्गत होता है, अचानक नहीं। यही सामाजिक यथार्थ की माँग भी है। हालाँकि रेणु पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनके पास कोई दृष्टि नहीं थी। हाँ भिन्न-भिन्न विचारधाराओं का पोषण करने वाले लोग और राजनीति की दुकान चलाने वाले लोगों से और आशा ही क्या की जा सकती है। उनके उपन्यासों में गाँवों के सामाजिक बदलाव जिस जीवंतता के साथ आये हैं, वे उन्हें श्रेष्ठ उपन्यासकार घोषित करते हैं।

■

फणीश्वरनाथ रेणु की सृजनात्मकता और पत्रकारिता

बिरेन्द्र प्रसाद
पूर्ववर्त्ती छात्र, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

महान कथाशिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 1921 ई. में अररिया जिले के औराही हिंगना नामक ग्राम में हुआ था। शत-प्रतिशत समाजवादी विचारधारा के पुष्टिपोषक एवं पूँजीवादी सामंतवादी व्यवस्था के कट्टर विरोधी रेणु ने गाँधीजी के 'करो या मरो' के आह्वान पर अगस्त 1942 ई. के भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया और जेल भी गए। उनका कथा-लेखन द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम दौर से शुरू होकर आठवें दशक तक अविराम चलता रहा।

रेणु की साहित्यिक महत्ता के कीर्ति स्तंभ हैं- 'मैला आँचल' (1954) एवं 'परती परिकथा' (1957) नामक कालजयी उपन्यास तथा 'मारे गए गुलफाम', 'रसप्रिया', 'संवदिया', 'लाल पान की बेगम' इत्यादि कहानियाँ। 'मारे गए गुलफाम' कहानी पर हिन्दी चलचित्र 'तीसरी कसम' का निर्माण हुआ और रेणु साहित्याकाश में चमकते नक्षत्र-सा दमकने लगे। उनकी पहली कहानी 'बटबाबा' 1945 ई. में कलकत्ता की 'विश्वमित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। कथाकार रेणु को अमरत्व देनेवाली कहानी 'अपनी कथा' उनके कथा संकलन 'एक श्रावणी दोपहर की धूप' में संकलित है। 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे' एवं 'पलटू बाबू रोड' उनके अन्य उपन्यास हैं।

रेणु की रचनाओं में स्पष्टतः यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि जातीय एवं सांप्रदायिक तत्व घृणित राजनीति, मतलबपरस्त राजनेताओं एवं वोटपरस्ती के कारण ही सिर उठाते हैं। ग्रामीण जीवन का सुख-दुख, आनंद-अवसाद, हर्ष-विषाद, घृणा-प्रेम, आशा- निराशा, विश्वास-अंधविश्वास, सत्य-असत्य एवं जीवन-मृत्यु सब कुछ यथार्थवादी दृष्टिकोण से पाठकों के समक्ष आकर उनके हृदय को उद्वेलित करता है। वस्तुतः रेणु हिन्दी कथा-साहित्य को नयी दिशा देनेवाले एक महान रचनाकार थे। लोकजीवन के बहुरंगी स्वरूप का चित्रण कर उन्होंने 'उपन्यास' को एक नयी जमीन एवं नयी संवेदना प्रदान की। उनके उपन्यास भारतीय धर्म, रीति-रिवाज एवं लोक-परंपरा की त्रिवेणी हैं।

हिन्दी में उपन्यास को 'आँचलिक उपन्यास' की संज्ञा प्रदान करने का श्रेय रेणुजी को ही है। आचार्य शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' के बाद रेणु ने ही ग्रामीण परिवेश गढ़ा।

■

फणीश्वरनाथ रेणु और राष्ट्र-निर्माण चिंता

मुरारी कुमार
पूर्ववर्ती छात्र, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

रेणु एक महान राष्ट्र-निर्माता रचनाकार थे। एक लेखक के रूप में उनकी चिंता भारत को सुखी, समृद्ध एवं समुन्नत राष्ट्र बनाने की थी। वे भारत को सामंतवादी मानसिकता से मुक्त एक सफल और श्रेष्ठ गणतंत्र बनाना चाहते थे। उनकी रचनाएँ राष्ट्र-निर्माण की उनकी चिंताओं और योजनाओं से लबरेज हैं। बावजूद इसके उन्हें आँचलिक रचनाकार कहा और माना जाता रहा है। यह कतई सच नहीं है और इस तरह की मान्यता उनके महत्त्व को कमतर आँकने की कुत्सित प्रवृत्ति का परिचायक भी है। यहाँ यह साफ कर देना आवश्यक है कि साहित्य की पद्धति चीजों को उपस्थापित करने की वही नहीं होती जो योजना आयोग अथवा नीति प्रतिपादक आलेखन की होती है। साहित्य कलावस्तु है। इसलिए उसकी पद्धति विज्ञान और शास्त्र की पद्धति से भिन्न होती है। शास्त्र तथ्यों और आँकड़ों में बोलता है। जबकि साहित्य संकेतों, घटनाओं और स्थितियों के माध्यम से बोलता है। साहित्य सबकुछ खोलकर नहीं कहता। यह उसकी संविदा के विरुद्ध है। सबकुछ खोलकर कह देनेवाला साहित्य, साहित्य नहीं रहता, वह घोषणा-पत्र हो जाता है। रेणु एक महान साहित्यकार इसलिए हैं क्योंकि उनकी रचनाओं में उच्च कोटि के साहित्यिक गुण मौजूद हैं। किंतु साहित्य का वस्तुगत मूल्य उसमें निहित विचारों, चिंताओं और कार्यक्रमों की श्रेष्ठता- अश्रेष्ठता पर निर्भर करता है। साहित्य को समझने में पाठक का विवेक महत्त्वपूर्ण होता है। समीक्षक इस कार्य में उसकी सहायता करता है। रेणु को दुख इस बात का भी है कि उनकी

चिंताओं और सरोकारों को ठीक से समझा नहीं गया। अपनी रचनाओं में वे अपने दुखों को कभी सीधे तो कभी प्रकारांतर से व्यक्त करते रहे हैं। राष्ट्र-निर्माण से जुड़ी उनकी चिंताएँ और योजनाएँ भारत के राष्ट्रीय यथार्थ के सूक्ष्म और गहन पर्यवेक्षण पर आधारित हैं। इस कारण उनमें समाजशास्त्रियों की गहन वैज्ञानिकता उपलब्ध होती है और निष्कर्षों का बहुत ऊँचा गणनात्मक मान भी पाया जाता है। उदाहरणों से देखें तो उनके लेखन की शुरुआत ही राष्ट्र-निर्माण के उपक्रम से होती है। 'मैला आँचल' उनका पहला उपन्यास है और उसकी शुरुआत मेरीगंज नामक गाँव में मलेरिया सेंटर की स्थापना की कोशिशों से होती है। रेणु ने अपनी भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि मेरीगंज भारत के पिछड़े गाँवों का प्रतीक है। अतः मेरीगंज सिर्फ एक गाँव नहीं है। उसके संदर्भ में कही गयी बातें भारत के उन तमाम गाँवों के संदर्भ में कहीं गयी मानी जानी चाहिए जिनको मेरीगंज प्रतीकित कर रहा है और जिनका प्रतिनिधि बनकर वह 'मैला आँचल' उपन्यास में उपस्थित हुआ है।

■

रेणु-साहित्य का समकालीन संदर्भ

मौसम कुमारी

एम0 ए0 हिन्दी, तृतीय छमाही, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य के माध्यम से विद्वानों और मनीषियों ने समाज को अपनी लेखनी और कल्पनाशीलता से बदलने का प्रयास किया है। समाज में फैली कुव्यवस्था, जमींदारी प्रथा, छूआछूत पर करारा प्रहार रेणु जी के साहित्य में मिलता है। रेणु जी का साहित्य आज के समय के लिए शोध का विषय है।

हिन्दी साहित्य में पहली बार किसी लेखक ने अंचल विशेष को रेखांकित कर उपेक्षित और लाचार जीवन की समस्त छवि और कुरूपता, सीमा, विवशता और सम्भावना को इतनी बारीकी से अपनी लेखनी के माध्यम से मानस पटल पर रखने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिवेश को जीवन्त मानव संवेदनाओं, मूल्य संघर्षों और अन्तर्विरोध ग्रस्त चेतनाओं को उकेरने का सार्थक प्रयास रेणु जी ने किया है, जो आज की युवा पीढ़ी के लिए चिन्तन और शोध का विषय है।

रेणु जी का सम्पूर्ण साहित्य अवलोकन करने पर पता चलता है कि वे खुद शोषण और दुख में उलझे हुए थे। समाज के दुख-दर्द ने उन्हे 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' लिखने को विवश कर दिया, जो आज सोचने, समझने और गहन विचार-विमर्श के लिए मजबूर कर रहा है।

क्या हम समाज को बदलने का प्रयास कर सकते है? हाँ, हमारी सोच, हमारी उत्कंठा, हमारी गरीब लोगों के लिए सहानुभूति एक मील का पत्थर साबित होगी। बड़े-बड़े मनीषियों, विद्वानों ने भी सभ्य समाज की कल्पना की थी। कबीर, शेक्सपियर इत्यादि ने भी आँचलिकता को अपनी रचना में समेटने का भरसक प्रयास किया है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु : गद्य-सृजन का फलक

दयानन्द कुमार

छात्र, विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु हिन्दी साहित्य के बहुआयामी प्रतिभा सम्पन्न कथाकार माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी जगत को एक नयी ऊँचाई प्रदान की। यही नहीं, उनकी गद्य रचना, कला-कौशल एवं शिल्पगत विशेषताओं से पुलकित भी हुआ।

रेणुजी आँचलिक साहित्य का चमकता तारा माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द के बाद अगर किसी उपन्यासकार

या रचनाकार की बात होती है, जो उन रास्तों पर अपनी विशेषता को पूरी तरह रूपायित करते हैं तो उसमें रेणु जी का नाम सर्वप्रथम गिना जाता है। मगर इसी क्रम में एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि रेणु जी और प्रेमचन्द की रचनाधर्मिता में काफी अन्तर पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर हम सब कह सकते हैं कि 'मैला आँचल' का पात्र बावन दास और 'गोदान' का पात्र गोबर दोनों में प्रगतिशीलता का पुट है, मगर दोनों अपनी प्रवृत्ति से भिन्न भी हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रेणु जी का प्रादुर्भाव एक चमत्कार माना जाता है, जिस प्रकार कबीर, सूर, तुलसी आदि के बारे में कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार रेणु जी अपनी कला एवं कौशल का गहन परिचय देते हुए सन 1954 में 'मैला आँचल' जैसा प्रौढ़ आँचलिक उपन्यास लिखते हैं। उन्होंने लिखा- इसमें धूल भी है, शूल भी है, कीचड़ भी है, मैं इनसे अपना दामन बचा नहीं पाया। अर्थात् लेखक साफ कहना चाहते हैं कि वह उपन्यास के एक-एक पात्र में खुद को महसूस करते हैं। उन्होंने अपनी अनुभूति की सम्पूर्णता से समर्पण किया है, जो बहुतों के लिए संभव नहीं हो पाता है। फणीश्वरनाथ रेणु नारी-कल्याण, काम-शोषण, नग्न यशोदा का चित्रण करते हुए कहते हैं-

हाँ रे, अब ना जीयब रे सैयाँ
छतिया पर लोटल केश
अब न जीयब रे सैयाँ।

उपरोक्त पंक्ति से उभरने वाली वेदना यथार्थ की परिचायक है। रेणु जी के पात्र कभी अति-पीड़ा तो कभी घनीभूत दुःख का सामना करते हैं-जहाँ एक सच्चाई उनकी राह निहार रही होती है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का समकालीन संदर्भ

सृष्टि सुमन
स्नातकोत्तर हिन्दी, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

'रेणु' ने जब कहानी लिखना शुरू किया था, वह आजादी से पहले का समय था। अतः उनमें देशभक्ति का जज्बा भी था और कविता, कहानी लिखने का उत्साह भी। वह भारतीय समाज का ऐतिहासिक दौर था जबकि साहित्यकार और चिंतक नए सिरे से सोचने और लिखने का काम कर रहे थे। प्रेमचंद के बाद कथा साहित्य के केन्द्र में मध्य वर्ग लौट आया था। आजादी ने भारतीय यथार्थ की सीमाओं को और फैला दिया था। उनकी पहली कहानी 'बटबाबा' सन् 1946 में प्रकाशित हुई, जो पारम्परिक कथा रूढ़ियों के कारण ज्यादा चर्चा में नहीं आ सकी। एक कथाकार के रूप में सन् 1958 की रचना 'ठुमरी' से उन्हें जाना जाने लगा। अंतिम कथा संग्रह अग्निखोर सन् 1974 तक वे कथा के क्षेत्र में सुविख्यात रहे।

लगभग 1960 तक की कहानियों में ज्यादातर शहरी मध्यवर्ग के जीवन पर आधारित रचनाएँ मिलती थीं और ग्राम कथाओं की उपेक्षा की जा रही थी। प्रेमचंद के बाद की पीढ़ी के प्रमुख कथाकारों में फणीश्वरनाथ रेणु की जीवन दृष्टि और कथा दृष्टि विकसित हुई थी। सामाजिक-वास्तविकता को नये अंतर्विरोधों के भीतर रखकर देखना रेणु की कथात्मक चेष्टाओं की प्रवृत्ति थी। नामवर सिंह ने फणीश्वरनाथ रेणु की चर्चा आँचलिक कथाकार के रूप में की है। उनके व्यक्तित्व का निर्माण गहरे भावात्मक और सामाजिक अन्तर्विरोध के भीतर हुआ था जिसने रेणु को लेखक, कार्यकर्त्ता और क्रान्तिकारी बनाया। उन्होंने ग्रामीण संस्थाओं की निरंकुशताओं को प्रत्यक्ष देखा था। रेणु के साहित्य में गाँव जीवन्त है, धड़कते हुए और प्रतिक्रिया करते हुए। उनकी रचनाओं में मुक्ति संघर्ष, एकता, समाजवाद का भविष्य, भारतीय परिस्थितियों के बीच लेखक का आत्म-संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखता है। उनका विश्वास था कि भारतीय जनता के हस्तक्षेप से ही परिवर्तन संभव है।

रेणु स्वतंत्रता के बाद के दशक के हिन्दी कथा साहित्य को शहरी मध्यवर्ग के घेरे से निकालकर ग्रामीण जीवन से जोड़नेवाले महत्त्वपूर्ण रचनाकार हुए। उनकी कथा में पूर्णियाँ जनपद के ग्रामाँचल का आत्मीय चित्रण है। ग्रामाँचल की प्रवृत्ति, जन-जीवन और लोक संस्कृति से उनका लगाव सहज और स्वाभाविक है। लोक-जीवन से गहरी आत्मीयता और लोक संस्कृति में अटूट आस्था उनकी रचना का प्रमुख बिन्दु रहा।

आजादी के बाद स्वतंत्र भारत विकास की ओर उन्मुख हो रहा था जिसमें ग्रामीण जीवन शैली में मेहनतकश जनों को लोक संस्कृति एवं सभ्यता एवं उसके प्रति गौरव की भावना का विकास करना उनकी कहानी का विषय रहा। ग्रामीण परिवेश में हो रही छोटी घटना और छोटे प्रसंग भी महत्व रखते थे। 'विघटन के क्षण' और 'नैना जोगिन' में उनकी ऐसी ही अनुभूति एक छोटे गाँव या छोटी जगह में होती है, वह एक बड़े शहर या महानगर में संभव नहीं होती। नौकरी की तलाश में बड़े शहरों में जाने के बाद गाँव में रहनेवाले परिवार विघटित हो जाते हैं। नैना जोगिन, रसप्रिया आदि कहानियों में विभिन्न लोक संस्कृति और रस्म-रिवाजों का वर्णन है।

रेणु की कहानियों के मुख्य पात्र अपनी सहजता की रक्षा करते हुए आजादी के बाद के भारतीय समाज में समाप्त होते जा रहे हैं। पारिवारिक सौहार्द प्रेम, पारस्परिक सहयोग आदि भावों को लोग भूलते जा रहे हैं। उनकी पुनर्प्रतिष्ठा की दिशा में अपने ढ़ंग से रेणु प्रयत्नशील होते दिखाई देते हैं।

■

'मैला आंचल' में आंचलिक संदर्भ

गौड़ी शंकर यादव

विद्यार्थी, हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

'मैला आंचल' हिन्दी कथा-साहित्य की विशिष्ट कृति है। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से 'मैला आँचल' के लेखक फणीश्वरनाथ 'रेणु' विशिष्ट उपन्यासकार हैं।

'मैला आँचल' हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा 1954 ई. में इसकी रचना हिन्दी उपन्यास के इतिहास में उतनी ही क्रांतिकारी घटना है जितनी 1936 ई. में प्रेमचंद द्वारा गोदान की रचना। यद्यपि 'देहाती दुनिया' जैसे कुछ उपन्यासों में आंचलिकता की गंध पहले भी महसूस की गई थी। किंतु मैला आंचल के प्रकाशन के साथ ही आंचलिक उपन्यास की परंपरा घोषित रूप से आरंभ हुई। हिन्दी में अंचल या आँचलिकता पर विशेष चर्चा की शुरुआत सन् 1954 में प्रकाशित 'मैला आंचल' के बाद से हुई। लेकिन आंचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ तथा 'मैला आँचल' की विशिष्ट स्थिति को समझने के लिए अंचल तथा आंचलिक का विश्लेषण भी आवश्यक है।

'अंचल' का शाब्दिक अर्थ साड़ी का पल्ला है। किनारा अथवा सीमा का समीपवर्ती भाग होता है। अंचल को आंचल के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। उसी प्रकार आंचलिक का अर्थ देश या प्रांत भाग से संबंधित वस्तु-विशेष से होता है। आंचलिक उपन्यास केवल ग्रामीण अंचल से ही संबंधित नहीं होते, अपितु नगर जीवन में संबंधित भी हो सकते हैं। 'अंचल' का शाब्दिक अर्थ है-जनपद या क्षेत्र। जिन उपन्यासों में किसी विशिष्ट प्रदेश के जनजीवन को समग्र बिम्बात्मक चित्रण होता है, उन्हें आंचलिक उपन्यास कहा जाता है। इन उपन्यासों का मूल उद्देश्य किसी विशिष्ट अंचल के समग्र जीवन का विशद चित्रण करना होता है। अतः उसमें जनपद के भूगोल, सभ्यता, रहन-सहन, वेशभूषा, रूढ़ियाँ, सामाजिक परम्पराएँ, लोकजीवन, त्योहार-पर्व, नृत्य-गीत, रीति-रिवाज लोक भाषा लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे, राजनीतिक चेतना, आर्थिक कठिनाइयाँ आदि का समावेश होता है।

रेणु जी के दो आँचलिक उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय रहें हैं। इनके नाम है-'मैला आंचल' और 'परती परिकथा'। मैला आंचल के कथानक में लेखक ने सन् 1942 ई. से लेकर गाँधी जी के निधन तक की 'मेरीगंज' (जिला-पूर्णिया, प्रांत-बिहार) के जन-जीवन और परिस्थितियों का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है। आँचलिक उपन्यास की मूलभूत विशेषता होती है कि उसमें कोई व्यक्ति नायक नहीं होता, बल्कि वह क्षेत्र विशेष नायकत्व धारण करता है। 'मैला आँचल' में यही हुआ है। आंचलिक उपन्यास का लेखक अंचल के समस्त यथार्थ को उभारता है, यथार्थ का चयनात्मक प्रक्षेपण नहीं करता। उसमें सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सभी पक्ष आते हैं और वे सुख-दुख के उसी अनुपात में आते हैं जो कि वास्तविक जीवन में होता है। रेणु जी ने मेरीगंज की दुनिया के हर पक्ष को बखूबी चित्रित किया है। सामाजिक पक्ष के अंतर्गत उन्होंने जातिवाद, अशिक्षा,

अंधविश्वास और धार्मिक भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे उठाए हैं। 'मैला आंचल' रेणु का सर्वाधिक प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें पूर्णियाँ जिले के मेरीगंज गाँव की विस्तृत तथा समग्र कथा इस प्रकार कही गई है कि अंचल ही नायक बन गया है। 'मैला आँचल' में गाँव की तमाम प्रवृत्तियों को दिखाया गया है।

■

रेणु-साहित्य का ऐतिहासिक संदर्भ

विपुल विनय
विद्यार्थी, हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

रेणु की पहचान हिन्दी के प्रतिनिधि आँचलिक उपन्यासकार के रूप में है, यद्यपि वे सिर्फ आँचलिक रचनाकार नहीं हैं। सच तो यह है कि 'मैला आंचल' के लेखन के बाद उनकी आंचलिक प्रवृत्ति लगातार कम होती चली गई। उनके प्रमुख उपन्यास हैं- 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे', 'पल्टू बाबू रोड'। 'मैला आँचल' रेणु का सर्वाधिक प्रसिद्ध व महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें 'मेरीगंज' गाँव की विस्तृत तथा समग्र कथा कही गई है। इसमें नायक अंचल है इसका उद्देश्य अंचल की समस्याओं को प्रकाशित करने का ही है। उद्देश्य घुला हुआ है। ऊपर से चिपका हुआ नहीं दिखता। इसमें अंचल की सुंदरता और कुरूपता दोनों का गहरा चित्रण किया गया है।

पल्टू बाबू रोड : यह रेणु का 90 पृष्ठों का छोटा उपन्यास है। यह पूर्णियाँ जिले के 'पल्टू बाबू रोड' कस्बे की कहानी है।

जुलूस : इस उपन्यास में हिन्दू शरणार्थियों की दारुण कथा का वर्णन है। इसमें हिंसा, घृणा और सांप्रदायिकता की आग में अपना सर्वस्व स्वाहा करनेवाले शरणार्थियों को भोजन, आवास व सामाजिक-सांस्कृतिक जैसी विषम समस्याओं का चित्रण है।

दीर्घतपाः यह उपन्यास बांकीपुर के 'वर्किंग वीमेसं हॉस्टल' को केंद्र में रखकर लिखा गया है। 'बेलागुप्त' इस उपन्यास की केंद्रीय पात्र है। बेलागुप्त 'वर्किंग वीमेंस हॉस्टल' की अधीक्षिका है। 'कितने चौराहे': यह रेणु के लघु उपन्यासों की परंपरा में आता है। आजादी के लिए संघर्ष करने और अपना बलिदान देनेवाले युवकों को केंद्र में रखकर आज के किशोरों में देश-प्रेम, सेवाभाव, त्याग आदि आदर्शों को स्थापित करने के लिए रेणु ने इस उपन्यास की रचना की है।

परती परिकथा : 'परती परिकथा' फणीश्वरनाथ रेणु का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें 1953-56 तक की कथा वर्णित है। कथा का केंद्र पूर्णियाँ जिले का 'परानपुर' गाँव है।

इस प्रकार रेणु साहित्य में प्रकारान्तर से स्वतंत्रता-पूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत के इतिहास का वर्णन सरल भाषा में किया गया है। साथ ही ग्रामीण परिवेश का भी वर्णन यथार्थपूर्ण है।

■

'मैला आँचल' का सामाजिक संदर्भ

ओम प्रकाश 'निराला'
विद्यार्थी, हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 ई. को बिहार के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना में हुआ था। इन्हें हिन्दी में आंचलिक उपन्यास का आरंभकर्ता माना जाता है। उपन्यास को आंचलिक कहने तथा उसकी महत्ता की ओर आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। इन्होंने अपनी रचनाओं में ग्रामीण जीवन की हर धुन, लय, ताल, सुर, सुंदरता और कुरूपता को शब्दों में बाँधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा-शैली ऐसी है जो पाठकों को अपने साथ बाँधकर रखती है।

'मैला आँचल' का आँचलिक समाज जातीय विद्वेष और पारस्परिक घृणा, ईर्ष्या और क्षुद्रताओं से भरा हुआ है। उसका

कारण वहाँ के लोगों की निपट गरीबी तथा सामाजिक चेतना का अभाव है। यही कारण है कि हर टोली आपस में लड़ रही है आपस में दलबंदी के लिए नये-नये कारण तलाश कर लिये जाते हैं। जातिगत वर्ग-स्वार्थ का सूक्ष्म चित्रण उपन्यासकार ने किया है। इसी के बीच लेखक ने अंचल की विपन्नता को भी उद्‌घाटित किया है। इतना ही नहीं, परस्पर टोलियों में विभक्त लड़ने वाले लोगों की औरतें पेट पालने के लिए दिनभर कड़ी मेहनत करती हैं। उनकी औरतें हैं- ''सुबह से दुपहरिया तक कमला में कादोपानी 'हिड़' कर एक दो सेर गैची मछली निकाल लायेंगी। चार सेर धान का हिसाब लग जायेगा। बाबू लोगों के पुआल के 'टालों' के पास धरती खरोच कर, चूहे के माँदों को कोड़ कर भी कुछ धान जमा कर लेंगी। नहीं तो कोठी के जंगल से खमर आलू उखाड़ लायेंगी।'' यह ऐसी गरीबी जिसमें आजीविका का कोई साधन नहीं है, कोई नियमित मजदूरी नहीं है, जमीन खोद-खोदकर एक-एक दाना निकालना और फिर अपना और बच्चों का पेट भरना है। मौजूदा! सामाजिक न्यायविधान भी इन गरीबों के पक्ष में नहीं है। ऐसी गरीबी में अंधविश्वासों का पनपना स्वाभाविक है, वे जिंदगी के आश्रय बन जाते हैं।

सामाजिक परिस्थितियों के बीच उपन्यासकार ने आर्थिक वर्गों का चित्रण राजनीतिक प्रभाव के संदर्भ में किया है। 'मैला आँचल' की अभिशप्त जनता का आमूल परिवर्तन के बिना उसकी गरीबी से उद्धार नहीं किया जा सकता। इस गरीबी को देखकर डॉ. प्रशांत ने निदान तलाश लिया-'दरार पड़ी दीवार यह गिरेगी इसे गिरने दो। यह समाज कब तक टिका रह सकेगा?' लेकिन यह निदान नहीं है, उस लाचार जनता के लिए जो शोषित और उत्पीड़ित हैं। 'मैला आँचल' में धनी किसान भी है।

तहसीलदार साहब को पता है कि गाँव में किसानों को किस तरह लड़वाया जा सकता है। तहसीलदार साहब कहते हैं-संथाल गाँव के आदमी नहीं बाहर के लोग हैं। उनकी संस्कृति और जाति अलग है। भूमिहीन खेतिहर लोगों की दयनीय स्थिति से संपूर्ण उपन्यास भरा हुआ है।

■

'मैला आँचल' का सामाजिक संदर्भ

प्रीति कुमारी

पूर्ववर्त्ती छात्रा, विश्वविद्यालय, हिन्दी-विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु मूलतः एक यथार्थवादी कथाकार रहे हैं। उनका वर्ण्य-विषय कभी कल्पना की दुनिया में सुगंधी बिखेरने वाला आकाश-कुसुम नहीं रहा और न यथार्थ से दूर हटकर 'निर्जन सागर लहरी' द्वारा 'अंबर के कानों' में प्रेमकथा कहने-सुनने वाला रहा। रेणु ने एक क्षेत्र विशेष का चित्रण किया है और यदि अतिशयोक्ति न हो तो उस क्षेत्र के व्यक्ति, समाज और संस्कृति का पूरी समग्रता के साथ वर्णन किया है। वह क्षेत्र कौन-सा है, इसका खुलासा उन्होंने स्वयं 'मैला आँचल' की भूमिका में किया है- ''यह है 'मैला आँचल', एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है। जब हम दक्खिन में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा-रेखाएँ खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को-पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा-क्षेत्र बनाया है।''(1) रेणुजी ने एक खास अंचल को ही प्रमुख मानकर उसकी सारी विशेषताओं एवं कमियों को दिखाने का सफल प्रयास किया है। संभवतः, 'अंचल' की प्रधानता के कारण ही उन्होंने इसे आँचलिक उपन्यास कहा है जिसे बाद के सारे आलोचकों एवं लेखकों ने चाहे-अनचाहे स्वीकृति प्रदान कर दी है। रेणुजी द्वारा वर्णित क्षेत्र-विशेष की सीमा रेखा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है परंतु उपन्यास-रचना के बाद के राजनीतिक निर्णयों के कारण कुछ नाम अवश्य बदल गए हैं। रेणुजी का उक्त अंचल पहले पूर्णियाँ जिला में था पर अब अररिया नामक नया जिला बन जाने के कारण अररिया जिले में है। एक सीमा पर अवस्थित पहले का पूर्वी पाकिस्तान अब बांग्लादेश बन गया है। रेणुजी ने इस क्षेत्र विशेष को ही अपने प्रमुख उपन्यास का यानी 'मैला आँचल' का वर्ण्य-विषय बनाया है। अनेक कहानियों में भी इसी क्षेत्र विशेष को दर्शाया गया है। कहना चाहिए कि रेणु की ख्याति जिन उपन्यासों और कहानियों पर टिकी है, उन सबका वर्ण्य-विषय यही अंचल है, इसी के लोग हैं, इसी का समाज है। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' जैसी अमर कहानी का भी उपजीव्य यही अंचल है। इसलिए रेणु के साहित्य में समाज, व्यक्ति तथा संस्कृति तीनों का बड़ा ही सही, सटीक और सार्थक वर्णन हुआ है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में राजनीतिक यथार्थ

सरिता कुमारी
एम.ए. हिन्दी, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण भारत के सामाजिक- राजनीतिक परिवेश के जीवंत दस्तावेज हैं। आंचलिकता के गहरे रंग में डूबे रेणु का सही मूल्यांकन आंचलिकता के अतिक्रमण में निहित है। इनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्य में एक अलग धारा का निर्माण करती हैं। यह धारा ग्रामीण परिवेश से होकर गुजरती हुई मानवीय संवेदना का धरातल तैयार करती है। औद्योगीकरण के दौर में शहरों के विकास के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आये बदलावों को रेखांकित करती रेणु की कहानियाँ देश की नीति और राजनीति को परिभाषित करती हैं। रेणु सक्रिय राजनीति से भी जुड़े हुए थे। उन्होंने केवल राजनीतिक आन्दोलनों और क्रांतियों में भाग ही नहीं लिया, बल्कि उसका सूक्ष्मता से अध्ययन भी किया। अवसरवादी राजनीति के कारण ग्रामीण जीवन में होने वाले बदलावों का जीवंत चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, जातिवाद, अवसरवाद और विचारों के क्षरण को उजागर करने का काम रेणु की कहानियाँ करती हैं। रेणु की पहली कहानी 'बटबाबा' का प्रकाशन सन् 1944 में कलकता से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'विश्वमित्र' में हुआ था। रेणु ने 'जलवा' कहानी में दलबंदी के कारण होने वाले शोषण का यथार्थ चित्र उभारा है। उनकी कहानी 'धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे' स्वतंत्रता के बाद की राजनीति से सम्बद्ध है। इस कहानी में दो राजनेताओं का चरित्र-चित्रण रेणु ने किया है। एक है कांग्रेसी नेता चंदन कुमार, जो अंग्रेजों के अन्याय का इसलिए विरोध नहीं करता है क्योंकि उसका क्रान्तिकारियों पर किये गये रेड में नुकसान नहीं हुआ। यही चंदन कुमार आजाद भारत में एम.एल.ए. बनता है और क्रांतिकारियों की सूचना अंग्रेजों तक पहुँचाने वाले पारस चौधरी को देशभक्त घोषित करता है। इस तरह जो स्वतंत्रता की लड़ाई में गद्दार थे वे ही आजाद भारत में स्वयं घोषित देशभक्त बनकर देश को लूटने में जुट गये। रेणु की कहानियों में चित्रित राजनीति के ये भयावह चित्र आज अधिक गाढ़े और अधिक नग्न रूप में उपलब्ध हैं।

■

'रेणु'जी के जीवन और साहित्यिक आयाम

निशा कुमारी
एम.ए. (हिन्दी) उत्तीर्ण, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा, मो.-6205551617

हिन्दी के कथा सम्राट् प्रेमचंद के बाद 'रेणु' जी का ही सर्वोत्कृष्ट स्थान है। फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 ई0 को बिहार के अररिया जिले के फारबिसगंज के निकट औराही हिंगना ग्राम में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद इन्होंने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर आदर्श विद्यालय से कोईराला परिवार में रहकर की। उन्होंने हिन्दी में आँचलिक कथा की नींव रखी, इनकी लेखन-शैली वर्णनात्मक थी, जिसमें पात्र के मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया जाता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 1936 ई. के आस-पास कहानी-लेखन की शुरुआत की थी। उस समय कुछ कहानियाँ प्रकाशित भी हुई थीं, किंतु वे किशोर रेणु की अपरिपक्व कहानियाँ थीं।

रेणु जी के उपन्यास लेखन में 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' तक लेखन का ग्राफ ऊपर की ओर जाता है पर इसके बाद के उपन्यास में वो बात नहीं दिखी। 'मैला आँचल' में उन्होंने एक देश या राज्य को स्थान न देकर, बल्कि एक क्षेत्र-विशेष 'मेरीगंज' नामक स्थान को नायक के रूप में लिया है और वहाँ के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि विभिन्न आयामों को साहित्य के माध्यम से उजागर किया है।

रेणु जी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से भारतीय जनता की समस्या को एक क्षेत्र विशेष में रखकर उससे निपटने का भी प्रयास किया है। इसलिए 'रेणु' जी को सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन में 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' को लेकर काफी प्रसिद्धि मिली है इन्ही कृतियों के आधार पर उन्हें आँचलिक उपन्यासकार अथवा कथाकार कहा जाता है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में विविध रंगों की अभिव्यक्ति

अशोक कुमार महतो
ग्राम-हनुमाननगर, पो.- सिकटियाही, भाया- खुटौना, जिला-मधुबनी, विद्यार्थी-ल0ना0मि0विश्वविद्यालय,दरभंगा

बीसवीं सदी के पाँचवे-छठे दशकों में हिन्दी उपन्यास का एक नया रूप हमारे सामने आता है जिसे 'आँचलिक उपन्यास' कहा गया है। यद्यपि हिन्दी उपन्यासों में आँचलिकता का तत्व पर्याप्त पुराना है- प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, नागार्जुन आदि की रचनाओं में वह पहले ही मिलता है, पर उपन्यास को आँचलिक कहने तथा उसकी महत्ता पर लेखकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु और उनके 'मैला आँचल' नामक उपन्यास को है। सन् 1954 में प्रकाशित इस उपन्यास की भूमिका में लेखक ने लिखा था-

''यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णियाँ....मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है।''

अंचल का अर्थ है जनपद या क्षेत्र। जिन उपन्यासों में किसी विशिष्ट प्रदेश के जन-जीवन का समग्र विम्बात्मक चित्रण हो, उन्हें आँचलिक उपन्यास कहा जाता है। आँचलिक उपन्यास के मूल तत्व हैं- (1) भौगोलिक स्थिति का अंकन, (2) कथानक का आँचलिक आधार, (3) लोक-संस्कृति का चित्रण, (4) वहाँ की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति का चित्रण, (5) जन जागरण की नई चेतना।

हिंदी उपन्यासों में आँचलिक तत्व कोई नया तत्व नहीं है। 'रेणु' से बहुत पहले प्रेमचंद, वृन्दावनलाल वर्मा, नागार्जुन आदि उपन्यासकारों के उपन्यास में और इनसे भी बहुत पहले शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' जैसे उपन्यासों में वह वर्तमान था। हाँ, उनके उपन्यास आँचलिक तत्व धारण करते हुए भी विशुद्ध आँचलिक उपन्यास नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उनकी दृष्टि अधिक व्यापक है। चित्रफलक अधिक विस्तारपूर्ण है और उनकी कृतियों में वह रस नहीं, जिसे आँचलिक रस कह सकें। वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी आँचलिक तत्व तो है, पर उन्हें विशुद्ध आँचलिक उपन्यास नहीं मान सकते।

आँचलिक उपन्यासों के वास्तविक जन्मदाता हैं- फणीश्वरनाथ रेणु, जिन्होंने बिहार के जन-जीवन से संबंधित दो उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' लिखकर आँचलिक उपन्यासों के क्षेत्र में क्रान्ति पैदा कर दी और आलोचकों को एक पृथक तथा स्वतंत्र शैली स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रथम उपन्यास में लेखक ने 1942 ई. से गाँधीजी के निधन तक की मेरीगंज के जन-जीवन की परिस्थितियों का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। इस गाँव के विभिन्न वर्गों का- जिन्हें उन्होंने टोली कहा है- जीवन और उनका संघर्ष बड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। जहाँ एक ओर लेखक ने बड़ी जाति वालों के तथाकथित नीच जाति की स्त्रियों से अवैध यौन-सम्बन्धों की चर्चा कर उनका नैतिक पतन दिखाया है, वहाँ दूसरी ओर राजनैतिक पतन और आर्थिक हीनता के चित्र भी अंकित किए हैं। लोकभाषा, लोकगीत और लोकोक्तियों के प्रयोग से स्थानीय रंग और भी भास्वर हो उठे हैं।

निष्कर्षतः हिंदी साहित्य में आँचलिक उपन्यास के रूप में प्रतिष्ठित कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ने साहित्य के अलावा विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों में भी सक्रिय भागीदारी की। उनकी यह भागीदारी एक ओर देश के निर्माण में सक्रिय रही, तो दूसरी ओर रचनात्मक साहित्य को नया तेवर देने में भी सहायक रही। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब सारा विकास शहर केन्द्रित होता जा रहा था, ऐसे में रेणु ने अपनी रचनाओं से अंचल की समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान खींचा। उनकी रचनाएँ इस अवधारणा को भी पुष्ट करती हैं कि भाषा की सार्थकता बोली के साहचर्य में ही है।

■

रेणु साहित्य का आंचलिक संदर्भ

मनीष कुमार
पूर्वछात्र, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर

गाँव के सच्चे परिदृश्य को शब्दों के मोती से पिरोकर अपनी रचना की माला बना लेना फणीश्वरनाथ रेणु की खासियत थी। आधुनिकता के परे गाँव की विषम परिस्थितियों को अपनी कथा के माध्यम से एक स्थिति देना उन्हें बखूबी आता था। हिन्दी

साहित्य में आँचलिक कथा की नींव रखने वाले फणीश्वरनाथ रेणु अपनी कहानियों, उपन्यासों में पात्र का चरित्र-चित्रण अद्‌भुत ढ़ंग से करते है। उनमें पात्रों के सोचने का तरीका घटनाओं से प्रधान होता था। दुर्भिक्ष धरातल से कहानी को इस कदर पिरोना और पात्रों की सोच से पाठकों को अंत तक बाँधें रखना, इनकी नैसर्गिक प्रतिभा थी।

रेणु जी ने जीवन के हर धुन, हर सुर, हर ताल, हर सुंदरता, मधुरता और एकरूपता को शब्दों में अद्वितीय तरीके से बाँधा है। उनके समकालीन रचनाकारों (बेशक कुछ रचनाकारों को छोड़कर) की रचनाओं में आधुनिकता और महानगरीय धारा की झलक मिलती है, परन्तु फणीश्वरनाथ रेणु ठेठ, गँवारू, पारंपरिक संस्कृति को अपनी लेखनी में डालकर आँचलिकता का परिचय बखूबी निभाते हैं। उन्होंने मनुष्य के अंदर की वृहत्तर प्रकृति को भी अपनी लेखनी में शामिल किया है। इसलिए उनकी रचनाओं में हमें गाँव की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। उनकी रचनाओं में देशी भाषा व देशी शब्दों की उपस्थिति उनकी रचनाओं को आँचलिक बनाती है। 'मैला आंचल', 'लाल पान की बेगम' आदि रचनाओं में गाँव की झलक दिखाई पड़ती है।

रेणु जी ने गाँव-घर से जुड़े जन-सवाल, जन-संस्कृति, जन-आंदोलन और गाँव की समकालीन परिस्थितियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरे भारत के सामने उजागर किया है।

■

रेणु का आँचलिक उपन्यास एवं कहानी साहित्य

तारा बाबू

स्नातकोत्तर तृतीय छमाही, हिन्दी विभाग, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर

स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का नाम एक भिन्न नक्षत्र की तरह चमकता था। प्रेमचंद के बाद निर्विवाद रूप से हिन्दी के ग्रामीण मानस से जुड़े हुए सबसे महत्वपूर्ण कथाकार फणीश्वनाथ रेणु ही हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिंदी के प्रसिद्ध आँचलिक साहित्यकार के रूप में विख्यात हैं। इनके पहले उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) को बहुत ख्याति मिली थी जिसके लिए उन्हें पद्‌मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु का एक बहुचर्चित उपन्यास 'परती : परिकथा' भी है उपन्यास कुछ प्रेम-संबंधों के सहारे भारत के आंचलिक समाज की सच्चाई को दिखाता है और अपने अंजाम तक पहुँचाता है। बहुत कुछ रेणु की कालजयी रचना 'मैला आँचल' की तरह ..... यह प्रेम कहानी भी उसी आबो-हवा में पनपी है, जहाँ 'परती परिकथा' के बीज पड़े थे।

रेणु की कहानियों को परखने के बाद सबसे पहली बात जो अपनी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है वह यह है कि लेखक अपने उपन्यासों के समान ही यहाँ भी लोकसंस्कृतिमूलक समाज के विघटन से बेचैन है। शहर में रहते हुए भी उनका मन गाँवों की जनपदीय संस्कृति के वातावरण में रमा रहा। शहर में रहते हुए उनकी स्थिति 'एक अकहानी का सुपात्र' के उस छोटेलाल के समान रही जो 'विघटन के क्षण' की विजया गाँव से शहर जाने के लिए विवश होने पर सोचती है कि 'एक अदृश्य आँचल सिर पर हमेशा छाया रहता है।' इसी कहानी की छोटी-सी चुरमुनिया गाँव के टूटने के दुःख-दर्द से पीड़ित है।

गाँव के प्रति रेणु का आकर्षण विवेकशून्य मोह मात्र नहीं है। गाँव के समाज में ही मनुष्य का मनुष्य से हार्दिक संबंध बना होता है। शहर के लोकारण्य (भीड़) से व्यक्ति का व्यक्तित्व नदारद-सा हो जाता है।

■

रेणु साहित्य का समकालीन संदर्भ

खुशबू कुमारी

एम. ए. (हिंदी), समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर, बिहार,

हिंदी साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु एक ऐसे हस्ताक्षर हैं जिन्होंने स्थानीयता और यथार्थवाद को स्थापित किया। काल, स्थान और परिस्थितियों के हिसाब से ऐसी रचनाएँ रचीं कि ये साहित्य से अधिक समय से संवाद करते दस्तावेज बन गए।

फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कहानियों, उपन्यासों में ऐसे पात्रों को गढ़ा जिनमें एक दुर्दम्य जिजीविषा देखने को मिलती है, जो गरीबी, अभाव, भूखमरी, प्राकृतिक आपदाओं से जूझते हुए मरते भी हैं, पर हार नहीं मानते। रेणु ऊपर से जितने सरल थे अंदर से उतने ही जटिल भी थे। रेणु की कहानियाँ नादों और स्वरों के माध्यम से नीरस भावभूमि में भी संगीत-सी झंकृत होती लगती हैं। रेणु अपनी कथा रचनाओं में एक साधारण मनुष्य, जो पार्टी, धर्म, झंडा रहित हो, की तलाश करते नजर आते हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले में फारबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। इन्होंने इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में की जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े।

इनकी लेखन-शैली वर्णणात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया जाता है। पात्रों का चरित्र-निर्माण काफी तेजी से होता था क्योंकि पात्र एक सामान्य-सरल मानव मन (प्रायः) के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी।

आंचलिकता के गहरे रंगों में रंगे 'मैला आँचल' में समय का बोध और राष्ट्रीय जीवन से लोकजीवन का एकीकरण तथा वैश्विक वैज्ञानिक प्रगतियों की लोकसंस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावों का पक्का सबूत भी है। जन-जीवन के सवाल पर अंचल में धड़कते जीवन के दबाव में मानव मुक्ति संग्राम की कथा है।

हिंदी साहित्य में आंचलिकता के जनक फणीश्वरनाथ रेणु देशज दुनिया में बसे देशज समाज के पैरोकारों की अग्रणी पंक्ति में रहे। इनकी रचनाओं में देशज समाज की असमानता, असंगतियाँ, सामाजिक-राजनीतिक चेतना, देशज माटी से जुड़े जन-सवाल, जन-संस्कृति और जन-आन्दोलन आदि जनभाषा में जीवंत हुए हैं। कोसी अंचल के सूक्ष्म विश्लेषण से परिपूर्ण रेणु का साहित्य लोक से गहरे जुड़ाव का जीवंत प्रमाण है। कई जनपदों में विभक्त स्थानीय माटी की सांस्कृतिक विशिष्टता से देशज जनजीवन का आत्मीय संबंध होता है। इसी देशज चेतना से जनपदीय अस्मिताएँ लैस रहती हैं।

गीतों की गोद में पले गद्यकार रेणु ने धूल-धूसरित और कीचड़-युक्त माटी में उपजे फूल और शूल की अनुभूतियों को साहित्य में पिरोकर अंचल के जीवन और उसकी संस्कृति को जीवंत किया है। रेणु के कर्म और शब्द का भावनात्मक संबंध कोसी के कछार पर बसे पूर्णिया की माटी से है। इस धरा पर बसे समाज, इतिहास, संस्कृति, राजनीति, संवदेना, बोली, भाषा, मुहावरा और देशज पात्रों के अलावा प्राकृतिक विपदा (बाढ़, सूखाड़, अकाल) आदि के दंश को रेणु ने अपने साहित्य में दर्ज किया है। कोसी के दुःख-दर्द को रेणु ने भोगा और भोगे हुए सत्य से उत्पन्न संवेदना के देशज शब्दों का शिल्पगत प्रयोग कर अद्‌भुत रचनाएं कीं। कोसी के सरोकारों का ऐसा शब्द-शिल्प निर्मित किया, जो देशज अस्मिता का पहला दस्तावेज बन गया।

लेखकीय प्रतिबद्धता के बावजूद रेणु का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन अलग नहीं था। अपनी चिट्ठियों में भी खेत-खलिहान, गाँव-समाज का हाल-चाल लेने में व्यस्त दिखते हैं। पटना से गाँव पहुंचते ही रेणु गाँव में रच-बस जाते थे। समाज में व्याप्त गरीबी, भूख, अंधविश्वास और रूढ़ियों से साक्षात्कार करते हैं। गाँव को रेणु मानवीय दृष्टिकोण से देखते हैं। आलोचनात्मक और कलावादी दृष्टि से देखकर ग्रामीण समाज की नियति पर हाय-हाय करके कलेजा पीटने वाले लेखकों से बिलकुल अलग हैं रेणु।

ग्राम्य जीवन में घुले-मिले रेणु का असर उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होता है। बिरहा, प्राती, समदौन, फगुआ, बटगमन, बारहमासा, जोगीरा, नेपाली गीत झोरे, बंगला गीत बाउल के अलावा लोरिक, बिज्जेभान, सदाब्रिज और बिदापत नाच आदि के माध्यम से ग्रामीण समाज के रीति-रिवाज, रहन-सहन के साथ-साथ प्रवृत्ति और संस्कृति का चित्रण कर रेणु ग्रामीण परिदृश्य की बहुरंगी छटा उकेरते हैं। लोकसंस्कृति में डूबे रेणु के साहित्य में ग्रामीण अंचल सुर, ताल और लय से कदमताल करता है। ग्रामीण अंचल की जीवन्तता ही पाठकों की संवेदना को जगाती है। मानव मन की जागृत संवेदना ही ग्रामीण जन-जीवन और उसके परिदृश्य से साक्षात्कार करती है।

रेणु का साहित्य अंचल की बोली, भाषा व संस्कृति को जीवंत रखने की जिजीविषा का प्रतीक है। रेणु ने 'बात-बोलेगी' टिप्पणी में लिखा है- ''सूक्ष्मता से देखना और पहचानना साहित्यकार का कर्तव्य है। परिवेश से ऐसे ही सूक्ष्म लगाव का सम्बंध साहित्य से अपेक्षित है।'' दरअसल रेणु का संपूर्ण साहित्य सूक्ष्म पर्यवेक्षण से संपन्न है। ऐसे में यह सवाल उठना लाजिमी है कि भाषाई बहुभाषिकता भी आंचलिकता का पर्याय तो नहीं है? रेणु की आंचलिकता अंचल की सीमाओं को तोड़ देशज दुनिया व देशज समाज को अपने आगोश में समेटती है।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में सामाजिक यथार्थ

विभीषण सरदार
स्नातकोत्तर, पी0 आर0 टी0 उत्तीर्ण (हिन्दी विभाग), ल0 ना0 मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा

हिन्दी साहित्य के आँचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च, 1921 ई0 को बिहार के अररिया मंडल के अन्तर्गत औराही हिगंना नामक गाँव में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गढबनैली, सिमरबनी, अररिया में हुई थी। उस समय यह पूर्णिया जिले में था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। इन्होनें 1942 ई. के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रमुख सेनानी की भूमिका निभाई। इतना ही नहीं, नेपाली जनता को राजशाही के दमन एवं अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए इन्होंने सक्रिय योगदान दिया। निष्कर्षतः वे दमन तथा शोषण के प्रबल विरोधी थे। इन्होंने सत्ता चक्र के विरोध में पद्मश्री की उपाधि लौटा दी। इस महान साहित्य-सेवी का निधन 1977 ई0 में हुआ। हिन्दी आँचलिक कथा-साहित्य के पुरोधा रेणु जी ने ग्रामीण परिवेश का जो चित्र खींचा है, वह अमिट छाप छोड़ जाता है। इनका उदय बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आँचल' से हुआ। इन्होने अपने उपन्यास एवं कहानियों में जीवन के निम्न-मध्यवर्गीय शोषितों की आवाज बुलंद की। रेणु जी ने अपनी गहरी संवेदना का परिचय देते हुए गाँवों के सारे अन्तर्विरोधों और अंगड़ाई लेती हुई चेतना को जीवन्त कथारूप दिया है। इनकी लेखन शैली वर्णनात्मक थी, जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया जाता था। इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाता है और इन्हें आजादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा दी जाती है। रेणु जी की विविध साहित्यिक रचनाओं से प्रतीत होता है कि उन्हें 'भारत रत्न' की उपाधि समन्वय स्थापित करने हेतु दिया जाना चाहिए। अतएव कहा जा सकता है कि भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि के अनुरूप रेणु जी ने ग्रामीण परिवेश को नवीन ढंग से रेखांकित किया। जिससे निम्न-मध्यवर्गीय शोषितों, पीड़ितों की आवाज को बखूबी कथासाहित्य के माध्यम सें बीज बोने का काम किया है।

■

रेणु साहित्य में आज की युवा पीढ़ी की जागरूकता

ज्योति प्रकाश

हिंदी साहित्य के अमर कथा कार कृति एवम दलित विमर्श को केन्द्रीय विषय बनाने वाले महान साहित्यकारो में फणीश्वर नाथ रेणु जी अग्रणी रहे जिनका जन्म 4 मार्च 1921 को पूर्णियाँ जिले के फारबिसगंज प्रखंड के औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा भारत एवं नेपाल में हुई तथा इन्टरमीडियट की परीक्षा 1942 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। उसके बाद स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। पटना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ संघर्ष समिति में भाग लिया एवं जयप्रकाश नारायण की 'सम्पूर्ण क्रांति' में अहम् भूमिका निभाई।

इन्होंने लेखन और राजनैतिक संघर्ष साथ साथ किया। वे राहुल सांकृत्यायन, प्रेमचन्द एवं नागार्जुन की परम्परा के लेखक थे, जिनकी लेखनी में शब्द एवं कर्म की एकरूपता की झलक मिलती है। इन्होंने मैला-आँचल, परती परिकथा, जुलुस, दीर्घतपा, इत्यादि उपन्यास की रचना की, जिसमें 'मैला आँचल' ने इन्हें रातों रात एक बडे कथाकार के रूप में प्रसिद्ध कर दिया, जिसके लिए इन्हें पद्श्री से सम्मानित किया गया।

रेणु जी ने अपने लेखन में पिछड़ों एवं दलितों को केन्द्रित किया। समकालीन दलित साहित्य के सौदर्य-बोध का भी वर्गीय आधार पर चित्रण किया। इनकी रचना में हिंदी साहित्य के सिर्फ गाँव ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण ग्रामीण परिदृश्य जीवंत हुआ। दूसरे शब्दों में, कहा जाय तो रेणु जी ने हिंदी साहित्य में स्थापित प्रेमचंदीय ढाँचे को विस्तारित कर अपना विशिष्ट आंचलिक धरातल तैयार किया।

रेणु जी की कृतियों में सामाजिक सक्रियता थी। इन्हें लोक जीवन का महान कृतिकार भी कहा जाता है। इनकी लेखनी पढ़ने, समझने एवं आत्मसात करने की ललक उत्पन्न करती है। इनके लोक में सिर्फ मानव समाज ही नहीं बल्कि प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए मानवेतर-प्राणियों को भी महत्त्व दिया गया है। किसन 'महाराज' जैसे कई पात्रों का सृजन कर उन्होंने उसके

माध्यम से ना केवल मिथिलांचल की लोक संस्कृति को साहित्य में जीवंत करने का प्रयास किया अपितु कृषि पर आधारित समस्त भारतीयो की लोक-संस्कृति के उदात्त स्वरूप को नवीन जीवन दृष्टि दी है। इसलिए लोक भाषा के महान शिल्पी रेणु जी को शोध एवं विमर्ष के दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि जीवन के नये मूल्यों जैसे सामाजिक, राजनैतिक, चारित्रिक-भाषाएँ एवं कला इत्यादि दृष्टिकोण से जीवन में नये उत्साह के लिए बार-बार पढ़ने की आवश्यकता है।

जिस तरह उन्होंने आजादी पूर्व किसानों एवं दलितों की दशा की अपनी लेखनी से व्याख्या की और पाठकों में स्वाधीनता के प्रति जोश उत्पन्न किया।

■

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का आंचलिक संदर्भ

स्वीटी कुमारी

विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, स्नातकोत्तर प्रथम छमाही, सत्र 2020-2022

फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च 1921 ई. को बिहार के अररिया जिले के औराही हिंगना नामक ग्राम में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद इन्होंने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के आदर्श विद्यालय से कोइराला परिवार में रहकर की। इन्होंने इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 ई. में किया। इसके बाद उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बाद में फणीश्वरनाथ रेणु जी ने नेपाल के क्रांतिकारी आंदोलन में भी हिस्सा लिया। फलस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। रेणु जी ने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी। उन्होंने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। फणीश्वरनाथ रेणु जी का जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा। वे राहुल सांकृत्यायन और नागार्जुन के समकालीन कथाकार थे।

फणीश्वरनाथ रेणु जी को हिन्दी-साहित्य में आंचलिकता का जनक कहा जाता है। इनकी रचनाओं में अंचल (गाँव) के जन-जीवन को प्रधानता प्रदान की गई है। इन्होंने ग्रामीण जीवन तथा उसकी संस्कृति का सजीव-चित्रण प्रस्तुत किया है। इनकी रचनाओं में देशज समाज की असमानता, सामाजिक-राजनीतिक चेतना, देशज माटी से जुड़े जन-सवाल, जन-संस्कृति तथा जन-आंदोलन आदि जनभाषा में जीवंत हुए हैं। कोसी अंचल के सूक्ष्म-विश्लेषण से परिपूर्ण फणीश्वरनाथ रेणु जी का साहित्य-लोक से गहरे जुड़ाव का जीवंत प्रमाण है। रेणु जी ने भारत भूमि पर स्थित पूर्णिया अंचल की माटी से मानव-जीवन के भावात्मक संबंधों का ऐसा शब्द चित्र प्रस्तुत किया कि कोसी की माटी, रेणु माटी का पर्याय बन गयी। दूसरे शब्दों में कहें तो देशज-जीवन से देशज-माटी और देशज-संस्कृति के गहरे रागात्मक रिश्तों का गद्यात्मक-शैली में लिखा गया जीवन-गीत है- रेणु-साहित्य !

गीतों की गोद में पले-बढ़े अमर कथा शिल्पी गद्यकार फणीश्वरनाथ रेणु जी ने धूल-धूसरित और कीचड़-युक्त माटी में उपजे फूल और शूल की अनुभूतियों को साहित्य में पिरोकर अंचल (गाँव) के जीवन और उसकी संस्कृति को जीवंत किया है। फणीश्वरनाथ रेणु जी के शब्द और कर्म का भावनात्मक संबंध कोसी नदी के किनारे बसे पूर्णियाँ की माटी से है।

फणीश्वरनाथ रेणु जी हिन्दी के महान् आंचलिक उपन्यासकार थे। वे हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी उपन्यासकार थे। वे समकालीन ग्रामीण भारत की आवाज थे। उपन्यास-संग्रहः- मैला आँचल (1954 ई.), परती परिकथा (1957 ई.) जुलूस (1966 ई.), कितने चौराहे इत्यादि। कथा संग्रहः-एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी (1969 ई.), रिपोर्ताज ऋणजल-धनजल, नेपाली क्रांतिकथा इत्यादि।

फणीश्वरनाथ रेणु जी को जितनी प्रसिद्धि उपन्यासों से मिली, उतनी ही प्रसिद्धि कहानियों से भी प्राप्त हुई। रेणु जी को जितनी ख्याति हिन्दी-साहित्य 'मैला आँचल' उपन्यास से मिली, उसकी मिसाल मिलना दुर्लभ है। 'मैला आँचल' रेणु जी की प्रसिद्धि का शिखर है, उनकी अन्य रचनाएँ भी काफी महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने स्थानीय मुद्दों को राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर नयी पहचान दिलायी। अंचल की लोक-संस्कृति को राष्ट्रीय व वैश्विक पहचान मिली। लोकभाषा के महान् शिल्पी रेणु जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

■

'मैला आँचल' में क्षेत्र-विशेष का कथानक होना

ज्योति सिन्हा
ल.ना.मि.वि., सी.एम. कॉलेज, दरभंगा, एम.ए.- तृतीय छमाही

'रेणु' ने 'मैला आँचल' के माध्यम से जिस प्रकार के औपन्यासिक कथ्य की अभिव्यक्ति की है उससे एक नये कथानक-विन्यास का उभरना स्वाभाविक है। पहले के उपन्यासों के कथानक-विन्यास को देखा जाए तो कई चीजें रेखांकित की जा सकती हैं। सामाजिक उपन्यासों के केन्द्र में समाज की समस्याएँ उभरती हैं और उन समस्याओं के केन्द्रीभूत पात्र होता है। चाहे तो उसे नायक भी कह सकते हैं और अनेक पात्र इस केन्द्रीभूत पात्र के साथ कहीं साहचर्य से, कहीं तनाव से जुड़ते रहते हैं। ये पात्र और घटनाएँ परस्पर टकराते हुए एक कथ्य बुनते चले जाते हैं। इस प्रकार उपन्यास के आदि से अंत तक पूर्वापर संबंधों से जुड़ी एक कथा व्याप्त रहती है। यह कथा एक तो, किसी स्थान की परिधि में सीमित नहीं रहती, दूसरे वह एक प्रवाह के साथ बहती रहती है और एक दिशा में कुछ दूर तक चलती है, मोड़ लेती है फिर चलती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक पात्र की मानसिकता का उद्‌घाटन होता है। इसमें कथा पूर्वापर संबंधों से उस तरह नहीं जुड़ी होती जिस तरह सामाजिक उपन्यासों में जुड़ी होती है। इसमें अनेक घटनाएँ आती हैं और अगली घटना को जन्म दिए बिना ही समाप्त हो जाती है। इसमें आद्योपांत व्यक्ति का चरित्र ही व्याप्त रहता है और उसी के माध्यम से घटनाएँ परस्पर कहीं-न-कहीं एक-दूसरे से जुड़ती प्रतीत होती हैं। यद्यपि मनोवैज्ञानिक उपन्यास और विशेषतया जीवनी-प्रधान उपन्यासों में कथाविहीनता या कथा क्षीणता होती है किन्तु उसकी भी गति काफी दूर तक एक दिशा में होती है। लेकिन 'मैला आँचल' एक ऐसे उपन्यास के रूप में आया जिसमें अंचल विशेष के समग्र जीवन का उद्‌घाटन उद्देश्य बना परम्परागत कथानक-पद्धतियाँ इस प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि में सहायक प्रतीत नहीं होती। यहाँ समग्र अंचल ही जैसे नायक रूप में है, उस अंचल के व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं, एक ओर प्रकृति है, दूसरी ओर मनुष्य। एक ओर परंपरा है, दूसरी ओर प्रगति। प्रकृति के अनेक रंग हैं। मनुष्य के भी अनेक रंग हैं, समस्याएँ हैं, वर्ग हैं। इन सबसे बने हुए अंचल के चरित्र को उभारने के लिए लेखक ने एक नए प्रकार के कथानक का विन्यास किया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह दिखाई पड़ती है कि लेखक ने किसी एक कथ्य का सहारा न लेकर अनेक छोटे-बड़े संदर्भों, कथा-खंडों को परस्पर जोड़ा है। कोई कथा प्रमुख होकर कुछ दूर तक निश्चित भाव से बहने नहीं पाती। वह ज्यों-ही थोड़ी दूर चलती है कि एक दूसरी कथा, उसे काट देती है और दूसरी को तीसरी और तीसरी को चौथी काट देती है। इस प्रकार कई कथा-खंडों की पारस्परिक टकराहट से एक-कथा बनती है। इसी प्रकार कोई पात्र देर तक ठहरने नहीं पाता। कई-कई पात्र एक-दूसरे को काटते हुए आते-जाते रहते हैं। इस प्रकार विविध कथा-खंडों, संदर्भों और पात्रों की एक-दूसरे में त्वरित घुसपैठ के कारण एक संक्रांत कथा बनती चली जाती है। इस प्रकार पूरे उपन्यास में जैसे एक मुख्य कथा और कुछ प्रासंगिक कथाओं से बना हुआ कथानक नहीं होता, बल्कि अनेक पात्रों से संदर्भित अनेक छोटी-छोटी कथाओं के जाल से बना हुआ कथानक होता है। लेखक के सामने वह अंचल होता है। अंचल एक समय में अपना जो जीवन जीता है, उपन्यासकार उसे पकड़ने का प्रयास करता है। इस प्रकार आँचलिक उपन्यासकार एक विषम समय में जी रहे वर्तुल जीवन का उद्‌घाटन करता है। रेणु ने अपने उपन्यासों में अंचल के अनेक पात्रों को लिया है। ये पात्र अंचल के जीवंत पात्र हैं और ये सभी पात्र चाहे छोटे हों, चाहे बड़े, एक-दूसरे के लिए नहीं होते, बल्कि सब मिलकर अंचल के लिए होते हैं। वे जीवंत तो होते ही हैं, साथ ही अंचल-जीवन के किसी-न-किसी पक्ष को उजागर करते हैं। इस प्रकार लेखक ने विविध चरित्रों को एक-दूसरे के साथ इस कौशल से नियोजित किया है कि उनके माध्यम से वर्तुल जीवन के पहलू खुलते चले गए हैं।

लेखक ने अंचल जीवन को चित्रित करने के लिए उसे भिन्न-भिन्न जगहों से देखा। वह कभी ऊँचाई पर खड़ा होता है, कभी प्रकृति के बीच घूमता है, कभी मानवों के बीच, कभी किसी टोले में जाता है कभी किसी टोले में। साथ ही उन्हें परस्पर अनुस्युत कर उनके पारस्परिक संबंधों की पहचान भी उभारता चलता है। कभी वह रेखाएँ खींचता है, कभी बिंदु बनाता है, कहीं कुछ रंग झाड़ देता है। इस प्रकार तरह-तरह से अंचल के संक्रांत जीवन-यथार्थ की परतें उधेड़ता चलता है।

■

'फणीश्वरनाथ रेणु' की कहानियों में सामाजिक एवं ग्रामीण जीवन का यथार्थ

अनुराधा कुमारी
छात्रा, हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

हिन्दी कथा साहित्य में 'फणीश्वरनाथ रेणु' की प्रसिद्धि अविस्मरणीय है। इन्होंने अपने लेखन-कला से हिन्दी साहित्य में ऐसा मार्ग प्रशस्त किया है जो वाकई गौरवान्वित करने योग्य है। हिन्दी कहानी परंपरा में रेणु को विशिष्ट स्थान प्राप्त है, जिसे अधिकांश कथाकार स्वीकारते भी हैं। शिवकुमार मिश्र का नाम इसमें महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध 'प्रेमचंद की परंपरा और फणीश्वरनाथ रेणु' में लिखा है कि- ''रेणु हिन्दी के उन कथाकारों में से हैं जिन्होंने आधुनिकतावादी फैशन की परवाह न करते हुए कथा साहित्य को एक लंबे अरसे के बाद प्रेमचंद की उस परंपरा से फिर जोड़ा जो बीच में मध्यवर्गीय नागरिक जीवन की केंद्रीयता के कारण भारत की आत्मा से कट गई थी।''(1)

डॉ. शिवकुमार मिश्र मानते हैं कि प्रेमचंद और रेणु की रचना-दृष्टि में कुछ अंतर तो अवश्य है, परंतु दोनों का लेखन भिन्न होकर एक ही है। इस अंतर को वो इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं- ''प्रेमचंद के यहाँ ब्यौरे नहीं हैं, रेणु के यहाँ ब्यौरे हैं। प्रेमचंद में ग्रामीण जीवन के चटख रंग नहीं हैं, जबकि रेणु ने चटख रंगों में ग्रामीण जीवन का मिश्रण किया है। प्रेमचंद की दृष्टि मूलतः एक रचनाकार की दृष्टि रही है, जबकि रेणु के रचनाकार के साथ-साथ उनका कलाकार भी हमेशा प्रबुद्ध रहा है। दोनों के शिल्प में ही नहीं, सोच में भी कुछ अंतर है, किंतु ये सारे अंतर उस शक्तिशाली हकीकत को नहीं दबा पाते कि रेणु भी अपने कृतित्व में मूलतः भारत के गाँवों और उनकी नीरस बेजान और विकृत होती हुई जिंदगी के प्रति 'कन्सर्ड' रहे हैं और प्रेमचंद भी। इस 'कन्सर्ड' की तीव्रता और गहराई- दोनों में समान है।''(2)

रेणु ने अपनी कहानियों में ग्रामीण समाज के यथार्थ को पूर्ण रूप से उद्घाटित किया है। वास्तव में ये ग्रामीण जनजीवन के यथार्थ के कथाकार हैं। इनकी आत्मा गाँवों में बसती है, अतः वो गांव के हर एक पक्ष को, चाहे वो मजदूर हो, किसान हो या फिर कोई जमींदार ही क्यों न हो- सबका पूर्ण रूप से प्रस्तुतीकरण करते हुए उसके यथार्थ को दिखाया है। रेणु ने ग्रामीण समाज के कोने-कोने को झाँककर वहाँ के रहन-सहन, खान-पान, भेष-भूषा इत्यादि को अपने लेखन से यथार्थ रूप में दिखाने का एक सफल प्रयास किया है। ये अपनी कहानियों में पात्रों के माध्यम से ग्रामीण जनजीवन को हूबहू दिखाते हुए उसका सचित्र वर्णन करते हैं। ग्रामीण समाज के प्रति इनकी इसी कर्मनिष्ठा को देखते हुए डॉ. सुवास कुमार जी कहते हैं कि- ''रेणु की छाती में हर वक्त गाँव धड़कता था और उसकी धड़कन को उन्होंने अपनी रचनाओं में कागजों पर उतार दिया है।''(3) रेणु अपनी कहानियों में उस समय के यथार्थ को पूर्ण रूप से दिखाया है। इन्होंने अपनी कहानियों में आजादी के पहले और आजादी के बाद की स्थिति को यथातथ्य दिखाया है कि लोगों में किस प्रकार आजादी मिलने का एक उमंग था, उत्साह था, वहीं आजादी के बाद सारा उमंग और उत्साह ध्वस्त हो गया, क्योंकि उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। स्वतंत्र होने के बाद भी वो स्वतंत्र नहीं हो सके, उनका शोषण होता ही रहा। ग्रामीणों की इस स्थिति को रेणु ने अपनी कहानियों में पूर्ण रूप से दिखाया है। डॉ. सुवास कुमार लिखते हैं- ''रेणु संपूर्ण स्वातंत्रयोत्तर ग्रामीण समाज के सुख-दुख, उल्लास और मोहभंग की महागाथा प्रस्तुत करते हैं।''(4)

रेणु की कहानियों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को देखा जा सकता है। इनके तीन संग्रह हैं- 'ठुमरी', 'आदिम रात्रि की महक' और 'अगिनखोर' जिसमें ग्रामीणों के भोगे हुए यथार्थ को पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। 'ठुमरी' रेणु का पहला कहानी संग्रह है जिसे 1959 में राजकमल ने छापा। अपने प्रथम कहानी संग्रह के बारे में उसकी भूमिका-'स्वरलिपि' में रेणु ने लिखा है- ''इस संग्रह में 'ठुमरी' नाम की कोई कहानी नहीं; सभी संयोजित कहानियाँ ठुमरी धर्मा हैं।''(5) इस संग्रह में कुल नौ कहानियाँ हैं- 'रसप्रिया', 'तीर्थोदक', 'ठेस', 'नित्य-लीला', 'पंचलाइट', 'सिर पंचमी का सगुन', 'तीसरी कसम, उर्फ मारे गए गुलफाम', 'लाल पान की बेगम' तथा 'तीन बिंदियाँ'। इन कहानियों में रेणु का ग्राम-संस्कृति के प्रति मोह मूर्तिमान हो चुका है। इनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को निम्न रूप से देखा जा सकता है:

1. रसप्रिया :- 'ठुमरी' संग्रह की प्रथम कहानी रसप्रिया है। रसप्रिया में रेणु ने ग्रामीण समाज से विलुप्त हो रहे लोक संस्कृति को दिखाया है कि किस प्रकार से लोग अपनी लोक संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। रेणु की 'रसप्रिया' कहानी में हम देखते हैं कि स्वातंन्त्र्योत्तर भारत में 'रसप्रिया' का राग जन जीवन से ओझल होते जा रहा है। जिस ग्रामीण समाज में लोक संस्कृति एवं लोक गीत अपना एक अलग महत्त्व रखता था वही आज समाज से लुप्त होते जा रहा है। इस कहानी में वे मिरदंगिया के माध्यम से अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं कि- ''जेठ चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करने वाले भी अब गीत नहीं गाते हैं .... कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जायेगी क्या? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है। पांच साल

पहले तक लोगों के दिल में हुलास बांकि था।''(6) रेणु समाज से लुप्त हो रही संस्कृति के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करते हैं।

2. ठेस :- 'ठेस' कहानी में इन्होंने गांव के लोक कलाकारों के उपेक्षित जीवन की करुण स्थिति पाठकों के सामने उभारा है। 'ठेस' कहानी का सिरचन भी ग्रामीण कारीगर है। रेणु ने सिरचन के माध्यम से दिखाया है कि किस प्रकार से एक कुशल कलाकार होने के बावजूद समाज में उपेक्षित रहता है। पेट-भर भोजन मिलने पर ही वह रंगीन शीतलपाटी, चिक, कुश की आसनी बनाता है। 'भोजन' में कमी होने पर वह क्षमा भी कर सकता है। लेकिन बात में जरा भी झाल वह नहीं बरदाश्त कर सकता।''(7) इस कहानी में रेणु ने कलाकारों के उपेक्षित जीवन को दिखाया है।

3. तीर्थोदक :- 'तीर्थोदक' कहानी में इन्होंने ग्रामीण जीवन को यथार्थ रूप में दिखाया है। इन्होंने इसमें दिखाया है कि किस प्रकार से ग्रामीण स्त्री के तीर्थ जाने की इच्छा को दबाकर रखा जाता है परंतु वह फिर भी जाती ही है। रेणु ने इस कहानी में तीर्थ जाने की स्त्री की इच्छा को विशेष रूप में दिखाया है। बोध बाबू जब बजरंगी चौधरी की पत्नी को समझाते हैं तो पुरुष प्रधान समाज का यथार्थ देखने को मिलता है और वो उसपर कटाक्ष करते हुए कहती है कि ''रखिये अपना पुरूख वचन, खूब सुन चुकी हूँ, पुरूख वचन। चालीस साल से और किसका बचन सुन रही हूँ।''(8) रेणु ने स्त्री के तीर्थ जाने की छटपटाहट को दिखाया है।

4. 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' :- रेणु की यह कहानी आजादी के बाद भारत के ग्रामीण समाज को समझने के लिए मील का पत्थर साबित हुआ है। यह कहानी गाड़ीवान हीरामन और नर्तकी हीराबाई की प्रेम कथा पर आधारित है। हीरामन पढ़ा-लिखा नहीं है किंतु उसका व्यवहार बहुत अच्छा है। हीरामन के मन में नर्तकी हीराबाई के लिए विशेष सम्मान है।

रेणु इस कहानी में ग्रामीण अंचल का वर्णन करते नजर आते हैं। हीरामन जब हीराबाई को अपनी बैलगाड़ी पर बिठा कर फारबिसगंज ले जाता है तो रास्ते में पड़ने वाले हर एक चीज का वर्णन यथार्थ रूप में करता है, चाहे खेत हो, नदी हो- सबको निहारते हुए हीरामन कहता है- ''नदी के किनारे धन-खेतों से फूले हुए धान के पौधे की पवनियाँ गंध आती है। पर्वपावन के दिन में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चम्पा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है जैसे भगवती।''(9) रेणु ग्रामीण समाज से जुड़े कथाकार हैं। ग्रामीण समाज के प्रति इनकी विशेष अभिरुचि है। रेणु इस कहानी में गीतों का भी प्रयोग किया है वो हीरामन के माध्यम से ग्रामीण अंचल की खूबसूरती को गीतों के माध्यम से दिखाते हैं- ''जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी हमरा पर होखू सहाय, हे मैया हमरा पर होखू सहाई।''(10)

5. लाल पान की बेगम :- इस कहानी में रेणु ने ग्रामीण समाज की आत्मीयता का चित्रण किया है। इस कहानी की मुख्य पात्र बिरजू की मां है, जो अभाव में स्वाभिमान के साथ जीने की आकांक्षा रखती है। इस कहानी में ग्रामीण समाज में नाच-तमाशा देखने की इच्छाओं को उकेरा गया है। बैलगाड़ी की व्यवस्था न हो पाने के कारण उसके प्रति खींझ को भी व्यक्त किया गया है जिसे रेणु ने एक व्यंग्य की तरह दिखाया है। मखनी फुआ की यह आवाज इसका उदाहरण है- ''अरे बिरजू की मां नाच देखने नहीं जायेगी क्या?''(11) इसमें ग्रामीण समाज में नाच देखने की चाह इतनी है कि व्यवस्था न होने पर आक्रोश को दिखाया गया है।

रेणु की और जितनी भी कहानियाँ हैं उसमें ग्रामीण समाज के हर पहलू को दिखाया गया है जिसकी अभिव्यक्ति जैसे 'पंचलाइट', 'संवदिया', 'पहलवान की ठोलक', 'सिरपंचमी का सगुन' इत्यादि कहानियों में हुई है।

हम कह सकते हैं कि रेणु जी के साहित्य में ग्रामीण एवं सामाजिकता की मुखर रूप से अभिव्यक्ति हुई है, जिसमें एक संपूर्ण परिवेश की झलक दिखाई पड़ती है।

संदर्भ स्रोत

1. यायावर, भारत 2004, फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ, इंडिया, नेशनल बुक ट्रस्ट
2. प्रेमचंद की परंपरा और फणीश्वरनाथ रेणु (रेणु : संस्मरण और श्रद्धांजलि में संकलित पृ.- 50-51)
3. आंचलिकता, यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु (डॉ. सुवास कुमार) पृ.सं.- 27
4. आंचलिकता यथार्थवाद और फणीश्वरनाथ रेणु (डॉ. सुवास कुमार) पृ.सं.- 17
5. 'ठुमरी' कहानी संग्रह (भूमिका) छठी आवृत्ति, पृष्ठ-2
6. 'ठुमरी' कहानी संग्रह, पृष्ठ-12
7. 'ठुमरी' कहानी संग्रह, पृष्ठ-52
8. 'ठुमरी' कहानी संग्रह, पृष्ठ-28
9. 'ठुमरी' कहानी संग्रह, पृष्ठ-108
10. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ-131
11. ठुमरी' कहानी संग्रह, पृष्ठ-138

■